



## श्रीश्री सद्गुरुसंग

(द्वितीय भाग - श्रीवृन्दावन लीला)

श्रीश्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी

अनुवादक— अविनाश ब्रह्मचारी

श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त संघ, रघुनाथपुर, जिला— पुरुलिया (प.बं.)

This e-book is the **Hindi** translation of **Shree Shree Sadguru Sanga - Part-2 (Vrindavan Leela)**. The original bengali book is based on the diary of Shree Shree Kuladananda Brahmachari direct disciple and companion/ attendant of Shree Shree Bijoy Krishna Goswami.

This e-book is translated by **Sri Avinash Bhramachari** of Shree Shree Bijoy Krishna Bhakt Sangh Ashram, Raghunathpur (Purulia), West Bengal.

‘श्रीश्री गुरुदेवाय नमः’

## भूमिका

परमहंस रामकृष्णदेव के समकालीन, उन्नीसवीं शताब्दी में अवतरित सद्गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी के आश्रित शिष्य ब्रह्मचारी कुलदानन्दजी ने अपने जीवन की आध्यात्मिक, सामाजिक, पारिवारिक, व्यावहारिक, शारीरिक उन्नति-अवनति का एवं अपने आन्तरिक उतार-चढ़ाव की अवस्था का दैनिक विवरण अपनी डायरी में खुलकर लिखा है। इसमें सन् 1886 ई. में गोस्वामीजी के सान्निध्य में आने के बाद से गोस्वामीजी के देह त्याग करने तक अर्थात् सन् 1899 ई. तक, चौदह वर्षों की अद्भुत घटनावली का वर्णन है; किन्तु इस डायरी का जो सर्वप्रथम प्रकाशन ‘श्रीश्री सद्गुरु संग’ के नाम से बंगला भाषा में हुआ, उसमें गोस्वामीजी जब सन् 1893 ई. में प्रयाग कुम्भ मेले में गए थे तब तक का अर्थात् आठ वर्षों का ही वर्णन मिलता है। बंगला भाषा में इसे पाँच भागों में प्रकाशित किया गया है। इन्हीं पाँच भागों का अन्य भाषाओं में अनुवाद हुआ है। अन्य छः वर्षों का विवरण प्राप्त करने का प्रयास किया गया, किन्तु निराशा ही हाथ लगी।

ब्रह्मचारी कुलदानन्दजी जब यह डायरी लिख रहे थे तब श्रीश्री गोस्वामीजी ने कहा था— “ ब्रह्मचारी जो लिख रहे हैं, सौ साल बाद वह देश का शास्त्र होगा। ” वास्तव में, अब सौ साल बाद देखा जा रहा है इस ग्रन्थ का हिन्दी, मराठी, गुजराती, अँग्रेजी, कन्नड एवं अन्य भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हो गया है और हो रहा है; देश-विदेश में इसका प्रचार हो रहा है।

ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में सन् 1886 ई. से 1890 ई. तक का विवरण, द्वितीय खण्ड में सन् 1890 ई. से 1891 ई. तक गोस्वामीजी की श्रीवृन्दावन लीला का विवरण, तृतीय खण्ड में सन् 1891 ई. से 1892 ई. तक का विवरण, चतुर्थ खण्ड में सन् 1892 ई. से 1893 ई. तक का विवरण तथा पंचम खण्ड में सन् 1893 ई. से 1894 ई. तक कुम्भ मेले आदि का वर्णन है।

श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी ने लगभग एक वर्ष श्रीवृन्दावनधाम में वास किया था। ‘श्रीश्री सद्गुरु संग’ ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में उनकी श्रीवृन्दावन लीला का वर्णन है जो कि सन् 1890 ई. से सन् 1891 ई. के मध्य हुई थी। अप्राकृतिक धाम श्रीवृन्दावन में गोस्वामीजी के साथ रहते समय ब्रह्मचारी

कुलदानन्दजी ने जो-जो प्रत्यक्ष किया एवं उनकी अनुपस्थिति में वहाँ जो-जो अलौकिक व अन्य घटनाएँ हुई, उसे बाद में वे स्वयं गोस्वामीजी के मुख से सुनकर अथवा अन्य गुरुभाई-बहिन, जो कि गोस्वामीजी के समक्ष उस समय उपस्थित थे, उनसे प्राप्त करके अपनी डायरी में लिखकर रख लेते थे।

‘श्रीश्री सद्गुरु संग’ जैसे वृहत् ग्रन्थ का सम्पूर्ण रूप से यहाँ उल्लेख करना सम्भव नहीं है, इसलिए केवल द्वितीय खण्ड, जिसमें **‘श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी की श्रीवृन्दावन लीला’** एवं गोस्वामीजी से दूर रहते समय ब्रह्मचारीजी की जो अवस्था-दुरावस्था हुई थी, उसका वर्णन है, उसे ही यहाँ प्रस्तुत किया गया है। यह मूल बंगला ग्रन्थ का ही हिन्दी अनुवाद है, जिसे स्वामी आलोकानन्द सरस्वतीजी एवं अमित ब्रह्मचारीजी की प्रेरणा से इंटरनेट में देने के उद्देश्य से किया गया है। अनुवाद के समय, यह दैनिक डायरी है— इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है; अतः इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया, यथासम्भव यथावत् रखने का प्रयास किया गया है; पाठक की सुविधा के लिए केवल बंगला सन् व तिथि को ईसवी सन् व दिनांक में परिवर्तित किया गया है। भविष्य में इसी प्रकार सभी खण्डों का अनुवाद करके पुस्तकाकार में प्रकाशित करने की योजना है। लगभग पचास वर्ष पूर्व श्री लल्ली प्रसाद पाण्डेय जी ने ‘श्रीश्री सद्गुरु संग’ का हिन्दी अनुवाद सर्वप्रथम किया था, किन्तु उस समय की क्षेत्रिय हिन्दी भाषा को वर्तमान समय में समझ पाना कुछ कठिन अनुभव हुआ। अतएव इस बात को ध्यान में रखकर पुनः मूल ग्रन्थ से श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी की श्रीवृन्दावन लीला अर्थात् द्वितीय खण्ड का हिन्दी अनुवाद करके यहाँ प्रस्तुत किया गया है। भक्त-पाठकगण इसका रसपान कर जीवन का मार्ग आलोकित करेंगे, यही विनम्र अपेक्षा है।

फाल्गुन पूर्णिमा

16 मार्च, 2014 ई०

संशोधन :

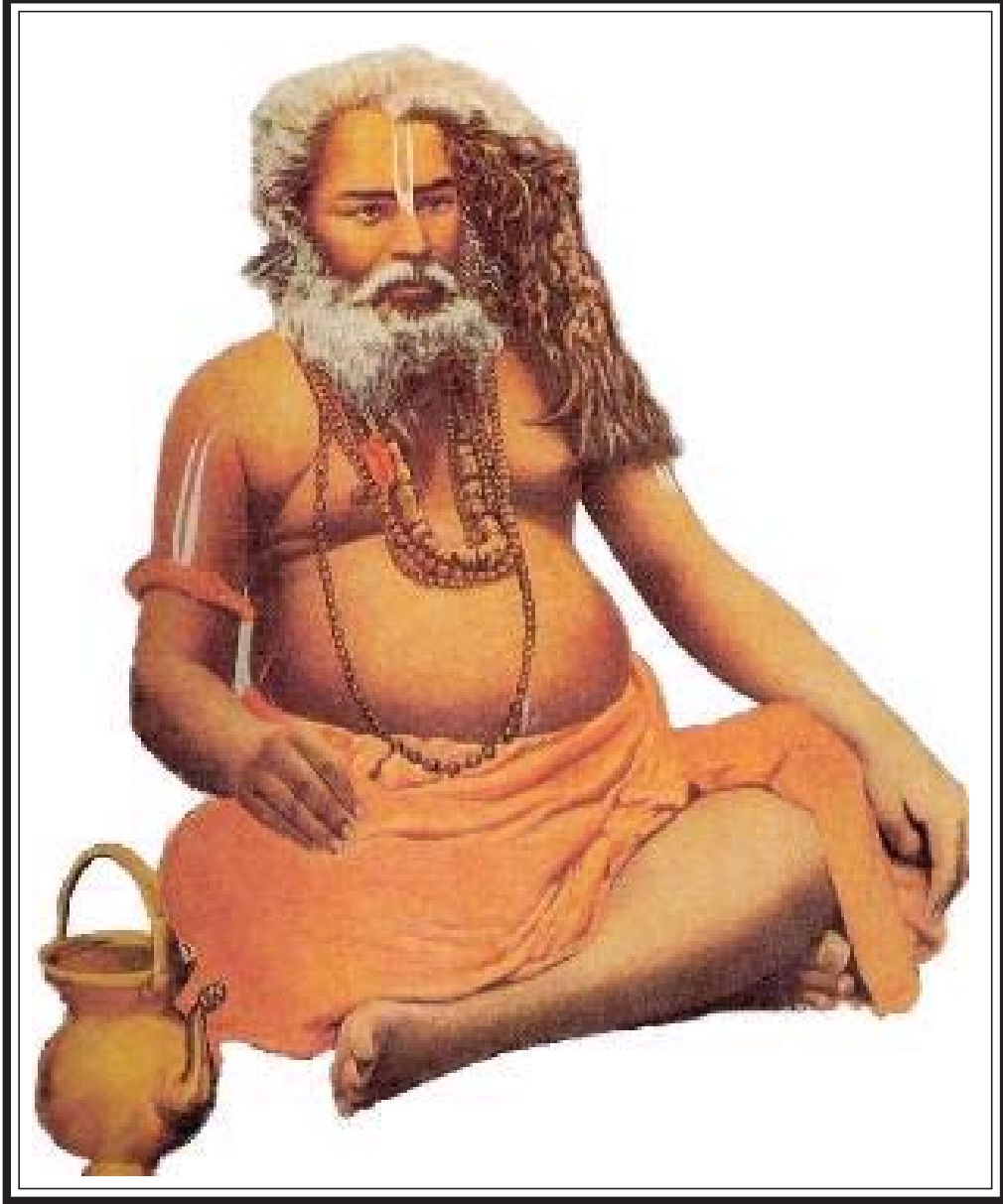
ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी

2 जून, 2016 ई०

**ब्रह्मचारी अविनाश**

श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त संघ

रघुनाथपुर, जिला— पुरुलिया (प.बं.)



सद्गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी



श्रीश्री माता योगमाया देवी



श्रीश्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी

॥ श्री श्री गुरुवे नमः ॥

## निवेदन

मेरे परमपूज्य गुरुदेव भगवान् श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी इस देश में सुविख्यात हैं। उन्होंने सन् 1841 ई. की झूलन (राखी) पूर्णिमा के दिन श्रीधाम शान्तिपुर (बंगाल) के विशुद्ध अद्वैत-वंश में परम भगवत्भक्त श्रेष्ठ पण्डित श्री आनन्दकिशोर गोस्वामीजी के पुत्र के रूप में जन्म ग्रहण किया था।

बाल्यकाल में उनके जिन समस्त स्वाभाविक सद्गुणों और अद्भुत क्रिया-कलापों को देखकर उनके आत्मीयजन और शान्तिपुरवासी एक समय विस्मित हो गए थे, उससे लोगों को अवगत कराना मेरी इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है।

यौवनकाल में सरल विश्वास से ब्राह्मधर्म का आश्रय ग्रहण करके दूसरों के दुःख से व्याकुल होकर उस समय की दुर्नीति-दुराचार को दूर करने के लिए एवं समय के अनुकूल धर्म की स्थापना के लिए भयंकर अत्याचार-उत्पीड़न सहन करके जिस प्रकार उन्होंने तीव्र उत्साह से देश के पुनरुत्थान के लिए कार्य किया था, गुरुदेव के उस समय के जीवन की सब घटनाओं की जाँच-पड़ताल करके प्रचार करना भी मेरी इस पुस्तक का अभिप्राय नहीं है।

केवल विशुद्ध धर्ममत से एवं अनादि अनन्त सत्यस्वरूप परमेश्वर के अस्तित्व के ध्यान से सन्तुष्ट न होकर, प्रत्यक्ष रूप से जीवन में उस परम वस्तु को प्राप्त करने के लिए जिस प्रकार उन्होंने विभिन्न धर्म-सम्प्रदाय की उपासना-प्रणाली का आश्रय लेकर तीव्र तपस्या और कठोर साधना की थी एवं उससे भी अपनी लक्षित वस्तु भगवान् को साक्षात् रूप से प्राप्त न कर पाने के कारण, जिस अवस्था में पहाड़-जंगल जैसे दुर्गम स्थानों पर सद्गुरु की खोज में आहार-निद्रा त्यागकर उन्मत्त की भाँति दौड़-धूप की थी, वह सब विवरण उनके ही श्रीमुख से सुनकर मैं चकित हो गया और उसे लिखकर रख लिया।

अन्त में, उनकी प्रौढ़ अवस्था में अलौकिक रूप से गयाधाम के पहाड़ पर मानससरोवर निवासी श्रीश्री ब्रह्मानन्द परमहंसजी अचानक आविर्भूत होकर उनको शक्ति-संचारपूर्वक दीक्षा प्रदान करके क्षणभर में अदृश्य हो गए। उसी समय से उन्होंने अपनी चिर-आकांक्षित वस्तु सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् का साक्षात् रूप में दर्शन करके जिस अवस्था में शेष दिन व्यतीत किया, लगभग 13-14 वर्ष उनके साथ रहकर उसे प्रत्यक्ष देखकर समय-समय पर मुग्ध और अचम्बित हुआ हूँ। हाय, कुछ दिन पहले उस चित्त-विमोहन, परम मनोरम व्यवहार की छवि मात्र को हम लोगों के सम्मुख रखकर 5 जून, सन् 1899 ई. को दुःसह ज्येष्ठ महीने में

नीलसागर के समीप श्रीश्री नीलाचल (पुरीधाम) में, आश्रित भक्तों के मन को शोभित करने वाला हम लोगों का वह शीतल दीप्तिमान् तत्त्वज्ञान का ज्योतिस्वरूप चन्द्रमा अचानक अस्त हो गया। घोर कृष्ण द्वादशी के अन्धकार में अभागे भक्तगणों के सिर पर इस प्रकार अचानक बिजली गिर पड़ी। उस भीषण दुर्दिन के हृदय विदारक दृश्य को अंकित करके मैंने अपनी डायरी का अन्तिम पृष्ठ चिरकाल के लिए समाप्त कर दिया।

प्रायः 10 वर्ष की बाल्यावस्था से मेरा डायरी लिखने का अभ्यास था। अतएव गुरुदेव ठाकुर का आश्रय ग्रहण करने के बाद से उनके चिर-समाधि लेने तक का विवरण मैंने अपनी डायरी में लिख रखा है। ठाकुर के पास सर्वदा किसी एक का रहना आवश्यक था, अतएव वह कार्यभार मेरे ही ऊपर अर्पित था। मैं अपने आहार-निद्रा का समय छोड़कर प्रायः सब समय उनके पास ही बैठा रहता था। ठाकुर से साधन प्राप्त करके लगभग 13-14 वर्ष तक मैं निरन्तर उनके साथ रहा। उस समय उनके वार्तालाप, आचार-व्यवहार, क्रिया-कलाप को जिस दिन जैसा देखा है और सुना है, वह सब अपने साध्यानुसार यथावत् एवं विस्तारपूर्वक मैंने डायरी की उसी-उसी तारीख में लिख रखा है। अपनी डायरी में विशेष रूप से अपने ही जीवन की नाना प्रकार की दुरावस्था और आकस्मिक दुर्दशा में ठाकुर का अनुशासन, उपदेश, दया और सहानुभूति के साथ-साथ उनके अलौकिक जीवन की अद्भुत घटनावली का दृष्टान्त— जिसे उन्होंने समय-समय पर अभिव्यक्त किया था— जैसे-जैसे प्राप्त होता था, उसे सरल एवं निष्कपट भाव से लिख रखता था। फिर सर्वदा एक साथ रहने के कारण, ठाकुर के उस-उस समय के नित्यसंगी मेरे श्रद्धेय गुरुभाइयों की तत्कालीन किसी-किसी घटना के साथ मेरा विशेष सम्बन्ध रहने के कारण एवं उन सबके साथ ठाकुर के आदेश, उपदेश और व्यवहार का विशेष रूप से सम्बन्ध रहने के कारण वह सब भी मेरी डायरी के अन्तर्गत आ गया है। हम सभी यदि सत्पुरुष, शान्त, जितेन्द्रिय होकर निष्कलंक जीवन के साथ ठाकुर का आश्रय लेकर रहते, तो फिर उनकी कृपा और महिमा का पूर्ण प्रमाण किस प्रकार मिलता? फिर उनकी पतित-पावनता किस प्रकार पूर्णतः प्रस्फुटित होती? उत्पीड़न की अधिकता का प्रकाश हुए बिना क्षमा की विशेषता समझी नहीं जाती। एक ओर जिस प्रकार अत्याचार और अबाध्यता है, दूसरी ओर उसी प्रकार धैर्य और सहिष्णुता है; एक ओर हीनता और अधोगति है, दूसरी ओर दया और सहानुभूति है। इसलिए ठाकुर की असाधारण कृपा और उनके अद्भुत जीवन का बिन्दुमात्र परिचय स्मृति में रखने के अभिप्राय से उस समय के नित्य संगी गुरुभाइयों के साधारण व्यवहार एवं विशेष रूप से अपने निजी जीवन की त्रुटियाँ, जिस दिन जिस प्रकार हुई, उसे इस डायरी में लिख रखा है।



मेरे डायरी लिखने के अभ्यास से अनेक गुरुभाई अवगत हैं। अतः वे लोग ठाकुर के अन्तर्द्धान होने के बाद से उनका एक जीवन-चरित्र लिखने के लिए मुझसे लगातार अनुरोध कर रहे हैं; परन्तु ठाकुर के साथ रहकर, इन 13-14 वर्षों में उनके जिन सब कार्यों को देखा है, उससे उनका जीवन-चरित्र लिखना अथवा उस विषय में प्रयास करना भी मुझे अत्यन्त असम्भव लगा। मेरा यह विश्वास है कि उनकी सम्पूर्ण जीवनी को लिखा नहीं जा सकता। भाषा द्वारा जिसे व्यक्त नहीं किया जा सकता, उनके जीवन की उन सब इन्द्रियातीत तत्त्वानुभूति की बात को लक्ष्य करके मैं यह नहीं कह रहा हूँ; अत्यन्त निम्न स्तर के योगैश्वर्य से प्राप्त शक्तिपुंज की जिन सब क्रिया और फलानुभूति को उनके पंचभौतिक देह में सर्वदा होते देखा है एवं देवता और सिद्ध महापुरुषगण से सम्बन्धित, लोगों के विश्वास के अतीत, जिन समस्त अलौकिक घटनाओं को प्रतिदिन ही मैंने प्रत्यक्ष किया है, उन सबका विचार करके भी मैं यह बात नहीं कह रहा हूँ। मेरी स्पष्ट धारणा है कि ठाकुर के जीवन में साधारण लोगों के विश्वास योग्य एवं समझ में आने योग्य ऐसी कितनी ही घटनाएँ विभिन्न स्थानों में विभिन्न अवस्था में साधारण लोगों की दृष्टि के बाहर घटित हुई हैं कि उसको अपने नित्य संगी शिष्यगणों के समक्ष व्यक्त करने का भी उन्हें अवसर नहीं मिला; फिर कभी किसी घटना को प्रसंगवश अन्य लोगों के समक्ष उन्होंने प्रकाशित भी किया है। अतएव इन सबको जानकर एवं सुनकर उनकी एक स्थूल जीवनी प्रकाशित करना मेरे लिए कितना दुःसाहस का कार्य है, सभी समझते हैं। इन समस्त कारणों से मेरी ऐसी स्पष्ट धारणा है कि ठाकुर के सम्बन्ध में जितनी ही बातें क्यों न लिखूँ, उसके द्वारा उनका सम्पूर्ण रूप से परिचय प्रदान करना असम्भव है। इसलिए ठाकुर के अन्तर्द्धान होने के बाद से इतने समय तक मैंने इस विषय में कोई प्रयास ही नहीं किया; क्योंकि उनकी प्रेरणा के बिना उनकी जीवनी को संकलित करने का मेरा साहस नहीं होता। भविष्य में उनकी प्रेरणा और सहायता मिलने से उस विषय में प्रवृत्त हो सकता हूँ।

गत 1913 ई. में हैजा से पीड़ित होकर जब मैं बिल्कुल मरणासन्न हो गया था, तब सभी ने मेरे जीवन की आशा छोड़ दी थी। मेरी डायरी प्रकाशित नहीं हुई, यह सोचकर उस समय अनेक लोगों ने अत्यन्त खेद प्रकट किया था। ठाकुर की कृपा से मेरे स्वस्थ होने के बाद मेरे श्रद्धेय गुरुभाइयों का स्नेहपूर्ण अनुरोध एवं आग्रह पुनः मेरे ऊपर हावी होने लगा। मैं उसे टाल न सका और अपनी उस विस्तृत 14 वर्षों की डायरी को प्रकाशित करने का संकल्प किया।

ठाकुर के कथन को स्मरण में रखकर, अत्यन्त सावधानी के साथ एवं विशेष कुछ अंश को संक्षिप्त करके इसे प्रकाशित किया गया है। इस बात को कहने का तात्पर्य यह है कि ठाकुर ने अन्तर्द्धान होने के कुछ समय पहले एक दिन मुझसे

कहा था— 'ब्रह्मचारी, प्रत्यक्ष सत्य भी जिस किसी से नहीं कहते। यदि कहना ही हो, तो आँखों के सामने उन्हें प्रमाण सहित दिखाना होगा। नहीं तो श्रीमन्त सौदागर\* के जैसी दशा होगी; इसका ध्यान रखना।' इसीलिए सब बातों को लिखने का मेरे पास उपाय नहीं है, एक गूँगे के स्वप्न देखने की भाँति।

मैंने जिस अवस्था में रहकर, जिस घटनाक्रम में पड़कर ठाकुर का आश्रय प्राप्त किया एवं उसके बाद उनके निरन्तर संग प्राप्त के विरोध में जो सब आपद्-विपद् एक-एक करके उस समय मेरे साथ घटित हुए थे, वह सब उनकी ही कृपा लगती है। इति—

जटिया बाबा समाधि,  
पुरी।

कुलदानन्द ब्रह्मचारी

---

\* एक बार एक सौदागर ने सिंहाल राज्य की ओर जाते समय मार्ग में कमलों के वन में लक्ष्मीजी का दर्शन किया। उनके मुँह से यह बात सुनकर सिंहाल देश के राजा ने उनके बतलाए हुए स्थान पर लक्ष्मीजी की खोज करने में असफल होकर उन्हें कारागार में डाल दिया। उधर घर पर उनकी गर्भिणी पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र भी बड़ा होकर सिंहाल राज्य की ओर जाते समय लक्ष्मीजी का दर्शन किया एवं उसने सिंहाल देश के राजा को भी लक्ष्मीजी का दर्शन कराया, फलस्वरूप उसके पिता को कारागार से मुक्त कर दिया गया और बेटे को आधे राज्य के साथ राजकुमारी भी प्राप्त हुई। अविश्वासी पिता राजा को लक्ष्मीजी का दर्शन नहीं करा सके थे।  
— अनुवादक

| श्रीश्री गुरुदेवाय नमः |

# श्रीश्री सद्गुरु संग

## द्वितीय खण्ड

जून-जुलाई, सन् 1890 ई. (बंगला सन् 1297, आषाढ)

असह्य रोग-यन्त्रणा: जीवन में वितृष्णा

परोक्ष में गुरुदेव का आह्वान

14-20 जून, ई. सन् 1890। रात-दिन लगातार पित्तशूल वेदना के असह्य कष्ट से मेरी आत्महत्या करने की इच्छा हुई। क्रमशः यन्त्रणा की तीव्रता के साथ-साथ उस प्रकार का संकल्प मेरे भीतर जड़ पकड़ने लगा। सुना है, गुरुदेव इस समय श्रीवृन्दावन में हैं। निश्चय किया— 'उनकी पापनाशन मनमोहन मूर्ति चिरकाल के लिए एक बार देखकर, उनकी स्नेहमयी शीतल दृष्टि हृदय में रखकर पवित्र यमुना के जल में इस पाप-जनक देह का विसर्जन करूँगा।' लेकिन इस समय रोगग्रस्त दुर्बल शरीर में चलने-फिरने का भी सामर्थ्य नहीं है; फिर भी श्रीवृन्दावन जाने के लिए बेचैन हो गया। इस समय बिछौने से उठकर चलने-फिरने के लिए भी कोई मुझे उत्साह नहीं देता। फिर श्रीवृन्दावन जाने के लिए खर्चादि माँगूँगा भी किससे? इस समय बार-बार विचार आने लगा कि गुरुदेव के दया करने पर असम्भव भी सम्भव हो जाएगा। किसी भी प्रकार से शीघ्र ही मेरे जाने का जुगाड़ हो जाएगा— इस आशा से व्याकुल होकर उनको ही मन की आकांक्षा से अवगत कराने लगा। आश्चर्य है गुरुदेव की दया का! अप्रत्याशित रूप से मेरे श्रीवृन्दावन जाने की व्यवस्था हो गई। जय गुरुदेव! जय गुरुदेव!

श्री मथुर बाबू के ज्येष्ठ पुत्र, श्रीमान् सुरेन्द्र विलायत जाने के उद्देश्य से हैदराबाद में अपने चाचा श्री अघोरनाथ चट्टोपाध्याय जी के पास रहकर पढ़ाई-लिखाई कर रहे थे। किसी कारणवश अपने पिता के पास आना आवश्यक होने से, द्वितीय श्रेणी का आने-जाने का (रिटर्न) टिकट करके इस समय भागलपुर आए हुए हैं। मेरी श्रीवृन्दावन जाने की तीव्र आकांक्षा से अवगत होकर उन्होंने गोपनीय रूप से मुझे टिकट देकर कहा— 'अब और मेरा हैदराबाद जाना होगा नहीं। मामा, आप यह टिकट लीजिए। इससे आप इलाहाबाद तक जा सकेंगे।' टिकट पाकर मैं इसे एक प्रकार से गुरुदेव का ही स्नेहयुक्त आह्वान समझकर रो पड़ा। तुरन्त श्रीवृन्दावन जाने के लिए प्रस्तुत हो गया। इस समय मुझे रोकना व्यर्थ समझकर श्री मथुर बाबू ने दस रुपये और महाविष्णु बाबू ने तीन रुपये दिए। मैं दो जोड़ी पुराना वस्त्र,

गमछा, एक लोटा एवं डायरी लिखने का सब समान और एक हरिवंश (ग्रन्थ) झोले में बाँधकर तैयार हो गया।

मेरी स्वर्गीया बहिन के शिशु पुत्र-कन्या के पालन-पोषण का भार इतने समय से मेरे ऊपर ही था। आज उन्हें छोड़कर जा रहा हूँ; बड़ा कष्ट होने लगा।

## श्रीवृन्दावन—यात्रा

1 जुलाई मंगलवार। उत्साहित मन से सारा दिन बिताकर संध्या के कुछ पहले, गाड़ी का समय जानकर स्टेशन के लिए निकल पड़ा। गुरुदेव का स्मरण करके कदम बढ़ाते ही वही निरुपम काला रूप बहुत समय बाद 'झलमल' करके प्रकाशित हुआ। छः-सात फीट के अन्तर में, शून्य में स्थित वह ज्योतिर्मय-रूप समान गति से मेरे आगे-आगे चलने लगा। देखकर मेरा मन प्रफुल्लित हो उठा। यथासमय स्टेशन पहुँचा। खुले बदन, कम्बल लेकर भिखारी वेश में फटा झोला हाथ में लेकर गाड़ी के द्वितीय श्रेणी में चढ़कर बैठ गया। पता नहीं क्या समझकर सभी मेरी ओर चकित होकर एकटक देखने लगे। कुछ समय बाद एक व्यक्ति ने आकर टिकट माँगा एवं टिकट देखकर मुझे सलाम करके चला गया। कुछ समय बाद ही गाड़ी छूट गई। थका हुआ था; कुछ क्षण के भीतर मुझे निद्रा ने घेर लिया। इस समय वह काली मूर्ति धीरे-धीरे लुप्त हो गई। रात बड़े आराम से ही बिताई।

## प्रयागधाम के प्रभाव की अनुभूति

2 जुलाई, बुधवार। स्थिर बैठकर नाम-जप कर रहा हूँ, गाड़ी प्रयागधाम के पूर्व की ओर कुछ दूरी पर एक विशाल मैदान के मध्य आ पहुँची। मैदान की ओर देखते ही मेरा सारा शरीर सिहर उठा, उदासीनता ने मेरे मन को अवसन्न कर दिया। भीतर से अपने-आप स्पष्ट रूप से 'अगस्त्य' 'अगस्त्य' शब्द उठने लगा। भारद्वाज, वशिष्ठादि महातपस्वी ऋषिगण एक समय इसी स्थान पर थे, इस प्रकार का भाव मन में उदित होने से उन लोगों के लिए शोक होने लगा। यह शोक धीरे-धीरे मुझे इतना अभिभूत कर डाला कि मैं किसी प्रकार भी अपने को रोने से रोक नहीं पाया। खाली गाड़ी में सुविधा पाकर, ऋषियों का नाम लेकर कितना रोया! ऐसा लगा, मानो ऋषिगण इस स्थान पर रहकर मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं। मैं कातरपूर्ण भाव से उन लोगों के चरणों के उद्देश्य से बारम्बार प्रणाम करके प्रार्थना करने लगा— 'हे आर्य ऋषिगण, आज तुम लोगों ने मुझ पर इस प्रकार क्यों इतनी कृपा की? आज अचानक तुम लोगों की बात मन में आने से तुम लोगों के लिए मेरा मन इस प्रकार क्यों रो पड़ा? मैं तो इस जीवन में कभी तुम लोगों के विषय में एक बार

सोचा भी नहीं। कभी तुम लोगों का स्मरण करके मस्तक झुकाया नहीं। लगता है, यह विशाल मैदान तुम लोगों के पुण्य आश्रम से परिपूर्ण था; इसलिए तुम लोगों ने इस स्थान का त्याग नहीं किया। अनन्त स्तर-विशिष्ट जगत् के किसी एक सूक्ष्म स्तर पर— इस प्रयाग में अपनी परम आदर की वस्तु साधन के फल की सम्पूर्ण रूप से रक्षा करके, अदृश्य शरीर में अवस्थानपूर्वक लगता है, इस स्थान में ही उसका उपभोग कर रहे हो। तुम लोगों के इस आकांक्षित पुण्य साधन क्षेत्र में आज अनजाने में श्रद्धाशून्य हृदय से प्रवेश करते ही मेरे ऊपर कृपादृष्टि रखकर तुम लोगों ने दया करके मेरे चित्त में अपनी स्मृति उदित कर दी। आज मैं चिरकाल के लिए धन्य हो गया। हे मूर्तिमान् दयारूपी ऋषिगण! दया करके आशीर्वाद दो, जिससे तुम लोगों का अनुगत हो सकूँ; अविचलित मन से तुम लोगों के सनातन निर्मल पथ का अनुसरण कर सकूँ; हृदय के ठाकुर गुरुदेव के श्रीचरणों में एकनिष्ठ होकर अवशिष्ट जीवन बिता दूँ। और कुछ नहीं चाहता। इस शुभ मुहूर्त में तुम लोगों की कृपा से सुमति होने से अपना अविनीत उग्र मस्तक तुम लोगों के चरणरज में लोटाता हूँ— मेरी आकांक्षा पूर्ण करो।' भावुकता हो या कल्पना ही हो, मुझे ऐसा लगा, मानो ऋषियों ने प्रसन्न होकर मुझे आशीर्वाद दिया। मैं भी स्थिर बैठकर नाम-जप करने लगा। कुछ समय बाद ट्रेन प्रयागधाम पहुँची।

तत्पश्चात् गाड़ी से उतरकर स्टेशन से कुछ दूरी पर एक बड़े वृक्ष के नीचे जा पहुँचा। वहाँ आसन लगाकर मन में नाम-जप करते-करते अद्भुत रूप से मेरे भीतर एक भाव का स्रोत उमड़ पड़ा। मैं सोचने लगा— 'अहा! आज मैं कहाँ हूँ? यह वही प्रयागधाम है। एक समय इस स्थान पर कितना कुछ हुआ था! कितने योगी, कितने ऋषियों ने एक समय इस क्षेत्र में वृहत् कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित रखकर दीर्घकाल-व्यापी याग-यज्ञ का अनुष्ठान किया था। कितने सहस्र-सहस्र ऋषि-मुनि-तपस्वियों ने एक समय इस स्थान पर ध्यान-धारणा-समाधि में विमल आनन्द उपभोग करके युग-युगान्तकाल व्यतीत किया था। तीव्र तपस्या और एकान्त साधन-भजन द्वारा अनादि, अनन्त, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के साथ संयोग हेतु असीम शक्ति प्राप्त करके कितने दीर्घतपस्वी योगी-ऋषि इस पुण्य भूमि में दीर्घकाल अवस्थान किए थे। उन लोगों की असाधारण साधन-शक्ति इस स्थान पर संचारित होकर यहाँ के प्रति अणु-परमाणु को जीवन्त शक्तिशाली कर रखी है। इस पवित्र क्षेत्र के संस्पर्श से लगता है, ऋषियों की असाधारण साधन-शक्ति का बीज अलक्षित भाव से जीव के भीतर प्रविष्ट होता है एवं उसी अव्यर्थ शक्ति के अंकुरण से जीव का किसी-न-किसी काल में उद्धार हो जाता है। इसीलिए ऋषियों ने इस भूमि को मुक्तिधाम कहा है। हे देवर्षि-ब्रह्मर्षिगण के अप्राकृत साधन-शक्ति के खण्डित भण्डार तीर्थराज प्रयाग! मैं अनुभव करूँ या न करूँ, तुम्हारे इस आनन्द

का विस्तार करने वाले धूलिकण को स्पर्श करके आज मैं धन्य हुआ। तीर्थराज! आशीर्वाद दो, आज तक तुम्हारे सान्निध्य में जो लोग आए हैं, उन सभी की पदधूलि मेरे मस्तक पर पड़े।' इस भाव से अभिभूत होकर, भूमि पर लेटकर प्रयागधाम को साष्टांग प्रणाम किया। उसी समय भावावेग की एक प्रबल तरंग कुछ क्षण के लिए मेरे भीतर बह गई। मैं स्थिर बैठकर नाम-जप करने लगा।

इसी समय एक प्रयागवासी सज्जन मुझे अपने घर ले गए। वहाँ मैं स्नान करने के बाद कुछ जलपान करके यथासमय स्टेशन आ गया। तृतीय श्रेणी का एक टिकट लेकर वृन्दावन की यात्रा की। गाड़ी में मुझे कोई भी कष्ट नहीं हुआ; बड़े आराम से गया। जय गुरुदेव!

## ज्योतिर्मय श्रीवृन्दावन में उपस्थित: गुरुदेव की दया

3 जुलाई, गुरुवार। प्रातःकाल हाथ-मुँह धोकर गाड़ी के एक कोने में बैठा रहा। श्रीश्री गुरुदेव के चरणों का स्मरण कर बारम्बार प्रणाम करके बड़े उत्साह के साथ नाम-जप करने लगा। मथुरा व वृन्दावन के जितना ही समीप पहुँचने लगा, दोनों ओर विस्तृत मैदान व घने वन को देखकर मानो मेरा मन उतना ही मचलने लगा! जिस श्रीकृष्ण को देखने की आकांक्षा से नितान्त शैशवावस्था में अकेला जहाँ-तहाँ निर्जन स्थान में व्याकुल होकर कितना रोता फिरा हूँ; जिनका वास-स्थान यह है सुनकर, लोगों के साथ इस स्थान पर आने के लिए कितना अनुरोध किया— आज अपनी बाल्यावस्था की मानस-कल्पना के उसी श्रीवृन्दावन में आ गया; यह सोचते ही मुझे रोना आ गया। इसी समय देखा, दोनों ओर वन और मैदान में अति उज्ज्वल नीली घने कृष्णवर्ण की खण्ड-खण्ड असंख्य ज्योतियाँ बिजली के समान क्षण-क्षण में प्रकाशित होकर स्निग्ध शीतल प्रकाश फैलाकर फिर तुरन्त ही विलुप्त होने लगीं। उस नयनाभिराम मनमोहन कृष्णवर्ण की तुलना जगत् में कहीं नहीं है। वह इतनी सुन्दर मनमोहन है कि उसको भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। उस विचित्र ज्योति का बारम्बार दर्शन करने के बाद भी, अन्तर्धान होने पर फिर किसी भी प्रकार से उसको स्मृति में नहीं लाया जा सका। इस अनुपम दिव्य ज्योति का खेल देखते-देखते मैं क्रमशः श्रीवृन्दावन पहुँच गया।

दिन में लगभग 1 बजे वृन्दावन-स्टेशन पहुँचा। रास्ते में अनाहार व अनिद्रा से मेरा शरीर बिल्कुल क्लान्त हो गया था; हृदय की वेदना भी खूब बढ़ गई थी। मध्याह्न की प्रखर धूप के उत्ताप से अधिक दूर तक चल न सका; एक-दो मिनट चलकर ही रास्ते के किनारे छाया देखकर बैठ जाता। इसी समय चलती गाड़ी से एक सज्जन ने मुझे पुकारकर कहा— 'महाराज, कहाँ जाएँगे?' मैंने कहा—

गोपीनाथ के बाग में। यह सुनकर उसने गाड़ी रोककर कहा— 'आइए, आप इस गाड़ी में चढ़िए, मैं भी उसी ओर जाऊँगा।' मैं गाड़ी में बैठ गया। कुछ ही समय बाद हमारी गाड़ी गोपीनाथ के बाग में आकर रुकी। मैं तुरन्त उतर गया। ठीक इसी समय एक ब्रजवासी वृद्ध ब्राह्मण ने मुझसे पूछा— 'क्या बाबू, गोसाँईजी के पास जाओगे? चलो, हम भी वहीं जा रहे हैं।' मैं ब्राह्मण के पीछे-पीछे चलने लगा। व्यस्ततावश उनका परिचय लेने की भी बुद्धि नहीं आई। एक गली में कुछ दूर जाने के बाद एक घर दिखाकर ब्राह्मण ने कहा, 'जाओ उस कुंज में गोसाँईजी हैं।' यह कहकर ब्राह्मण अन्यत्र चले गए। कुछ कदम चलते ही मैंने देखा, मेरे गुरुदेव कुंज के द्वार पर खड़े हुए हैं। मेरे देखने के पहले उन्होंने मुझे पुकारकर कहा— **“क्यों कुलदा आ गए? अच्छा, अच्छा! आओ। झोला लेकर सीधे ऊपर आओ।”**

मैं गुरुदेव के पीछे-पीछे चलकर दो तल्ले में पहुँचा। झोला रखकर उनके श्रीचरणों में गिरकर साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरकर कहा— **“शरीर अस्वस्थ है; थोड़ा विश्राम करो। फिर यमुना में स्नान कर आना। हम सब लोगों का भोजन हो गया है। तुम्हारे लिए प्रसाद रखा है।”** यह कहकर गुरुदेव आसन पर स्थिर भाव से बैठे रहे। मैं उनकी देह की दशा देखकर, चकित होकर देखता रह गया। देखा, ठाकुर की अब वह आकृति नहीं रही। विशाल शरीर सूखकर अद्भुत लम्बा दिख रहा है। सुन्दर कान्ति अब अस्थि चर्म रह जाने से अत्यन्त शुष्क हो गई है। जगह-जगह शरीर की त्वचा ढीली होकर झूल गई है। सुगोल, सुन्दर मुखमण्डल मांस के अभाव से सिकुड़कर लम्बा हो गया है। पहले का वह उज्ज्वल वर्ण भी अब नहीं रहा; बिल्कुल साँवला हो गया है। मस्तक के लम्बे केश को एक गैरिक वस्त्र द्वारा लपेटकर बाँध रखे हैं। ललाट में ऊर्ध्वपुंज तिलक और कण्ठ में तुलसी, पद्मबीज व रूद्राक्ष की माला धारण किए हैं। उनकी देह की दुर्बलता देखकर मुझे बड़ा क्लेश होने लगा, मैं रो पड़ा एवं चकित होकर ठाकुर के नवीन वेश और दुर्बल शरीर की ओर देखता रहा। ठाकुर की देह की ऐसी दुर्दशा और कभी मैंने देखी नहीं। कुछ समय बाद गोसाँईजी ने कुंज के अधिकारी दामोदर पुजारी को बुलाकर कहा— **‘इनको यमुना में स्नान करवाकर ले आओ। फिर भोजन जो है, दे देना।’**

मैं 'झोला-झुली' आसन-कम्बलादि पास के कमरे में रखकर स्नान करने गया। 11 रुपये थे; उसे खुले कमरे में अलग-से रखकर जाने में भरोसा नहीं हुआ; अंटी में बाँधकर रख लिया। यमुना के शीतल निर्मल जल में उतरकर स्नान करके बड़ा आराम मिला। मेरे पास जो रुपये हैं, उसे दामोदर ने देख लिया। वे मेरे कमर की ओर अंटी में रुपये के प्रति लोलुप दृष्टि से देखने लगे। मैंने सोचा, 'यह भी

एक अच्छी समस्या हो गई। जितने दिन तक ये कुछ रुपये मेरी पूँजी रहेगी, नाना प्रकार के अभाव बतलाकर ये उतने दिन तक मुझे सताएँगे। अतएव इस विपत्ति से छुटकारा पाना ही अच्छा है। मुझे तो अभी कुछ दिन यहाँ रहना ही होगा; इसलिए ये 11 रुपये इन्हें देकर यदि अपने खाने-पीने का थोड़ा पक्का बन्दोबस्त कर लूँ, तो अच्छा निश्चिन्त होकर रह सकूँगा।' इस आशय से मैंने अंटी से रुपये निकाल लिया एवं दामोदर के हाथ में देकर प्रणाम करके कहा, 'पुजारीजी, आप ये कुछ रुपये लीजिए। ठाकुर की सेवा में लगा दीजिएगा; फिर जितने दिन तक मैं यहाँ रहूँगा, मुझे एक मुट्ठा प्रसाद दीजिएगा। मेरे पास अब एक भी पैसे नहीं है।' रुपये पाकर पुजारीजी बड़े प्रसन्न हुए एवं मेरे माथे पर हाथ फेरते-फेरते कहने लगे, 'अरे, तू तो बड़ा भगत है। सब दे दिया! जितने दिन मन हो, रहो। खूब अच्छा-अच्छा खिलाऊँगा। तेरे ऊपर राधारानी की बहुत कृपा है।' मैं थोड़ा हँसा। उसके बाद हम लोग कुंज में आ गए।

दाऊजी के मन्दिर से संलग्न रसोईघर में दामोदर ने मुझे बैठा दिया। फिर एक शाल के पत्ते में सजा हुआ दाल, भात, रोटी मेरे सम्मुख रखकर कहा, 'गोसाँई बाबा ने प्रसाद पाते-पाते इतना सब उठाकर रख दिया था।' सुनकर मेरी आँखों में पानी आ गया। अहा, ठाकुर की इतनी दया! आज ही मैंने यथार्थ प्रसाद पाया। यह प्रसाद मेरे लिए अधिक होने पर भी बड़े आनन्द से रुचिपूर्वक पूरा खा लिया।

## दण्डाघात

भोजन के बाद जाकर गोसाँईजी के पास बैठ गया। उन्होंने पूछा— **"तुम्हारे भैया कैसे हैं? उनका वह मित्र देवेन्द्र अभी कहाँ है?"**

मैंने कहा— भैया अच्छे हैं। तब से देवेन्द्र के साथ भैया की भेंट नहीं हुई। आपके द्वारा दण्डाघात न करने से लगता है, भैया को देवेन्द्र मार ही डालता।

गोसाँईजी— **ऊह! क्या भयानक आदमी है! और कुछ दिन रह जाता तो वह बड़ा विपद् ही करता, तुम्हारे भैया का बिल्कुल नाश कर देता। वह जघन्य स्वार्थ साधने के लिए वहाँ था। तुम्हारे भैया इस पृथ्वी के व्यक्ति नहीं हैं; संसार से कोई लगाव रखते नहीं; वे इस युग के नहीं हैं; सत्ययुग के व्यक्ति हैं। देवेन्द्र के साथ तुम्हारे भैया का कोई झगड़ा तो नहीं हुआ?**

मैं— झगड़ा कुछ हुआ नहीं। भैया के पास से आपके चले आने के बाद नागा बाबा और पतितदास बाबा ने भैया को देवेन्द्र का संग त्यागने के लिए कहा था; लेकिन देवेन्द्र के गुण से भैया इतने मुग्ध हो गए थे, उसकी धार्मिकता देखकर



इतने भ्रमित हो गए थे कि महात्माओं के आदेश पालन करने की भी भैया की प्रवृत्ति नहीं हुई। देवेन्द्र का वशीकरण विद्या में अच्छा अभ्यास था; उससे ही लगता है, भैया को उसने बिल्कुल अपनी मुट्टी में कर लिया था। फिर आपने जिस दिन कानपुर से उसके ऊपर दण्डाघात किया, उसी दिन देवेन्द्र को अचानक न जाने क्या हो गया; बिल्कुल निस्तेज और शक्तिहीन हो गया। उसके भीतर क्या हुआ था, वह कोई नहीं जानता। वह भैया से भी बिना कुछ कहे उसी समय भाग गया। सुना है, वह फैजाबाद से पाँच-छः कोस दूर, यमुना के किनारे एक ग्राम में ठहरा था। वहाँ उसको असह्य रोग हो गया, अत्यन्त क्लेश पाया। बाद में तो उन्माद होने से कहीं चला गया। अब वह मर गया या बचा है, पता नहीं। कुछ लोगों का कहना है, बचा नहीं। रोग के समय इच्छा होने से तो वह भैया के पास आ सकता था; लेकिन आश्चर्य यह है कि उसकी वैसी इच्छा भी नहीं हुई। धर्म का ढोंग करके उसने हजारों रुपये भैया से ठग लिया। यहाँ तक कि हम लोग तो भैया के जीवन के विषय में भी शंकित हो गए थे।

बहुत समय तक गोसाँईजी ने भैया की बातें कही। कुछ क्षण बाद मैंने नीचे जाकर देखा, दाऊजी के मन्दिर के सम्मुख गुरुभाई लोग बैठकर भैया के विषय में ही बातें कर रहे हैं। वह सब विषय मेरा पहले से जाना हुआ था; अभी पुनः सबके मुख से सुना। गोसाँईजी फैजाबाद से श्रीवृन्दावन जाने के समय कानपुर में श्री मन्मथनाथ मुखोपाध्याय जी के निवास में कुछ दिन रुके थे। एक दिन प्रातः चाय पीने के बाद सब गुरुभाई गोसाँईजी के पास बैठे थे, कुछ गुरुभाइयों को एक भयंकर दृश्य दिखलाई पड़ा। उन्होंने देखा, सर्प द्वारा मेंढक को निगलने की भाँति एक पिशाच ने धीरे-धीरे भैया को पाँव से कमर तक ग्रस लिया, और भी ग्रसने की प्रयास करने लगा। यह दृश्य देखकर वे लोग बेचैन हो गए। स्वामीजी (हरिमोहन) ने तुरन्त गोसाँईजी का पैर पकड़कर व्याकुलता के साथ कहा— ‘दया करके रक्षा कीजिए। हरकान्त को पिशाच ने ग्रस लिया है।’ गोस्वामीजी एक ही अवस्था में स्थिर रहते हुए मन्द-मन्द मुस्कुराए। फिर कहे— **‘अच्छा, मेरा दण्ड लाओ तो!’** एक गुरुभाई ने तुरन्त दण्ड लाकर गोसाँईजी के सम्मुख रख दिया। गोसाँईजी ने दण्ड हाथ में लेकर भूमि पर एक बार थोड़ा आघात करके कहा— **‘जा निश्चिन्त हुआ।’** ठीक उसी दिन, उसी समय देवेन्द्र अचानक निर्विश सर्प की भाँति बिल्कुल निर्जीव हो गया। भैया ने लिखा था, उस समय देवेन्द्र के भीतर एक अद्भुत असह्य यन्त्रणा हुई। वह क्लेश का कारण मेरे सामने प्रकट न करके पागल के समान भागकर कहीं चला गया। लगता है, गोस्वामीजी की इच्छा से ही देवेन्द्र की सारी शक्ति नष्ट हो गई थी। इसीलिए वह फिर यहाँ आया नहीं। इत्यादि।

## मेरा उभय संकट

गुरुभाइयों ने मुझसे कहा— 'भाई, श्रीवृन्दावन आए हो, बड़ी अच्छी बात है। अब कुछ दिन यहाँ रह सको तो अच्छा है। जिनके पास आए हो, जिनके साथ रहना है, वे अब पहले जैसे नहीं हैं; गोसाँईजी अब वैसे नहीं रहे; वे अन्य प्रकार के हो गए हैं। सर्वदा ही बड़ा उग्रभाव धारण किए रहते हैं। कुछ कहो या न कहो, उनके बैठने का और देखने का ढंग देखकर ही हम लोगों का हृदय धड़कने लगता है। दिनभर में एक बार भी उनके पास जा नहीं सकते, पास में बैठ नहीं सकते। यदि कभी हम लोगों में से किसी को पुकारते हैं— पुकार सुनते ही काँप उठते हैं। एक बार आगे-पीछे ताककर, अन्त में धीरे-धीरे सिर खुजलाते-खुजलाते उनके पास पहुँचते हैं। उसके बाद कैसे क्या होता है, समझ नहीं आता; उनके साथ जो भी बातें क्यों न हो, अन्त में भयंकर डाँट खाकर लौटते हैं। किसी की सामान्य थोड़ी-भी त्रुटि देख लें, तो फिर बचाव नहीं है— भयानक दण्ड देते हैं, कभी-कभी कुंज से निकल जाने को कहते हैं। इसीलिए भय से हम लोग प्रयोजन के अनुसार कुंज में रहकर, सब समय बाहर-बाहर घूमते हैं। भाई, तुम थोड़ा सावधान रहना। गोसाँईजी की उग्र मूर्ति देखकर हम लोग सदैव भयभीत रहते हैं। ऐसा न हो कि धक्का खाकर शीघ्र ही तुमको खिसकना पड़ जाए, इसलिए ये सब बातें बतला दे रहे हैं।' मैंने कहा— क्यों? तुम लोग गोसाँईजी का शान्त रूप क्या कभी देखे नहीं? श्रीधर ने कहा— 'वह क्यों नहीं देखेंगे? शान्त भाव में जब रहते हैं, तब इतने गम्भीर हो जाते हैं कि पास जाएगा कौन? बड़ी हिचकिचाहट होती है। दोनों ही भाव का आधिक्य है। पहले कभी गोसाँईजी को इस प्रकार से रहते देखा नहीं। इसीलिए कहता हूँ— सावधान!'

गुरुभाइयों की बातें सुनकर बड़ी दुविधा में पड़ गया। मैं वेदना से पीड़ित हूँ, उन लोगों के समान बाहर-बाहर घूमने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है; जाने का साहस करने पर शय्यागत हो पड़ूँगा। अतएव वह मेरे लिए बिल्कुल असम्भव है। सोचा—

न जाने से वध करे राजा, जाने से डसे भुजंग।

रावण के साथ जैसे मारीच कुरंग (हिरण)।

मेरी भी दशा यही हो गई, मैं उभय संकट में पड़ गया। जो भी हो, मैं जाकर गोसाँईजी के आसन के पास बैठ गया। इसी समय दामोदर पुजारी ने आकर हाथ जोड़कर गोसाँईजी को प्रणाम करके कहा— 'बाबा, आपका वचन सिद्ध है। आपने सबेरे जैसा कहा, वैसा ही हमको मिल गया। यह बाबू बड़ा भगत है, बड़ा सुपात्र है— हमको 11 रुपिया दिया।' गोसाँईजी ने कहा— **"दाऊजी बड़े दयालु हैं!"**

अच्छे-से मन लगाकर उनकी सेवा करो, देखना वे तुम्हारा कोई अभाव नहीं रखेंगे। वैसा नहीं करने से ही मुस्किल है।”

सुना है, आज प्रातः दामोदर पुजारी ने गुरुदेव से कहा था— ‘बाबा, भण्डार खाली है, आज दाऊजी का भोग किस प्रकार होगा?’ गोसाँईजी ने तब कहा था— ‘अच्छा थोड़ी प्रतीक्षा करो, विचलित मत हो; आज तुम्हें कुछ मिलेगा।’

## श्रीवृन्दावन वास की विधि

संध्या के कुछ पहले ठाकुर अपने-आप मुझसे कहने लगे— ‘श्रीवृन्दावन में आए हो, अच्छा हुआ। यहाँ तो कोई कामकाज है नहीं। अब दिनभर खूब साधन-भजन करो। रात्रि में आहार के बाद तीन-चार घण्टे नींद लो; फिर गहन रात्रि में उठकर नाम-जप करो। गहन रात्रि में साधन-भजन की एक विशेषता सर्वत्र ही अनुभव की जाती है। इस स्थान की तो बात ही छोड़ो। कुछ दिन नियमानुसार बैठने से ही समझ पाओगे, यह स्थान पृथ्वी के अन्य स्थानों के जैसा नहीं है— इसको अप्राकृत धाम कहते हैं। इस धाम का अद्भुत माहात्म्य समझना हो, तो इस स्थान के लिए जो सब विधि व्यवस्था है, उसका पालन करके चलना होगा। किसी तीर्थ में केवल वास करने से, उस स्थान के पालनीय विशेष-विशेष विधि-निषेध का पालन किए बिना, स्थान का यथार्थ माहात्म्य समझ नहीं आता। इस स्थान में वास करने के लिए (1) हिंसा का त्याग करना होता है, (2) परनिन्दा विषयों का त्याग करनी होती है, (3) वृथा समय बीताते नहीं, (4) अनिवेदित वस्तु कभी नहीं खाते, (5) सर्वदा साधन-भजन में लगे रहना होता है। इन नियमों का पालन करके कुछ समय चलने से ही, यह धाम क्या है, धीरे-धीरे उसका अनुभव होगा। दो-पाँच दिन यहाँ रहकर जो लोग चले जाते हैं, वे कैसे इस स्थान का माहात्म्य समझेंगे? गर्भवती स्त्री जिस प्रकार स्वस्थ शरीर में नियम से रहकर दस मास बाद सन्तान प्रसव करती है, इन स्थानों में भी उसी प्रकार दीर्घकाल रहना होता है। अन्ततः एक वर्ष भी नियम के अनुसार रहने से धाम का थोड़ा प्रभाव समझ सकते हैं। मैं तो यह सब कुछ भी नहीं जानता था। परमहंसजी के आदेशानुसार कुछ समय यहाँ वास करने से ही अब दिनो-दिन स्थान का अद्भुत माहात्म्य प्रत्यक्ष करके चकित हो रहा हूँ। नियमानुसार खूब साधना करो— विशेष उपकार होगा। इस धाम का प्रभाव बड़ा-ही चमत्कारी है।’ मैंने पूछा— गर्भधारण करके स्वस्थ शरीर में

रहकर दस मास बाद जिस प्रकार सन्तान प्रसव होता है, तीर्थ के नियम यथारीति प्रतिपालन करके दीर्घकाल तीर्थवास करने से, तीर्थ देवता भी क्या पुत्र-रूप में प्रकाशित होते हैं?

ठाकुर ने कहा— “पुत्र-रूप की बात नहीं है; अपने रूप में ही वे प्रकाशित होते हैं। गर्भधारण के समान नियम धारण करके तीर्थवास करना चाहिए, तभी तो!”

## ब्रह्मचारीजी का अनुताप और अन्तिम कथा

बारदी के ब्रह्मचारीजी के एकाएक देहत्याग की बात सुनकर बड़ा कष्ट हुआ। गोसाँईजी से पूछा— ब्रह्मचारीजी ने और सौ वर्ष रहने की बात कही थी। इतने शीघ्र उन्होंने देहत्याग क्यों किया? किस रोग से उनकी मृत्यु हुई?

गोसाँईजी— मृत्यु क्या कभी महापुरुषों की होती है? रोग— वह भी थोड़ा दिखाने के लिए। अपनी इच्छा से ही उन्होंने देहत्याग किया है। कहा कि अब उनके और रहने का कोई प्रयोजन नहीं है। उनके रहने से वरन् लोगों की और भी हानि होगी।

मैंने कहा— अपनी इच्छा से उन्होंने क्यों देहत्याग किया? देहत्याग के पूर्व क्या आपसे कुछ कहा था?

गोसाँईजी— हाँ, बहुत-कुछ कहा था। देहत्याग की पूर्व रात्रि में वे यहीं थे। रातभर मेरे साथ उनका झगड़ा हुआ। मुझसे बार-बार जिद करके कहने लगे— ‘तू जाकर मेरे आसन में बैठ; मैं अब देह में नहीं रहूँगा।’ मैंने कहा— एक वर्ष यहाँ रहने का संकल्प करके मैंने आसन लगाया है; मेरे लिए यह धाम छोड़कर जाना सम्भव नहीं है। उन्होंने कहा— ‘तो मैं यह देह छोड़ दूँ?’ मैंने कहा— आपकी जो इच्छा करिए। आपकी देह के लिए मुझे थोड़ा भी मोह नहीं है।

मैंने गोसाँईजी की बातें सुनकर कहा— आपके साथ किस विषय को लेकर झगड़ा हुआ?

गोसाँईजी— और कुछ नहीं, तुम लोगों के ही विषय को लेकर। ब्रह्मचारी के पास जाकर उनकी बातचीत सुनने से तुम लोगों में से किसी-किसी का बहुत अनिष्ट हुआ है। इसलिए उनसे कहा कि आपने अद्वैतवाद की शिक्षा देकर किसी-किसी को अदृष्ट-प्रारब्ध कह-कहकर उन लोगों की बुद्धि बिगाड़ दी है। वे साधन-भजन छोड़कर अन्य प्रकार के हो गए हैं। अब उनका संशोधन होना कठिन है। लोगों का इस प्रकार

तो उपकार कर रहे हो! उन्होंने कहा— 'अरे, जिसका जैसा संस्कार है, वह मेरी बात को वैसा ही समझता है। मैं क्या करूँ? सभी लोग मुझे अपने-अपने दृष्टिकोण से देखते हैं; परन्तु मुझको कोई समझा नहीं, पहचाना नहीं। मेरा स्वयं का तो कोई प्रयोजन नहीं है, उनके लिए ही तो हूँ। वे लोग ही जब मुझको पहचाने नहीं, मेरे द्वारा उनका कोई उपकार भी होगा नहीं, तब और रहने से क्या लाभ? मैं देह छोड़ दूँगा।' मैंने देखा, वास्तव में उनसे अब किसी का कोई उपकार होगा नहीं। उनकी बातें सच में लोग समझते नहीं; उनका भाव, उनकी भाषा अन्य प्रकार की है। इसलिए उनसे रहने के लिए फिर अनुरोध नहीं किया।

मैं— ब्रह्मचारीजी का भाव ठीक है, हम लोग नहीं समझ सके— बातें भी क्या नहीं समझ सके?

गोसाँईजी— कहाँ समझे? एक व्यक्ति ने ब्रह्मचारी के पास जाकर कहा, 'महाराज, शास्त्र-विधि के अनुसार स्त्रीसंग करने को कहा था, वह तो मैं कर नहीं पाता। मेरा काम-भाव बहुत अधिक है। अब मैं क्या करूँ?' ब्रह्मचारी ने उनसे कहा, 'यदि वैसा नहीं कर सकते, तो क्या करोगे? जाकर वेश्यागमन करो, व्यभिचार करो।' उस व्यक्ति ने मेरे पास आकर कहा— 'महाराज, ब्रह्मचारीजी ने मुझसे वेश्यागमन करने को कहा है। महापुरुष के कथानुसार काम करने से तो कभी पाप होगा नहीं!' वैसी बात सुनकर मुझे सन्देह हुआ। 'ब्रह्मचारी क्या कभी ऐसा कह सकते हैं? ब्रह्मचारी की बात का वैसा आशय नहीं है।' मेरे ऐसा कहने पर बारम्बार वे सज्जन जिद करके कहने लगे— 'महाराज, मैं असत्य नहीं कह रहा हूँ। उन्होंने स्पष्ट कहा है, जाकर वेश्यागमन करो।' ब्रह्मचारी के साथ भेंट होने पर मैंने उनसे कहा, आप ये सब क्या कर रहे हैं? आपके उपदेश से लोगों का सर्वनाश ही होगा, धर्म-कर्म सब छोड़ देंगे; स्वेच्छाचार, व्यभिचार से समाज उजड़ जाएगा। 'जाकर वेश्यागमन करो' 'जाकर व्यभिचार करो' 'घूस लो', आपकी ये सब बातें मानकर लोग भयंकर काण्ड ही करेंगे! सुनकर ब्रह्मचारी ने मुझसे कहा, 'अरे, तू क्या कहता है? वे साले लोग मेरे पास आते क्यों हैं? मेरी बात समझते नहीं, मुझसे पूछते क्यों हैं? विधि के अनुसार जो लोग स्त्रीसंग कर नहीं सकते, उन्हीं को कह देता— 'जाकर व्यभिचार करो', 'जाकर वेश्यागमन करो'। इसका मतलब क्या अन्य स्त्री का संग करने को कहा है, या बाजार की वेश्या का संग करने को कहा है? शास्त्र-विरुद्ध आचार ही तो व्यभिचार है; शास्त्र-विधि का उल्लंघन करके अपनी स्त्री का संग करना भी

वेश्यागमन है। मैंने तो ऐसे व्यभिचार, ऐसे वेश्यागमन की बात कही है।' एक बार एक ब्रह्मसमाजी ने ब्रह्मचारी के पास जाकर, ईश्वर साकार है या निराकार, इस सम्बन्ध में चर्चा की। ब्रह्मचारी ने उनकी सब बातें सुनकर कहा, 'ईश्वर के मुँह में मैं हगता हूँ, उसी के मुँह में मैं मूतता हूँ।' यह बात सुनकर ब्रह्मसमाजी तो अत्यन्त विरक्त होकर चले गए। दस लोगों के सामने कहने लगे, 'ब्रह्मचारी बड़ा पाखण्डी है, वह नास्तिक है। ईश्वर के मुँह में हगता हूँ, मूतता हूँ, वह इस प्रकार की बातें कहता है।' ब्रह्मचारी से यह बात पूछने पर उन्होंने कहा, "अरे उन्होंने स्वयं ही खूब उच्च अवस्था की बात कही थी। फिर मेरी वैसी बात सुनकर विरक्त क्यों हुए? उन्होंने कहा, 'ईश्वर सर्वव्यापी हैं।' मैंने कहा, उस ईश्वर के मुँह में मैं हगता हूँ, मूतता हूँ। ईश्वर सर्वव्यापी होने से मैं हगूँ मूतूँ कहाँ, तुम्हीं कहो न?" ब्रह्मचारी की सब बातें इसी प्रकार की थी। उनकी बातें लोगों को समझ में न आने से बहुत गड़बड़ हुआ है।

मैं— उन्होंने मुझे कितना भरोसा दिया था; रहने से तो वे वह सब करते!

गोसाँईजी— उसके लिए इतना क्यों सोचते हो? मैं किसलिए हूँ? तुम लोगों से जो कहा है, करते जाओ। तुम लोगों के लिए जो करना है, वह मैं ही करूँगा। उसके लिए अन्य किसी के ऊपर तुम लोगों को भरोसा करना नहीं होगा। तुम लोगों का कुछ भी अभाव नहीं रहेगा। समय पर सभी पूर्ण होगा।

मैंने पूछा— ब्रह्मचारीजी क्या पुनः जन्म ग्रहण करेंगे?

गोसाँईजी— हाँ, उनका काम है। वे शीघ्र ही बुद्धदेव की भाँति पूर्ण ज्ञान के साथ जन्म ग्रहण करेंगे।

गुरुदेव के साथ बहुत समय तक ब्रह्मचारीजी के सम्बन्ध में और भी बातचीत हुई। इससे यही समझा, मानो गोस्वामीजी ने ब्रह्मचारीजी को हटा दिया। एक बार भी यदि ठाकुर उनको इस संसार में रहने के लिए कहते, तो वे इतने शीघ्र देहत्याग कभी नहीं करते।

अन्त में गोसाँईजी ने कहा— अनेक लोग उनके भाव और भाषा न समझकर भ्रमित हुए हैं। मैंने ब्रह्मचारीजी से कहा था, जिस भाव से, जिस प्रकार की बात कहने से साधारण लोग आपका यथार्थ भाव समझ सकें, उस प्रकार से उन्हें क्यों नहीं कहते? उस पर ब्रह्मचारी ने कहा— 'अच्छा! तो अब मैं उनकी भाषा सीखने जाऊँगा? वैसे लोग मेरे पास आते क्यों हैं? मैं तो किसी को बुलाकर लाता नहीं।'

## सद्गुरु की कृपा के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर

गुरुदेव ने हमारे जीवन की अनन्त उन्नति का समस्त भार ग्रहण किया है एवं उस पथ पर वे स्वयं ही हम लोगों को ले जाएँगे, यह बात उनके मुख से सुनकर बड़ा आश्चस्त हुआ। ब्रह्मचारीजी के ऊपर जो निर्भर हुआ था, उसके लिए मैं वास्तव में लज्जित होने लगा। गोसाँईजी से फिर कुछ न पूछकर मैं मन-ही-मन नाम जपने लगा; लेकिन धीरे-धीरे मेरे मन में फिर एक आन्दोलन उपस्थित हुआ। सोचा, 'समस्त अभाव यदि गोसाँईजी ही पूर्ण कर सकते हैं, तो फिर इतना क्यों भुगत रहा हूँ? जिनकी इतनी दया है, वे क्या कभी अन्य का क्लेश दूर करने में समर्थ होते हुए भी उसे न करके स्थिर रह सकते हैं?' गोसाँईजी से ये सब बातें पूछने के लिए अवसर ढूँढने लगा; इस समय एक बार मेरी ओर देखकर अपने-आप वे कहने लगे, 'खूब साधना करते जाओ। अभी फलाफल की ओर ध्यान मत दो। समय पर फल पाओगे। असमय में तो कुछ होता नहीं। सबका ही एक निर्दिष्ट समय है। देखो, पेड़ में जो फूल होते हैं, फल होते हैं, उसका एक समय है। किसान लोग जो खेती करते हैं, उसका भी एक समय निश्चित है; समय का अतिक्रम करके कोई कुछ करता नहीं। देखे तो हो— किसान बीज बोने के पूर्व कितना कुछ करते हैं? समय पर हल चलाकर खेत से घास-फूस सब जड़ से निकालकर अलग कर देते हैं; फिर बीज बोते हैं। बीज जब अंकुरित होता है, तब पुनः अच्छे-से आसपास की घास आदि निकाल देते हैं। फिर वह सब पौधे बढ़ते हैं, फसल भी अच्छी होती है। जो किसान पहले खेत को स्वच्छ नहीं करते, विभिन्न प्रकार के जंगली घास-फूस लगकर उनके खेत की फसल को नष्ट करते हैं। तब घास-फूस निकालते-निकालते किसानों के तो प्राण निकलने लगते हैं, फिर उन सब पौधों में फसल भी अच्छी नहीं होती; किसानों की तो बड़ी दुर्दशा होती ही है, फसल भी काम की नहीं रहती। सभी इसी प्रकार समझना। समय पर ही किसान लोग सब कर लेते हैं; असमय में कुछ करने से वैसा फल नहीं होता। जैसा कहा जाता है, करते जाओ। अभाव कुछ भी नहीं रहेगा— समय पर ही सब कुछ होगा। खूब नाम-जप करो।'

गोसाँईजी की बातें सुनकर मैं सोचने लगा— 'तो फिर लोग सद्गुरु का आश्रय क्यों लेते हैं?' मैंने पूछा— समय पर जिसका जो होना है, वह तो होगा ही। उसके लिए प्रयास करें या न करें, गुरु सहायक हो या न हो, स्वाभाविक होगा। ऐसा होने पर फिर सद्गुरु का आश्रय लेने से लाभ क्या हुआ? सद्गुरु कृपा करके

किसी भी समय क्या थोड़ी अवस्था खोल नहीं सकते? समय पर ही सब होता है, तो फिर 'कृपा' शब्द का अर्थ क्या है?

गोसाँईजी ने कहा— "सद्गुरु की कृपा से सब कुछ हो सकता है; फिर गुरु की जब इच्छा हो उसी समय सब कर सकते हैं— यह बात सत्य है; लेकिन उससे क्या लाभ? एक वस्तु का मूल्य न जानने से यदि वह सहज में प्राप्त होती है, तो फिर उसके लिए कोई प्रयत्न नहीं होता। जिस वस्तु के लिए जितना अभाव बोध होता है, प्राप्त होने पर उससे उतना लगाव होता है; जिस वस्तु के अभाव से जितना क्लेश होता है, उस वस्तु की प्राप्ति से उतना आनन्द होता है। फिर गुरु द्वारा एकाएक कोई अवस्था प्रदान करने से तो उसकी मर्यादा जानी नहीं जाती! इसलिए साधन-भजन करके, चेष्टा करके जब लोग समझ जाएँ कि एक अवस्था को प्राप्त करना कितना कठिन है, कितना दुर्लभ है, तब गुरु कृपा करके वह अवस्था प्रदान करते हैं। गुरु वस्तु का मूल्य समझाकर वह शिष्य को देते हैं— यही नियम है।"

मैंने कहा— वस्तु की मर्यादा न कर पाने से, वस्तु की मर्यादा न जानने से वह मुझे न मिले। जिस वस्तु को पाकर फिर खोना होगा, वह भी मैं नहीं चाहता। मेरे भीतर की सब बुराइयाँ दूर कर दीजिए, ऐसा होने से बच जाऊँगा। सभी जब गुरु कृपा से होगा, तब मेरे कुछ करने के लिए फिर रहा क्या?

गुरुदेव मेरी बात सुनकर कुछ क्षण स्थिर रहे। फिर बड़े स्नेह के साथ मेरी ओर देखकर कहने लगे— 'जो कहा है, वही करते जाओ। श्वास-प्रश्वास में नाम जपने की खूब चेष्टा करो। नाम-साधना के जैसा श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। अपने स्वयं के जीवन में मैंने नाम-साधना का फल पाया है। एक बार उस प्रकार से नाम-साधना करके तो देखो, फल कैसे नहीं मिलता! पहले-पहले नाम-जप करने में बहुत विरक्ति लगती है; किन्तु उस कारण से उसे छोड़ते नहीं। विरक्ति लगती है, तो क्या हुआ? उससे तो कोई हानि नहीं है? खूब नाम-जप करते जाओ। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करने से बहुत लाभ है; श्वास-प्रश्वास में नाम जपने से प्रारब्ध धीरे-धीरे कट जाता है। तब अच्छी-अच्छी अवस्थाएँ भी प्राप्त हुआ करती हैं। प्रारब्ध क्षय का ऐसा उत्तम उपाय और नहीं है।' यह कहकर ठाकुर ने आँखें बन्द कर लीं। मैं धीरे-धीरे नीचे जाकर दाऊजी के मन्दिर के बरामदे में बैठ गया। कुछ समय बाद दाऊजी की आरती आरम्भ हुई; मुझे अच्छा नहीं लगा। मैं पुनः ऊपर जाकर बैठ गया। वेदना से बड़ा कष्ट होने लगा।



## गोपीनाथजी के मन्दिर में महोत्सव: ठाकुर का नृत्य

श्रीवृन्दावन आकर कुंज से अभी तक बाहर नहीं गया। सुना है, आज श्रीगोपीनाथजी के मन्दिर में संकीर्तन-महोत्सव होगा। श्रीवृन्दावन के समस्त वैष्णव-समाज उसी उत्सव में सम्मिलित होंगे। थोड़ा दिन-चढ़ने पर गुरुदेव के साथ हम लोग मन्दिर की ओर निकल पड़े। रास्ते में देखा एक विशाल संकीर्तन-मण्डली आ रही है। गोसाँईजी संकीर्तन के उद्देश्य से साष्टांग प्रणाम करके चौड़े रास्ते के बीच में खड़े हो गए। हाथ-जोड़कर सतृष्ण नयनों से कीर्तन की ओर देखते रहे। उनका सारा शरीर थरथर काँपने लगा। देखते-देखते मृदंग-करताल की ध्वनि से चारों दिशा को कम्पित करते हुए संकीर्तन-मण्डली गोसाँईजी के सम्मुख आ गई। वैष्णवगण गोसाँईजी का दर्शन करके दुगुने उत्साह के साथ कीर्तन करने लगे। वे लोग गोसाँईजी की परिक्रमा करते हुए बड़े उल्लास के साथ उन्मत्त होकर नृत्य करने लगे। गोसाँईजी तब सामने की ओर हाथ उठाते हुए उच्च स्वर में— **‘जय शचीनन्दन, जय शचीनन्दन’** कहते-कहते गिर पड़े। संकीर्तन के बड़े-बड़े पृथक दल एक साथ मिलकर बड़े उत्साह से गोसाँईजी को चारों ओर से घेरकर उच्च स्वर में कीर्तन करने लगे। गोसाँईजी ब्रज-रज में बार-बार लोटकर, धूल से लथपथ होकर इस समय अचानक उठकर खड़े हो गए। फिर मृदंग-करताल के ताल के साथ दो-चार कदम बढ़कर सीधे उछल पड़े। **‘जय हे! जय हे!’** कहकर दाहिना हाथ ऊपर उछालते हुए उन्होंने उद्दाम नृत्य आरम्भ कर दिया। देखते-देखते वे मल्ल वेश में नृत्य करके उसी भीड़ में, विशाल राजमार्ग पर बिजली की भाँति भाग-दौड़ करने लगे। पता नहीं, किस प्रकार इतनी भीड़ में अबाध गति से गोसाँईजी का वह विशाल शरीर मानो हवा में उड़ने लगा। दायें-बायें, आगे-पीछे, जब जिस दिशा में गोसाँईजी दौड़े, भावावेग का प्रबल तूफान उठने से उसी दिशा में बड़ा कोलाहल मच गया। गोसाँईजी की बारम्बार ललकार व हरिध्वनि सुनकर सभी मानो दिग्भ्रमित हो गए। जगह-जगह वैष्णवगण भावावेश में अचेत हो गए। इसी समय गोसाँईजी कीर्तन-स्थल पर सर्वत्र दौड़-दौड़कर, जगह-जगह एक-एक बार घबराए हुए की भाँति खड़े होकर, तुरन्त सामने की ओर दोनों हाथ फैलाकर, **‘जय शचीनन्दन, जय शचीनन्दन’** कहते-कहते भूमि पर गिरकर लोटने लगे। ब्रज-रज सारे अंग में मलकर फिर तुरन्त उछल पड़े एवं अत्यधिक उत्साह के साथ हरिध्वनि करके नृत्य करने लगे। भावोन्मत्त श्रीधर खूब उछलते-उछलते अपने कम्बल को उड़ाकर गोसाँईजी के आगे-आगे चलने लगे। उनकी हुंकार और अद्भुत उछल-कूद से वैष्णव बाबाजी लोग भी उन्मत्त हो उठे। उन लोगों के विचित्र भावावेग को सहन न कर पाने से मैं पीछे की ओर हट गया। इसी समय मैंने पीछे देखा, गोसाँईजी के पुत्र श्री योगजीवन दौड़ते हुए आ रहे हैं।

योगजीवन ढाका के गेण्डारिया-आश्रम में हैं, यही जानता हूँ; अचानक उनको इस समय कीर्तन-स्थल में उपस्थित देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। संकीर्तन-स्थल में गोसाँईजी को देखकर योगजीवन उन्मत्त हो उठे। बड़ी दूर से ही ठाकुर को पकड़ने के लिए दोनों हाथ फैलाकर बारम्बार आगे बढ़ने का प्रयास किए; किन्तु मतवाले के समान लड़खड़ाते हुए चलते-चलते पग-पग पर दार्ये-बार्ये गिरने लगे। मैंने योगजीवन को पकड़ लिया। इस समय गोसाँईजी एकाएक पीछे मुख फेरकर रुक गए एवं योगजीवन की ओर एक क्षण स्थिर भाव से देखकर उच्च स्वर में हरिध्वनि करने लगे। योगजीवन ऊँघते-ऊँघते क्षणभर गोसाँईजी की ओर देखकर अचेत हो गए।

गोसाँईजी ने संकीर्तन के साथ-साथ गोपीनाथ मन्दिर में प्रवेश किया। भावविह्वल योगजीवन को लेकर कुछ समय बाद मैं भी वहाँ पहुँच गया। मन्दिर के आँगन में जाकर श्रीश्री गोपीनाथजी को साष्टांग प्रणाम करते ही गोसाँईजी समाधिस्थ हो गए। दिन के 3 बजे तक उन्हें बाह्यज्ञान नहीं हुआ। समाधि भंग होने के बाद हम सभी कुंज में आ गए।

## माता ठाकुरानी का श्रीवृन्दावन में आगमन: दारुजी का मन्दिर

श्री योगजीवन गोस्वामी अपनी छोटी बहिन कुतुबुड़ी (श्रीमती प्रेमसखी) और माता श्री योगमाया देवी को लेकर आज श्रीवृन्दावन आए हैं। कुंज में प्रवेश करते ही उन लोगों को देखा। माता ठाकुरानी के आने से हम सभी बड़े आनन्दित हुए। माँ ने भी हम सभी का खूब आदर किया; परन्तु गोसाँईजी ने माता ठाकुरानी के साथ उस प्रकार से कोई बातचीत नहीं की। सामान्य रूप से दो-चार बातें गेण्डारिया की दशा के विषय में पूछकर अपने आसन पर शान्त बैठे रहे। सुना है, माता ठाकुरानी इस बार गोसाँईजी को बिना सूचना दिए ही यहाँ आई हैं। गोसाँईजी के शरीर की दुरावस्था के सम्बन्ध में माता ठाकुरानी विशेष रूप से अवगत होकर विचलित हो गई थीं। उनकी अनुपस्थिति से गेण्डारिया-आश्रम में बहुत असुविधा होगी, जानते हुए भी उस बात की अवहेलना करके चली आईं। माता ठाकुरानी चकित होकर गोसाँईजी की देह की ओर बहुत समय तक एकटक देखती रहीं।

इस छोटे-से मकान में हम लोगों के रहने की सुव्यवस्था गोसाँईजी ने स्वयं ही कर दी है। नीचे हम लोगों के रहने का स्थान नहीं है। मकान बहुत छोटा है। पूरे मकान में लगभग पाँच-छः कट्ठा जमीन है। इस मकान के पूर्व की ओर मुख्य दरवाजा है। इस दरवाजे से प्रवेश करने से सामने ही 15-20 फीट के अन्तर में

पूर्व की ओर द्वार वाला दाऊजी ठाकुर का मन्दिर है। सामने एक बरामदा है। मन्दिर से संलग्न दक्षिण की ओर नीचे मात्र दो कमरे हैं। एक कमरा अपेक्षाकृत थोड़ा बड़ा है; वहीं भोग की रसोई बनती है और प्रसाद पाते हैं। पीछे की ओर दूसरे छोटे कमरे में एक ब्रह्मचारी रहते हैं। इसी कमरे के पास से ऊपर जाने के लिए सीढ़ी है। यह सीढ़ी ऊपर लम्बे बरामदे के पश्चिम की ओर निकलती है। बरामदे से संलग्न दक्षिण दिशा में पास-पास तीन कमरे हैं। सीढ़ी से जाने पर पहले कमरे में ही गोसाँईजी का आसन है। कोई खिड़की न रहने से इस कमरे में दिन के समय भी अन्धकार रहता है। इस कमरे के पूर्व ओर, दरवाजे के ठीक किनारे, उक्त बरामदे में गोसाँईजी का आसन दिनभर बिछा रहता है। इसी आसन पर गोसाँईजी उत्तरमुखी होकर प्रातः से संध्या तक स्थिर भाव से बैठे रहते हैं। मकान के उत्तरी भाग में कुछ खुली जमीन पड़े रहने के कारण बरामदे से देखने में कोई रुकावट नहीं है। गोसाँईजी के आसन-गृह के पूर्व की ओर अर्थात् बीच वाले कमरे में हम लोगों के रहने की व्यवस्था हुई है। पूर्व की ओर अन्तिम कमरे में कुतुबुड़ी व योगजीवन को लेकर माता ठाकुरानी रहेंगी। हम लोगों के कमरे में भी वैसा उजाला नहीं आता। अतएव दिन के समय माता ठाकुरानी के कमरे में हम लोग इच्छानुसार रह सकेंगे। उनके कमरे में पूर्व की ओर एक बड़ी खिड़की रहने से कमरा अच्छा उज्ज्वल है। यह कमरा गोसाँईजी के आसन से थोड़ा दूर होने के कारण हम लोगों को बातचीत करने की भी अच्छी सुविधा मिल गई है।

## ठाकुर की कृपा-दृष्टि से उत्कट रोग की शान्ति विविध प्रकार की बातें

6 जुलाई, रविवार। श्रीवृन्दावन में आकर अपने पित्तशूल के रोग में कोई कमी नहीं देख रहा हूँ। रात्रि में नींद न आने तक इस भयंकर कष्टदायक वेदना का विराम नहीं है। संध्या के समय गोसाँईजी के पास कुछ क्षण बैठ भी नहीं पाता, बिछौने पर पड़ा रहता हूँ। जिस दिन से वृन्दावन आया हूँ, उस दिन से इस रोग की यन्त्रणा मानो और भी बढ़ती जा रही है। गोसाँईजी मेरे शरीर की दुर्बलता देखकर, अपने पीने के थोड़े परिमाण के दूध का आधा भाग प्रतिदिन मुझे देते हैं। मैंने पूछा, अपने पीने के थोड़े परिमाण के दूध में से आप आधा मुझे क्यों देते हैं? मुझे दूध की कोई आवश्यकता नहीं है।

गोसाँईजी ने कहा— **“बचपन से ही तुम्हें दूध पीने का अभ्यास है। अब नहीं पीने से अस्वस्थ हो सकते हो।”** मेरे नहीं चाहने पर भी गोसाँईजी जिद करके प्रतिदिन मुझे दूध देते हैं।

प्रातः यमुना में स्नान करके, गोसाँईजी के पास बैठकर नाम जपने लगा। थोड़ा दिन चढ़ते ही मेरी वेदना भयंकर बढ़ गई। यन्त्रणा से मैं बेचैन हो गया। ऐसा न हो कि गोसाँईजी को पता चल जाए, इस भय से लम्बे समय तक एक-एक बार श्वास रोककर धीरे-धीरे दीर्घ श्वास छोड़ने लगा। गोसाँईजी समाधिस्थ थे। इस समय अचानक वे दो-तीन बार उठने के लिए तत्पर हो गए, जैसे डर गए हैं। फिर स्नेहपूर्वक मेरी ओर डबडबाई आँखों से देखते हुए कहने लगे— **‘ओह! तुम इतना कष्ट पा रहे हो! अच्छा, तुम्हें अब भुगतना नहीं पड़ेगा।’** इतना कहकर उन्होंने दो-तीन बार मेरी ओर देखकर पुनः आँखें बन्द कर लीं। गोसाँईजी का मुख इस समय लाल होकर सूज गया। वे पुनः समाधिस्थ हो गए।

मेरी वेदना की बात यहाँ कोई नहीं जानता। गोसाँईजी को यह किस प्रकार पता चल गया एवं **‘अब भुगतना नहीं पड़ेगा’**, यह बात भी उन्होंने क्यों कही? यही सब सोचते-सोचते मैं नीचे चला गया।

भोजन के बाद ठाकुर के पास बैठकर नाम-जप कर रहा था, थोड़ा अन्यमनस्क हो गया। इस समय धीरे-धीरे पता नहीं कब मेरी वेदना कम हो गई। कुछ क्षण बाद वेदना बिल्कुल ही नहीं रही, यह देखकर चौंक उठा। सोचने लगा, ‘ये अब क्या हुआ? इतने समय से जो असह्य यन्त्रणा अविराम भुगतता आया हूँ, अचानक वह कहाँ गई?’ यह असम्भव घटना देखकर कुछ क्षण के लिए मैं स्तब्ध रह गया। सोचा, ‘लगता है यह मेरे गुरुदेव की ही कृपा है।’ जो हो, वेदना वास्तव में दूर हो गई या नहीं, स्पष्ट जानने के लिए रात्रि में अधिक रोटी व अरहर की दाल एवं अधिक मिर्च व खट्टा खाया; लेकिन सारी रात मुझे आराम से नींद आई; वेदना का लेशमात्र भी अनुभव नहीं किया।

7 जुलाई, सोमवार। आज प्रातः यमुना में स्नान करके आने के बाद देखा, गुरुदेव अपने आसन पर शान्त भाव से बैठे हुए हैं, किन्तु उनका चेहरा बिल्कुल काला हो गया है। ठाकुर का श्रीमुख देखकर मानो मेरी छाती फट गई। तुरन्त हाथ में रखे वस्त्र फेंककर चित्कार करते हुए गिर पड़ा। ठाकुर का पैर पकड़कर रोते-रोते कहा, मेरा रोग ले लेने से आप काले हो गए! मेरा रोग मुझे ही दीजिए; उसे मैं भोगूँगा। ठाकुर ने मेरा हाथ छुड़ाकर कहा— **“ये क्या है? ऐसा क्यों कर रहे हो? भोग-टोग वह सब कुछ नहीं है। किसका भोग कौन लेता है!”**

केवल इतना कहकर ठाकुर ने आँखें बन्द कर ली। मुझे फिर कुछ पूछने का अवसर नहीं मिला। बैठे-बैठे रोने लगा। सोचने लगा, “हाय! ठाकुर मेरे लिए

कितनी दुःसह यन्त्रणा को सहन कर रहे हैं! ब्रह्मचारीजी ने मुझसे कहा था, 'यह रोग प्रारब्ध का है, भोगने से ही समाप्त होगा। अभी हाथ फेरकर हटा सकता हूँ; लेकिन ऐसा होने से अन्य जन्म में फिर भुगतना होगा।' हाय! उस समय मैं यदि उनकी बात मान लेता, छाती पर हाथ फेरने देता, तो अभी मेरे ठाकुर की छाती पर यह भयानक भाला नहीं पड़ता।" रोग की यन्त्रणा की अपेक्षा यह क्लेश मुझे अधिक बोध होने लगा। मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा— ठाकुर, यह आशीर्वाद दो, जिससे जीवन में तुम्हारी यह दया भूलूँ नहीं। मुझे स्वस्थ व शीतल रखने के लिए इस भयंकर रोग को लेकर अपनी छाती में आग जला लिए, इस बात को स्मरण में रखकर ही मेरा यह जीवन समाप्त हो।

-----

भोजन के बाद कुछ समय गुरुभाइयों के साथ बातचीत में बीत जाता है। प्रतिदिन 3 बजे ठाकुर के पास हरिवंश का पाठ किया करता हूँ। ठाकुर उसे सुनकर बड़े आनन्दित होते हैं। मैं पाठ के समय ठाकुर को बहुत हैरान करता हूँ। हरिवंश के तथ्य की बातें मुझे कुछ समझ में नहीं आतीं। ठाकुर से आज पूछा— 'ये सब कथाएँ तो कुछ समझ में नहीं आतीं। वृथा पढ़ने से क्या लाभ?

ठाकुर ने कहा— **"अभी केवल पढ़ते जाओ। साधना के द्वारा जब ये सब तत्त्व प्रकाशित होंगे, तब ये सब समझोगे। एक बार पढ़ा हुआ रहे तो अच्छा है।"**

मैं— तत्त्व प्रकाशित होने से ही तो सब जान जाऊँगा। तो फिर अभी क्यों पढ़ना?

ठाकुर ने कहा— **"नहीं, पढ़ा रहने से अच्छा है। प्रत्यक्ष होने पर ये सब शास्त्र-पुराणों का लिखा हुआ ही है, यह देखकर विश्वास और भी दृढ़ होगा।"**

मैं— यदि 20 वर्ष बाद किसी विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, तो फिर उसका प्रमाण किस ग्रन्थ में कहाँ किस अंश में है, वह कैसे स्मरण होगा?

ठाकुर— **एक बार पढ़ा रहने से, प्रत्यक्ष विषय कहाँ पढ़ा गया था, 20 वर्ष बाद भी वह स्मरण हो जाता है।**

ठाकुर से बहुत समय तक विविध प्रश्न किया। ठाकुर प्रतिदिन ही संध्या के समय श्रीमद्भागवत का पाठ सुनने श्री नीलमणि गोस्वामी जी के घर जाते हैं। नीलमणि गोस्वामी जी स्वयं ही उसका पाठ करते हैं। ठाकुर के साथ हम सब लोग भी जाया करते हैं। ऐसा भागवत-पाठ कदाचित् श्रीवृन्दावन में किसी ने सुना नहीं। एक-एक श्लोक की व्याख्या में नीलमणि गोस्वामी जी एक घण्टा भी लगा देते हैं।

ठाकुर ने कहा— “ग्रन्थ पाठ के समय उनकी व्याख्या में ज्ञान और भक्ति मानो मूर्तिमान् होकर प्रकाशित होते हैं। ऐसी असाम्प्रदायिक व्याख्या आजकल सुनी नहीं जाती।”

श्री नीलमणि गोस्वामी जी ठाकुर को ‘काका’ कहते हैं और उनके प्रति बहुत श्रद्धा रखते हैं।

-----

बातों-बातों में आज एक बार ठाकुर से पूछा, सुना है, हम लोगों के भयंकर मानसिक भोगों को आप ग्रहण करते हैं। प्रारब्ध का तीव्र दैहिक भोग भी क्या आपको भुगतना होता है?

ठाकुर ने कहा— “अरे बाबा, सभी भुगतना पड़ता है।”

## गोसाँईजी और माता ठाकुरानी का कलह

8 जुलाई, मंगलवार। गोसाँईजी के शरीर की अवस्था बहुत खराब है, यह जानते ही माता ठाकुरानी घबराकर श्रीवृन्दावन आ गईं। गेण्डारिया छोड़कर इस समय माता ठाकुरानी यहाँ न आएँ, इसके लिए ठाकुर ने बार-बार पत्र लिखा था। ठाकुर के मना करने के बाद भी माता ठाकुरानी यहाँ आए बिना रह नहीं सकीं। गोसाँईजी के शरीर की अवस्था से अवगत होकर वे बेचैन हो गईं! यहाँ आने के बाद से किन्तु माता ठाकुरानी मानो डरी-डरी-सी हैं; गोसाँईजी के पास जातीं नहीं, बैठतीं नहीं। ठाकुर भी उन्हें किसी काम से बुलाते नहीं। वे दिनभर अपने कमरे में ही बैठी रहतीं हैं, हम लोगों के साथ भी पहले के समान बातचीत नहीं करतीं। आज रात्रि में लगभग 11 बजे माता ठाकुरानी साहस करके गोसाँईजी के आसन के पास जाकर बैठ गईं एवं धीरे-धीरे उनको हवा करने लगीं। रात्रि में गोसाँईजी भयंकर गर्मी के कारण आसन-गृह में रह नहीं पाते; दिन के समय जहाँ रहते हैं, उसी बरामदे के आसन पर ही रात बिता देते हैं। मैं भी गरम अन्धकूप कमरे में न रह पाने के कारण बरामदे में रहता हूँ। गोसाँईजी के आसन से लगभग पाँच फीट के अन्तर में मेरा बिछौना है। गोसाँईजी ने मुझे वहाँ सोने के लिए कहा है। मैं जितने समय तक जागता रहा, ठाकुर समाधिस्थ ही थे। रात्रि में लगभग 3 बजे मेरी नींद टूटी; तब उसी प्रकार बिछौने में लेटे रहकर गोसाँईजी और माता ठाकुरानी का झगड़ा सुनने लगा। श्रीमती शान्तिसुधा (ठाकुर की बड़ी कन्या) गर्भवती हैं; बूढ़ी नानीजी (गोस्वामीजी की सास) अस्वस्थ हैं; योगजीवन की पत्नी भी बहुत छोटी है; इस अवस्था में उन लोगों को गेण्डारिया में छोड़कर माता ठाकुरानी का आना ठीक नहीं हुआ, गोसाँईजी बार-बार यही बात कहने लगे एवं

उनको तुरन्त ढाका लौट जाने के लिए हठपूर्वक कहने लगे। माता ठाकुरानी ने कहा कि गोसाँईजी का शरीर अभी जिस प्रकार अस्वस्थ और दुर्बल हो गया है, उनको इस प्रकार छोड़कर वे इस समय किसी भी परिस्थिति में कहीं नहीं जाएँगी। वे कोई श्रीवृन्दावन की तीर्थ-यात्रा पर नहीं आई हैं, ठाकुर की सेवा करने आई हैं एवं सेवा ही करेंगी। इस प्रकार वाद-विवाद में क्रमशः रात लगभग बीत गई। गोसाँईजी ने तब थोड़े तेज स्वर में माता ठाकुरानी से कहा—

**“मैंने जो आश्रम ग्रहण किया है, तुम मेरे साथ रहोगी तो उस आश्रम की मर्यादा नहीं रहेगी। तुम्हें श्रीवृन्दावन में रहना है, तो और कहीं जाकर रहो। इस कुंज में नहीं रह पाओगी। इसमें यदि तुम जिद करती हो, तो मैं कहीं और चला जाऊँगा; उत्तरकुरु चला जाऊँगा।”**

गोसाँईजी का अन्तिम कथन सुनकर माता ठाकुरानी ने फिर कुछ नहीं कहा, स्तब्ध होकर बैठी रहीं। इधर सबेरा भी हो गया। मैं शौच के लिए चला गया।

## माता ठाकुरानी का अलौकिक रूप से अन्तर्धान

9 जुलाई, बुधवार। प्रातःकाल यथासमय ठाकुर उठकर शौच के लिए गए, हम सब लोग भी नीचे आ गए। योगजीवन, सतीश, श्रीधर आदि एक-एक करके सभी स्नान करने गए। मैं भी मुँह धोकर यमुना जाने के लिए प्रस्तुत हुआ। इसी समय माता ठाकुरानी नीचे आईं। उन्होंने मुझे देखकर कहा— ‘क्यों कुलदा, यमुना जाओगे नहीं?’ मैंने कहा— हाँ जाऊँगा। आप मेरे साथ जाएँगी? माता ठाकुरानी ने कहा— ‘मैं जाऊँगी। लेकिन, तुम जाओ न! तुम्हारा लोटा मुझे दो।’ यह कहकर वे मेरे हाथ से लोटा लेकर 12-15 फीट के अन्तर में कुँए के किनारे खड़ी हो गईं। फिर कुल्ला करते-करते एक-एक बार मेरी ओर देखने लगीं। मैं स्नान के लिए जाने से पहले एक बार ठाकुरजी को पाँच-छः सेकेण्ड के लिए प्रणाम करके सिर उठाकर देखा, माता ठाकुरानी नहीं हैं। कुँए के किनारे केवल लोटा पड़ा हुआ है। माता ठाकुरानी को न देखकर, मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ; सोचा— ‘इतनी शीघ्र माँ कहाँ गई? अभी तो वे यहीं पर खड़ी थीं। कहीं से जाने का रास्ता भी नहीं है! दीवाल से घिरा मकान, चारों ओर कुछ है भी नहीं। मुख्य दरवाजे से जाएँगी भी तो मेरे पास से होकर ही जाएँगी।’ मैं लोटा उठाकर यही सब विचार करते-करते यमुना की ओर चला गया। यमुना में स्नान करके कुंज में प्रवेश करते ही योगजीवन ने मुझसे पूछा— ‘क्यों! तुम माँ को कहाँ छोड़कर आ गए, माँ आईं नहीं।’

मैंने कहा— कहाँ, माँ तो मेरे साथ गईं नहीं। वे क्या अपने कुंज में नहीं हैं? योगजीवन ‘नहीं’ कहकर विस्मयपूर्वक मेरी ओर देखते रह गए। तब मैंने रात्रि में

हुए कलह का विवरण सबको बतलाया। सभी ने अनुमान लगाया कि ठाकुर के प्रति अप्रसन्न होकर सम्भवतः किसी कुंज में चली गई हैं। कुछ समय तक प्रतीक्षा करके हम लोगों ने देखा, माँ आई नहीं; तब श्रीधर, सतीश, स्वामीजी, योगजीवन एवं मैं विचलित होकर माता ठाकुरानी को ढूँढने बाहर निकले। प्रातः साढ़े 6 बजे से दिन के 1 बजे तक वृन्दावन के कुंज-कुंज में, रास्ते में, मन्दिर में, बागान में और यमुना के किनारे सभी जगह अच्छे-से माता ठाकुरानी को तलाश किया; लेकिन कहीं उनका पता नहीं चला। परिचित सभी लोगों से पूछा गया, लेकिन कोई भी कुछ बतला नहीं पाया। 1 बजे तक सारे वृन्दावन में दौड़-धूप करके, थककर हम लोग कुंज में लौटे। नीचे बैठकर सभी परामर्श करने लगे, 'अब क्या किया जाए?' योगजीवन और श्रीधर बार-बार मुझसे जिद करके कहने लगे— 'भाई, तुम जाकर माँ के विषय में गोसाँईजी से कहो। आज वे इतने गम्भीर हैं कि उनके पास जाने का हम लोगों का बिल्कुल भी साहस नहीं होता।' अन्त में कोई उपाय न देखकर मैं धीरे-धीरे जाकर ठाकुर के पास बैठ गया; कुछ क्षण बाद ठाकुर ने आँखें खोलीं। मैंने तुरन्त कहा— माता ठाकुरानी नहीं मिल रही हैं। वे तो अकेली कभी कुंज से कहीं जाती नहीं; लेकिन पता नहीं आज कहाँ चली गई? सबेरे से अब तक हम लोग उनकी खोज में सारा वृन्दावन घूमते रहे, कहीं भी नहीं मिलीं। ठाकुर ने बिन्दुमात्र भी व्यग्रता न दिखलाकर, सहज भाव से कहा— **"कहाँ जाएँगी? तलाश करके देखो। यमुना के किनारे देखे हो?"**

मैंने कहा— कोई भी स्थान छोड़ा नहीं। रास्ते के लोगों से भी पूछा है। ठाकुर ने क्षणभर चुप रहकर थोड़ा मुस्कुराते हुए कहा— **"उनको ढूँढने से भी अब मिलेंगी नहीं। परमहंसजी उनको ले गए।"**

मैंने पूछा— परमहंसजी माताजी को क्यों ले गए?

ठाकुर ने कहा— **"कल जब उनको अन्यत्र रहने के लिए कहा गया, मना कर दीं। बहुत समझाकर कहा, किसी प्रकार भी सहमत नहीं हुई। तब मैंने परमहंसजी को स्मरण किया। वे तुरन्त आकर मुझसे कहे, 'इसके लिए व्याकुल क्यों हो रहे हो? चिन्ता की कोई बात नहीं। कल ही मैं उनको अन्यत्र ले जाऊँगा।' वे उनको ले गए; ढूँढना व्यर्थ है।"**

मैं— तो फिर यहाँ माताजी के आने की क्या सम्भावना नहीं है?

ठाकुर— उनकी किसी ओर भी अब ममता नहीं है; केवल कुतु के प्रति थोड़ा आकर्षण है। इसी से कुतु के लिए पुनः आ भी सकती हैं। अभी उस विषय में स्पष्ट कुछ कहा नहीं जा सकता। आना, नहीं आना उनकी इच्छा पर है।



मैं— परमहंसजी किस प्रकार ले गए? उनको तो वहाँ पर देखा नहीं! माताजी मेरे से मात्र 12-15 फीट के अन्तर में थीं। पाँच-छः सेकेण्ड के लिए केवल एक बार मेरी दृष्टि अन्य ओर थी। मुख फेरकर देखा, माताजी नहीं हैं। परमहंसजी आते तो वे दिखलाई पड़ते!

ठाकुर— **परमहंसजी सूक्ष्म शरीर में आए थे; उनको देखोगे कैसे? वे सूक्ष्म शरीर में ही आकर ले गए!**

मैं— परमहंसजी तो सूक्ष्म शरीर में आए थे, किन्तु माताजी तो सूक्ष्म शरीर में गई नहीं! माताजी के स्थूल शरीर को क्षणभर के भीतर परमहंसजी किस प्रकार अन्यत्र ले गए?

ठाकुर— वे लोग सब-कुछ कर सकते हैं। योगी लोग केवल इच्छा से इस स्थूल देह को सूक्ष्म में परिवर्तन कर सकते हैं, सूक्ष्म देह को भी स्थूल कर सकते हैं। शरीर के पंचभूत को पंचभूत में मिलाकर, स्थूल को सूक्ष्म करके क्षणभर के भीतर उनको ले गए।

मैं— परमहंसजी माताजी को कहाँ ले गए? क्या श्रीवृन्दावन में ही उनको सूक्ष्म शरीर में रखे हैं, या और कहीं ले गए?

गोसाँईजी— **श्रीवृन्दावन में अब क्यों रखेंगे? परमहंसजी उनको सीधे मानससरोवर ले गए।**

मैं— मानससरोवर में माताजी क्या सूक्ष्म शरीर में हैं?

गोसाँईजी— **वैसा क्यों? वहाँ जाकर फिर जैसी थीं, वैसी हो गई।**

मैं— मानससरोवर में परमहंसजी हैं; वहाँ क्या और भी कोई हैं— या परमहंसजी अकेले ही रहते हैं?

ठाकुर— **अन्य भी बहुत हैं! कितने ऋषि-मुनि, कितने देवी-देवता हैं!**

मैं— अब वहाँ रहकर माताजी क्या करेंगीं?

ठाकुर— **साधन-भजन करेंगीं, कितना आनन्द करेंगीं! वहाँ जाने के बाद फिर क्या लौटने की इच्छा होती है?**

मैं— मानससरोवर तो तिब्बत में है। वहाँ देवी-देवता, ऋषि-मुनि रहते हैं?

ठाकुर— **नहीं, नहीं, ये वह मानससरोवर नहीं है। भूगोल में जिस मानससरोवर को पढ़े हो, वह नहीं— वह तो 'मानतलाब' है। मानससरोवर बहुत दूर हिमालय के ऊपर है।**

मैं— हम लोग क्या मानससरोवर जा नहीं सकते?

ठाकुर— इस शरीर से किस प्रकार जाओगे? मार्ग बड़ा ही दुर्गम है। खूब योगेश्वर्य न होने से वहाँ जा नहीं सकते। लोग जिसको मानससरोवर समझते हैं, वहाँ सहज में ही जा सकते हैं। वह तो मानससरोवर नहीं है! मानससरोवर कैलास जाने के मार्ग पर है।

मैं— तो माताजी कुतु के लिए फिर आ सकती हैं?

ठाकुर— वह कह नहीं सकते— इतनी-सी ममता को इच्छा करने से ही वे लोग हटा सकते हैं।

ठाकुर के साथ बातचीत में बहुत समय बीत गया। संध्या के समय और दिनों की भाँति आज भी ठाकुर के साथ भागवत-पाठ सुनने गया। कुंज लौटने में रात हो गई।

## योगजीवन को गृहस्थी में रहने का आदेश

10 जुलाई, गुरुवार। माता ठाकुरानी के अन्तर्धान से सभी के मन में आघात लगा। योगजीवन बड़े अधीर हो गए। अब गेण्डारिया जाएँगे नहीं, गृहस्थी में नहीं रहेंगे— कहने लगे। वे बिल्कुल निर्लिप्त हो जाना चाहते हैं। ठाकुर उन्हें स्नेहपूर्वक अच्छा उपदेश देकर शान्त करने लगे। योगजीवन ने आज बहुत समय तक ठाकुर के साथ तर्क किया। ठाकुर ने अन्त में कहा, “अब अधिक दिन तुझे गृहस्थी में रहना नहीं होगा, निश्चित जान ले। शीघ्र ही तेरा सब ठीक हो जाएगा। फिर भी वह न होने तक कुछ समय गृहस्थी में रहना होगा। उतना-सा कर्म समाप्त किए बिना चलेगा नहीं। अभी ढाका जाकर रहो।” अत्यन्त आग्रह समझकर योगजीवन अन्त में शीघ्र ही पुनः ढाका जाने के लिए सम्मत हो गए।

संध्या के समय जब हम लोग श्रीमद्भागवत सुनने जाते हैं, रास्ते में सब ओर हम लोग केवल माता ठाकुरानी की ही खोज किया करते हैं। माता ठाकुरानी के अन्तर्धान के बाद ठाकुर ने मुझसे कहा— “कुतु पर सदैव दृष्टि रखना। पाठ सुनने जब जाओगे, कुतु का हाथ पकड़कर ले जाना। पाठ सुनने जब बैठोगे, उसको पास में ही बैठाना। कहीं उसको ले न जाएँ!”

मैंने पूछा— क्या कुतु को भी ले जा सकते हैं?

ठाकुर— क्यों नहीं ले जा सकते? बिल्कुल ले जा सकते हैं।

आश्चर्य यह है कि माता ठाकुरानी के लिए कुतु में थोड़ा भी दुःख का भाव नहीं देख रहा हूँ। कुतु दिनभर ठाकुर के पास बैठी रहती हैं; ठाकुर के साथ

बातचीत में, हँसी-मजाक में दिन बिता देतीं; एक बार भी माँ का स्मरण नहीं करतीं; किसी से माँ के सम्बन्ध में कोई बात पूछतीं भी नहीं। इतनी बड़ी एक घटना हो गई, कुतु मानो कुछ जानतीं ही नहीं। कुतु को लक्ष्य करके ठाकुर से मैंने पूछा— माँ के अभाव में क्या किसी-किसी को कुछ भी कष्ट नहीं होता? ठाकुर ने कहा— **“हाँ, कष्ट सभी को होता है; तो भी किसी-किसी में धैर्य बहुत अधिक होता है।”**

### वानर 'कृष्णदास'

भोर में प्रातःक्रिया सम्पन्न करने के बाद, ठाकुर बरामदे में अपने आसन पर बैठते हैं। इसी समय 'कृष्णदास' आकर हाजिर होते हैं। 'कृष्णदास' एक छोटा-सा बन्दर है। ठाकुर ने आदरपूर्वक उसका नाम 'कृष्णदास' रखा है। ठाकुर रात्रि में भोजन करने के पहले 'कृष्णदास' के लिए कम-से-कम एक रोटी रख देते हैं। प्रातःकाल प्रतिदिन 'कृष्णदास' आकर उसे खाते हैं। 'कृष्णदास' के लिए यहाँ रोक-टोक नहीं है। प्रातःकाल आते ही 'कृष्णदास' बाहर से दो-तीन बार चीं-चीं करके आवाज करते हैं। तब ठाकुर अपने हाथ में रखकर उनको खाना देते हैं। दो-चार बार आवाज करने के बाद भी जब 'कृष्णदास' को खाना न मिले, तो वे बराबर ठाकुर के आसन-गृह में जाते हैं; जहाँ खाना रखा होता है, वहाँ से खाना लेकर ठाकुर के सामने आकर बैठते हैं; फिर धीरे-धीरे पाँच-सात मिनट में खाना पूरा करके चले जाते हैं; लेकिन यदि किसी आकस्मिक कारण से 'कृष्णदास' को आने के बाद भी खाना नहीं मिलता, तो वे ठाकुर का हाथ-पैर पकड़कर खींचा करते हैं— कभी गोद में, तो कभी सीधे ठाकुर के कंधे पर चढ़कर बैठ जाते हैं। उनको जब तक खाना न दे दें, ठाकुर निश्चिन्त होकर आसन पर बैठ नहीं पाते। 'कृष्णदास' बहुत शान्त प्रकृति के नहीं हैं; फिर भी ठाकुर के बड़े दुलारे हैं।

### भक्त बूढ़े वानर का कार्य

एक और बूढ़ा बन्दर ठाकुर का भक्त है। ये बहुत अनुभवी हैं। जिस दिन से ठाकुर ने यहाँ आसन लगाया है, उस दिन से ही ये ठाकुर के नित्य संगी हैं। प्रातः चाय पीने के बाद श्रीधर कुछ समय तक श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थ का पाठ करते हैं। फिर दिन के 9 बजे ठाकुर श्रीमद्भागवत का पाठ आरम्भ करते हैं। ठीक उसी समय ये बूढ़े बन्दर आकर ठाकुर के पास ही कटघरे के बाहर बैठते हैं एवं गाल पर हाथ रखकर शान्त भाव से ठाकुर की ओर देखा करते हैं; लगता है, जैसे भागवत सुन रहे हैं। पाठ समाप्त न होने तक वे किसी प्रकार से अपना स्थान

छोड़ते नहीं। यदि कोई दुष्ट बन्दर पाठ के समय गड़बड़ करे, तो वे ऐसी दृष्टि से एक बार उसकी ओर देखते हैं कि वह भय से चीं-चीं करके भाग जाता है। पाठ के समय बूढ़े को कुछ खाने की वस्तु देने से वे किसी प्रकार भी उसे खाते नहीं, रख देते हैं; पाठ समाप्त होने पर धीरे-धीरे उसे खा लेते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि एक दिन के लिए भी बूढ़े बन्दर का यह भागवत-श्रवण बन्द नहीं होता। दिनभर वे कहीं भी क्यों न रहें, 9 से 10 बजे तक वे निर्दिष्ट स्थान छोड़कर कहीं नहीं रहते। वे इस मुहल्ले के बन्दरों के मुखिया हैं। उनका शरीर अच्छा हृष्ट-पुष्ट बलिष्ठ है। देखकर बड़ा आनन्द आता है। बूढ़े के और भी अद्भुत कार्य के बारे में सोचकर चकित हो जाता हूँ। पूरे वृन्दावन में घर-घर में बन्दरों का उपद्रव बहुत अधिक है। बूढ़े के कारण ही लगता है, हमारे कुंज में बन्दरों का वैसा उपद्रव नहीं है। एक दिन प्रातः अचानक एक बन्दर आकर हम लोगों का एक लोटा ले गया। शौच के लिए जाने में बड़ी असुविधा होने लगी। बूढ़े बन्दर कुछ क्षण बाद ही कुंज में आए। ठाकुर ने बूढ़े से कहा— **“बूढ़ा, तुम्हारे दल का एक बन्दर आकर हमारा एक लोटा ले गया, हम लोगों को बड़ी असुविधा हो रही है। लोटा ला दोगे?”** ठाकुर की बात सुनकर वे तुरन्त उछलकर एक ऊँचे स्थान पर चढ़ गए; वहाँ दोनों पैरों पर खड़े होकर चारों ओर देखने लगे। जो बन्दर हम लोगों का लोटा लेकर भागा था, वह तीन-चार मकान के बाद एक ब्रजवासी के घर की छत पर बैठा था। बूढ़े ने एक बार उसकी ओर इस प्रकार से देखा कि वह लोटा छोड़कर चीं-चीं करते हुए भागकर अदृश्य हो गया। तब बूढ़े ने धीरे-धीरे जाकर लोटा उठा लिया और ठाकुर के पास रखकर वे शान्त भाव से बैठ गए।

वानर की इस प्रकार बुद्धि की इसके पहले मैंने कभी कल्पना भी नहीं की। वानर पालतू नहीं है; फिर भी ऐसा बुद्धिमान और आज्ञाकारी है, यही आश्चर्य है! ठाकुर ने कदाचित् कहा है— **‘ये कोई वैष्णव महात्मा हैं, ब्रजवास की आकांक्षा से वानर देह धारण किए हुए हैं।’**

## ठाकुर के भोजन की अत्यन्त दुरावस्था

भोर में ठाकुर आसन से उठकर शौच के लिए जाते हैं। श्रीधर जल, कौपीन और बहिर्वासादि लेकर खड़े रहते हैं। मुँह धोने के बाद ठाकुर ऊपर आकर ‘कृष्णदास’ को खाना देते हैं। फिर जाकर अपने आसन पर बैठते हैं। श्रीधर इसी समय चाय बनाने लगते हैं।

चाय की दुर्दशा देखकर बड़ा कष्ट हुआ। एक पैसे का थोड़ा-सा बासी दूध और थोड़ी-सी चीनी का किसी प्रकार जुगाड़ होता है। अर्थाभाव के कारण अत्यन्त

साधारण श्रेणी की चाय सस्ते में थोड़ी-थोड़ी खरीदकर लाई जाती है। ठाकुर ने एक दिन की बनी चाय की पत्ती को न फेंककर, उसे सुखाकर रखने के लिए कहा है। अभाव होने पर उन्हीं पत्तियों को जल में उबालकर ठाकुर को दिया जाता है। मलेरिया के कारण बहुत समय से ठाकुर को चाय पीने का अभ्यास है। समय पर वह न मिलने से उन्हें असुविधा होती है; लेकिन इस प्रकार की नीरस चाय ठाकुर किस प्रकार पीते हैं, समझ में नहीं आता। चाय के ऐसे अभाव की खबर एक बार कोलकाता पहुँचते ही सैकड़ों गुरुभाई अच्छी उत्कृष्ट चाय आग्रहपूर्वक भेज देंगे; परन्तु ठाकुर की इच्छा के बिना कुछ करना, किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। ठाकुर की अनुमति का भरोसा न करके मैंने भैया को उत्कृष्ट चाय भेजने के लिए लिख दिया।

ठाकुर के चाय पीने के बाद श्रीधर एक अध्याय श्रीचैतन्यचरितामृत का पाठ करते हैं। उसके बाद, 9 बजे ठाकुर स्वयं श्रीमद्भागवत का पाठ किया करते हैं।

मध्याह्न में किसी-किसी दिन ठाकुर यमुना में स्नान करते हैं। फिर 12 बजे नीचे रसोई में जाकर सभी के साथ प्रसाद ग्रहण करते हैं। ठाकुर का शरीर इतना क्यों सूख गया है, प्रसाद का रूप देखने से ही वह स्पष्ट समझा जा सकता है। ठाकुर जब श्रीवृन्दावन में आए थे, अनेक सम्पन्न भक्तों ने ठाकुर को अच्छे मकान में ले जाकर सेवा करने का यथेष्ट आग्रह किया था; लेकिन दामोदर गरीब है, इसलिए दामोदर की प्रार्थना और 'जिद' से ठाकुर उसके ही कुंज में आ गए। ठाकुर की सेवा के लिए जो कुछ भी हर महीने आता है, ठाकुर उसका एक कौड़ी भी न रखकर दाऊजी ठाकुर के भोग के लिए दामोदर के हाथ में दे देते हैं। दामोदर ने आरम्भ में दो-तीन महीने तक तो दाऊजी का भोग ठीक ही दिया था। फिर ठाकुर के शिष्यों में अनेक धनवान् लोग हैं, यह खबर पाकर उसने बड़ा 'छल-कपट' आरम्भ कर दिया। ठाकुर को आहारादि का बहुत कष्ट हो रहा है, भक्त शिष्य लोग यह सुनकर निश्चय ही मुट्ठी भर-भरकर रुपये भेजेंगे, यही दामोदर का दृढ़ विश्वास है। इसी कारण अब दाऊजी की सेवा के लिए रुपये मिलने पर दामोदर उससे सर्वप्रथम अपने घर की मासिक प्रयोजनीय सामग्री जमा करता है। फिर जो बचता है, उससे किसी प्रकार दाऊजी की सेवा की व्यवस्था होती है। प्रायः तीन महीने से रोटी, भात और उबला कुम्हड़ा दाऊजी को भोग लग रहा है। नमक और मसाला के बिना केवल जल में उबला कुम्हड़ा पत्थर की मूर्ति दाऊजी के भोग में ही अनन्तकाल चल सकता है; परन्तु रक्त-मांस के शरीर में जो लोग वह प्रसाद पाते हैं, वे लोग फिर कब तक उसमें रुचि और भक्ति रखेंगे?

भरपेट भोजन ठाकुर का एक दिन भी नहीं होता। किसी प्रकार थोड़े-से दूध में एक मुट्ठी भात डालकर उसे ही खाकर ठाकुर उठ जाते हैं। केवल नमक और

उबले कुम्हड़े के साथ बेकार सस्ते मोटे आटे की रोटी, दो-एक से अधिक ठाकुर किसी दिन भी खा नहीं पाते। रात्रि भोजन की व्यवस्था और भी भयानक है। मध्याह्न का ही उबला कुम्हड़ा और मोटी रोटी अल्प मात्रा में रात के लिए रख दी जाती है। जिसके पेट में भूख की ज्वाला होती है, केवल वही उस सड़े दुर्गन्ध युक्त कुम्हड़े और कड़कड़ी रोटी को एक गहरी श्वास छोड़कर 'हरे कृष्ण', 'हरे कृष्ण' कहते-कहते गले से नीचे उतारकर चला आता है। अनुनय-विनय करके दामोदर से भोग का थोड़ा अच्छा बन्दोबस्त करने के लिए कहते हैं, तो दामोदर रुपये के लिए 'बंगला मुल्क के' गोसाँई के 'चेलों' के पास 'खत' भेजने का उपदेश देता है। वह हम लोग करते नहीं; अतः 'गोसाँई का क्लेश तुम लोगों के प्राण में लगता नहीं' कहकर, वह हम लोगों को 'पाखण्डी' कहकर गाली देता है। हर महीने इतने रुपये पाकर भी दामोदर भोग की अच्छी व्यवस्था क्यों नहीं करता, हम दो-चार लोग मिलकर यह पूछते हैं, तो दामोदर माला फेरते-फेरते तत्त्व की बातें कहता है। कहता है— 'अरे, भला भोजन भजनवादी। भगत् का लोभ नहीं चाहि।' हाथ-पैर पकड़कर दामोदर से हम लोग भोजन में थोड़ा परिवर्तन करने के लिए कहते हैं तो दामोदर उबला कुम्हड़ा न देकर उसका छिलका उबालकर देता है। 'रुपया-पैसा अपने हाथ में रखकर, हम स्वयं ही ठाकुर के भोग की व्यवस्था करेंगे' यह भय दिखाने पर दामोदर बड़ा उत्साह दिखलाते हुए बाजार जाता है; बाजार का छँटा-छँटा सूखा व कीड़ा लगा, लोगों का त्यागा हुआ बैंगन और 'पंचमेल' साग लाकर उसे ही पकाकर देता; फिर 'कैसा खिलाया' 'कैसा खिलाया' कहकर 10-15 दिन तक उसी की बड़ाई करता। पेट की ज्वाला से सर्वदा हमारे भीतर से 'भागो भागो' की चीख निकलती है। हे भगवान्! और कब तक यह भोगना पड़ेगा! प्रतिदिन भोजन के लिए बैठते ही दामोदर को पीटने की इच्छा होती है, किन्तु एक दिन भी कुछ कहने का अवसर नहीं मिलता। 'दामोदर का यह अत्यधिक अत्याचार अब सहन नहीं होता' ठाकुर से कहने पर उन्होंने मुस्कुराते हुए मधुर स्वर में कहा—

**"दाऊजी जागृत देवता हैं। वे सब-कुछ देख रहे हैं। समय पर दाऊजी ही दामोदर को दण्ड देंगे। तुम लोग दामोदर को कुछ मत कहना।"**

ठाकुर के अच्छा पल्ले पड़कर देखता हूँ, अब 'बचाओ मधुसूदन' पुकारना होगा।

## दामोदर को दाऊजी महाराज का दण्ड

14 जुलाई, सोमवार। आज प्रातः ठाकुर के चाय पीने के बाद, असमय में दामोदर पुजारी कुंज में आया। मुख फूला हुआ है, किसी के साथ बात नहीं की। वह काँपते-काँपते ठाकुर के सामने जाकर प्रणाम करके रो पड़ा। ठाकुर ने पूछा—

**"क्यों दामोदर, क्या हुआ?"**

दामोदर ने अपने पूरे शरीर में, विशेषकर दोनों गालों में प्रहार के चिह्न दिखलाकर कहा— 'बाबा, दाऊजी ने हमको बहुत मारा।' दाऊजी महाराज ने क्यों मारा, ठाकुर के यह पूछने पर दामोदर ने कहा— 'बाबा, रात्रि के अन्तिम प्रहर में मैंने निद्रित अवस्था में स्वप्न देखा, दाऊजी ने अचानक आकर मुझे दबा दिया। वे दोनों हाथ से मेरे गालों पर भयंकर थप्पड़ मारने लगे। फिर मेरे पूरे शरीर में घूँसे और कुहनी से भयंकर मारते-मारते कहने लगे, 'पाखण्डी, तेरा इतना साहस? अच्छे-से भोग नहीं देता; गोसाँई खा नहीं पाते। उनको खाने का कष्ट देता है! आज तुझे घूँसे से मार डालूँगा।' दाऊजी के भयंकर प्रहार की व्यथा से मैं चित्कार करते हुए जाग उठा, किन्तु मेरे सारे शरीर की वेदना कम नहीं हुई। यह देखिए, बाबा, मेरे गाल सूजे हुए हैं। इन सब अंगों में मुझे अभी भी क्लेश हो रहा है।'

ठाकुर ने दामोदर से कहा— **“दाऊजी महाराज ने तुम्हें दण्ड दिया है— तुम भाग्यवान् हो। भक्तिपूर्वक दाऊजी की सेवा करो। वे तुम्हारा कोई अभाव नहीं रखेंगे।”**

हमें दामोदर के गालों की दशा देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। स्वप्न का प्रहार शरीर पर उभर आया— ऐसा पहले कभी नहीं देखा। दाऊजी महाराज का कैसा अनुशासन है, वह विचार-बुद्धि द्वारा कुछ समझ नहीं आता। वह जो भी हो, दामोदर का कठोर दण्ड-भोग देखकर मन-ही-मन बड़ा खुश हुआ; सोचा— अब से दोनों समय भरपेट भोजन करके श्रीवृन्दावन वास कर सकूँगा।

-----

**जुलाई—अगस्त, सन् 1890 ई. (बंगला सन् 1297, श्रावण)**

**कुतु की बात: माता ठाकुरानी की वापसी**

16 जुलाई, बुधवार। आज मध्याह्न में अवकाश पाकर ठाकुर से माता ठाकुरानी के सम्बन्ध में पूछा— माताजी को गए इतने दिन हो गए, उनकी तो कोई खोज-खबर अभी तक मिली नहीं। वे क्या अब वास्तव में नहीं आएँगी?

ठाकुर— वह कह तो दिया, कुतु के प्रति थोड़ा आकर्षण है। यदि आती हैं, तो कुतु के लिए ही आएँगीं। जो सब महात्मा उन्हें ले गए हैं, वे लोग इच्छा मात्र से उस थोड़े-से आकर्षण को भी काट सकते हैं। अतः उनके आने के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता।

मैं— महात्मा लोग माँ के आकर्षण को ही तो काटेंगे न। कुतु तो बच्ची है, उसका तो माँ के प्रति एक स्नेह है।

ठाकुर— कुतु को क्या माँ के लिए कष्ट हो रहा है?

मैं— वह कुछ समझ नहीं आता। कुतु की बातचीत, हँसी-मजाक, चलना-फिरना देखकर तो लगता नहीं, वह एक बार भी माँ को स्मरण करती है। माँ यहाँ रहने की आशा से आई थीं। उनके इस प्रकार जाने से सभी को बड़ा दुःख हुआ।

ठाकुर— उनके इस प्रकार जाने से अच्छा हुआ। ऐसे जाने से कोई हानि नहीं होगी, मंगल होगा। इस बार श्रीवृन्दावन आने से उनको कभी वापस ले जाना सम्भव नहीं होगा। अपने स्थान पर ही वे रह जाएँगीं। इसी कारण उनको श्रीवृन्दावन आने के लिए बारम्बार मना किया था।

इसी समय कुतु ने आकर ठाकुर से कहा— 'बाबा, माँ पाठ सुनने आती हैं। प्रायः ही माँ को देखती हूँ। आज भी माँ को वहाँ देखी।'

ठाकुर— वे कहाँ थीं? कैसी लगीं?

कुतु— क्यों? माँ हम लोगों के पास ही तो बैठी थीं। इस शरीर में नहीं थीं। आज लगता है, माँ अपने कुंज में आएँगीं।

ठाकुर— हाँ आ सकती हैं।

मैंने कुतु से पूछा— कुतु, माँ के लिए क्या तुम्हें कष्ट होता है?

कुतु ने कहा— 'कष्ट क्यों होगा? माँ को न देख पाने से कष्ट होता। माँ को तो कई बार देखती हूँ। अब देखना, माँ आज आएँगीं।'

मैंने कहा— वह तुम कैसे समझीं?

कुतु ने मेरी बात से थोड़ा विरक्त होकर कहा— 'इसमें समझना क्या? सुने नहीं— बाबा ने भी तो कहा है!' एकाएक इस समय कुतु ने ठाकुर से कहा— 'बाबा, मुझे ऐसा क्यों होता है? दिन के समय भी जब जागती रहती हूँ, तब भी स्वप्न जैसा लगता है।'

ठाकुर— क्या कहती हो— थोड़ा स्पष्ट कहो न?

कुतु— सब समय रह-रहकर मुझे लगता है, जो कुछ देखती हूँ, सुनती हूँ, करती हूँ ये सब कुछ नहीं है, मिथ्या है; सभी मानो स्वप्न देख रही हूँ लगता है। ऐसा क्यों होता है?

ठाकुर— तेरा बड़ा सौभाग्य है, इसीलिए। यथार्थ में ही ये सब-कुछ, कुछ भी नहीं है। सभी मिथ्या है। स्वप्न ही तो है। ये सब स्वप्न है, स्पष्ट जान लेने से ही तो हो गया! और क्या?



संध्या के थोड़ा पहले, कुतु के साथ ठाकुर की ये सब बातचीत हो रही है, इसी समय एक बूढ़ी आकर नीचे से ही हम लोगों को पुकारते हुए कहने लगीं— 'अरे, कोई है? तुम लोगों की माता-गोसाँई हमारे कुंज में ही हैं। तुम लोगों को खबर देने आई हूँ। मैंने अभी तुरन्त ही देखा, माता-गोसाँई हमारे घर पर बैठी हुई हैं। कब आई, कहाँ से आई— कुछ पता नहीं। घर पर उनको देखते ही तुम लोगों के पास दौड़कर आई हूँ।'

ठाकुर ने योगजीवन को बुलाकर कहा— **“योगजीवन, अभी चले जाओ। जाकर ले आओ।”**

हमारे कुंज के दो मकान के बाद ही एक गरीब गृहस्थ के घर में माता ठाकुरानी बैठी थीं। योगजीवन ने जाकर माताजी को ले आया। माताजी के शरीर में कोई विशेष परिवर्तन दिखा नहीं, परिवर्तन में केवल उनके वस्त्र गेरुए दिखे। माता ठाकुरानी ने आकर ठाकुर को प्रणाम किया। ठाकुर भी बड़े सन्तुष्ट भाव से उनके साथ बातचीत करने लगे; परन्तु जो इतने दिन माता ठाकुरानी कहाँ किस प्रकार थीं, उस सम्बन्ध में उन्होंने एक बात भी नहीं पूछी।

रात्रि में, भोजन के बाद ठाकुर के आसन के पास लेटा रहा। ठाकुर रातभर बरामदे में ही रहते हैं। मच्छरों का बड़ा उपद्रव है। माता ठाकुरानी पंखा लेकर पहले की भाँति ठाकुर को हवा करने लगीं। इसी समय योगजीवन, श्रीधर आदि द्वारा माता ठाकुरानी के आकस्मिक अन्तर्धान के विषय में पूछने पर माता ठाकुरानी ने कहा— “परमहंसजी पाँच महापुरुषों को साथ लेकर आए थे। वे नौ-दस फीट लम्बे थे; सभी के सिर पर पगड़ी थी। वे लोग मुझे यमुना में ले गए। कहे— ‘यहाँ स्नान करो।’ मैंने स्नान किया। फिर वे लोग मुझे कहाँ किस प्रकार ले गए— कुछ पता नहीं। कुछ क्षण बाद देखी— पहाड़ पर हूँ। बहुत ही सुन्दर स्थान है। परमहंसजी ने मेरे रक्षक के रूप में उन पाँच महापुरुषों को नियुक्त कर रखा था। वे लोग सर्वदा मेरे पास-पास रहते थे; मैं इच्छानुसार जहाँ-तहाँ घूम सकती थी। वह स्थान ऐसा है कि किसी प्रकार की दुश्चिन्ता या अशान्ति मन में आती नहीं। बड़ा ही आनन्ददायक स्थान है। वे लोग ही फिर मुझे यहाँ लाकर रख गए।”

प्रश्न— आपने क्या आना चाहा था?

माता ठाकुरानी— वहाँ से क्या आने की इच्छा होती है? फिर भी समय-समय पर कुतु की बात मन में आती थी।

## मेरे कौमार्य की आकांक्षा का प्रकाश

17 जुलाई, गुरुवार। मेरी पित्तशूल की वेदना सम्पूर्ण रूप से ठीक हो गई है। इस रोग के ठीक होने से मुझे थोड़ी चिन्ता होने लगी— शरीर स्वस्थ हो गया है, अब सम्भवतः ठाकुर अधिक दिन मुझे अपने साथ नहीं रखेंगे। गाँव जाने से ही भैया लोग मुझे पढ़ाई-लिखाई करने कहेंगे; वह तो मेरे लिए यम-यातना से और भी कष्टदायक है। पढ़ाई-लिखाई न करने से भी नौकरी तो मुझे करनी ही होगी। उस समय फिर मुझे विवाह करने के लिए सब लोग निश्चय ही विविश करेंगे। इन सब उत्पातों से किस उपाय से रक्षा होगी?

हरिवंश पाठ के बाद आज ठाकुर से कहा— कुछ दिनों से मुझे बड़ी दुश्चिन्ता हो रही है, आपसे सब कहने की इच्छा होती है।

ठाकुर ने कहा— **“दुश्चिन्ता किसलिए? खुलकर कहो।”**

उत्साह पाकर मैं मन खोलकर इस प्रकार कहने लगा— मेरा शरीर स्वस्थ हो गया है, अब मैं क्या करूँ? गाँव जाने से तो भैया लोग स्कूल में भर्ती कर देंगे; परन्तु पढ़ाई-लिखाई बहुत समय से छोड़ दी है, पुनः नये सिरे से पढ़ाई-लिखाई करके परीक्षा पास करने की चेष्टा करना, वह मुझे बड़ा ही कष्टदायक लगता है। उस ओर मेरी रुचि बिल्कुल नहीं है। उसके बाद वे लोग यदि नौकरी जुटा दें, उससे भी मुझे अत्यन्त कष्ट होगा। लिखाई-पढ़ाई कुछ की नहीं; नौकरी करनी होगी तो खूब सामान्य आय की नौकरी ही करनी होगी। नौकरी होने से तो फिर सब मुझे विवाह करने के लिए बाध्य करेंगे। विवाह करने से अपने परिवार का अल्प आय में भरण-पोषण मेरे लिए कठिन होगा; क्रमशः परिवार वृद्धि होने से उस समय क्या करूँगा, समझ नहीं आता। उसके बाद नौकरी करने से सब लोग कुछ-न-कुछ मेरे से आशा करेंगे। मेरी अवस्था के विषय में कोई सोचेगा नहीं; फिर आकांक्षा के अनुसार कुछ न मिलने पर सभी विरक्त होंगे। जो लोग मुझे अभी इतना चाहते हैं— यह नौकरी करने के कारण ही उनके मन में मेरे प्रति असद्भाव की सृष्टि होगी। बहुत समय से मैं निरोग अवस्था में रहा नहीं। यद्यपि अभी मेरा शरीर स्वस्थ है, सामान्य अनियम से फिर पीड़ित हो सकता है। मेरे भीतर की अवस्था जिस प्रकार शोचनीय है, फिर उस स्थिति में विवाह करने पर मैं किसी प्रकार से आत्मरक्षा नहीं कर पाऊँगा। संयम की ओर शिथिल होने से ही मैं कहाँ जाकर गिरूँगा, कह नहीं सकता। तब कदाचार व्यभिचार करने में वह पैसा ही मेरा परम सहायक होगा। हाथ में पैसा पाकर स्वाधीन रहने के कारण मैं किस भयंकर नरक में जा गिरूँगा, नहीं जानता। इस कारण नौकरी और विवाह मेरे लिए नरक का द्वार लगता है। इस विपत्ति से आप मेरी रक्षा कीजिए। उसके सिवा कोई उपाय नहीं है।

ठाकुर ने कहा— “तुम्हारे शरीर की अवस्था जैसी है, उसमें विवाह करना तो किसी प्रकार से ठीक नहीं है। शरीर अच्छा स्वस्थ होने से तो नौकरी करके भैया लोगों की सेवा कर सकते हो।” विवाह नहीं करना होगा, ठाकुर की बात से यह जानकर मुझे सान्त्वना मिली। सोचा— ‘अब नौकरी भी नहीं करनी पड़ेगी, ठाकुर एक बार ऐसा कह दें, तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ।’ मैं फिर धीरे-धीरे कहने लगा— अविवाहित अवस्था में रहकर नौकरी करना मेरे लिए क्या सुरक्षित होगा? मुझे लगता है, साधारण लोगों की अपेक्षा मुझमें दुष्प्रवृत्ति की उत्तेजना बहुत अधिक है। केवल वैसा अवसर न मिलने के कारण अब तक मैं ठीक हूँ; साधन-भजन के नियम बन्धन में आबद्ध रहने से ही मैं रक्षा पा रहा हूँ। इससे थोड़ा ‘अलग’ होते ही मेरी क्या दशा होगी, कोई ठीक नहीं। नौकरी करने से ही तो रुपया-पैसा लेकर रहना होगा; मति-गति सभी बहिर्मुख हो जाएँगी, साधना की सब शक्त नियम प्रणाली उस समय फिर कुछ रहेगी नहीं; तब प्रलोभन आने पर उससे रक्षा पाने का सामर्थ्य मुझमें नहीं रहेगा। वरन् हाथ में रुपया-पैसा होने से स्वेच्छाचार में चलने का पथ स्वच्छ हो जाएगा। नियमानुसार आप मुझे बाँधकर न रखें, तो मेरी रक्षा का कोई उपाय नहीं है। नौकरी करने से अधिकांश समय ही आपके संग से वंचित रहूँगा। तब भीतर के समस्त कुभाव सिर उठाएँगे। मेरी रक्षा किस प्रकार होगी? इसलिए लगता है, केवल नौकरी से ही मेरा यह जीवन नरक-ग्रस्त हो जाएगा। मैं क्या करूँ, कुछ समझ में ही नहीं आ रहा है। मेरे भविष्य का मंगल-अमंगल किसमें है, आप ही जानते हैं। जिसमें मेरा यथार्थ मंगल होगा, आप मुझे बता दीजिए। मैं वही करूँगा। फिर भी मेरी इच्छा होती है, मैं चिरकाल अविवाहित रहूँ, साधन-भजन करूँ। ऐसा होने से नौकरी के लिए मुझसे कोई जिद भी नहीं करेगा; क्योंकि हमारे घर में वैसा कोई अभाव है नहीं। आप यदि कहें, तो फिर मैं आजीवन कुँआरा रहूँगा।

ठाकुर ने कहा— “केवल कहने से ही क्या तुम कुँआरा रह सकोगे? वैसा क्या होता है? तुम एक काम करो, ब्रह्मचर्य व्रत ले लो। कौमार्य ब्रह्मचर्य के ही अन्तर्गत है। फिर ब्रह्मचर्य में और भी बहुत-कुछ नियम हैं, उसका पालन करके चलना होता है। थोड़ा व्रत के बन्धन में रहे बिना केवल ऐसे ही ठीक नहीं रह पाओगे। कुँआरी अवस्था में रहना है तो ब्रह्मचर्य ग्रहण करो। थोड़ा व्रत के बन्धन में पड़ने से ही निरापद है। तीन दिन तुम इस विषय में अच्छे-से चिन्ता करो। व्रत लेने पर ठीक प्रकार से उसका प्रतिपालन करना पड़ता है, नहीं तो अपराध होता है; ये सब अच्छे-से सोच-विचार करके मुझे बताओ, फिर ब्रह्मचर्य दिया जाएगा।”

## ब्रह्मचर्य ग्रहण के सम्बन्ध में आलोचना: ठाकुर की अनुमति

19 जुलाई, शनिवार। ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करना है या नहीं, ठाकुर ने मुझसे इस विषय में तीन दिन सोच-विचार करके बतलाने के लिए कहा है। यद्यपि वे मुझे यह व्रत देने के लिए इच्छुक हैं, यह उनकी बात से ही स्पष्ट समझ में आ गया; तथापि उनके आदेशानुसार इसके पक्ष और विपक्ष में बहुत सोच-विचार किया; लेकिन कुछ भी निश्चित नहीं कर पाया। एकान्त में योगजीवन और श्रीधर को अलग-अलग ले जाकर उनसे इस विषय में पूछा। श्रीधर तो सुनकर आनन्द से उछल पड़े; कहने लगे— 'भाई, तुम्हारी दीक्षा के दिन इसी उद्देश्य से मैंने अन्तःकरण से प्रार्थना की थी। आज भी मुझे उसका स्मरण है। तुम वीर्यधारण करो, अविवाहित अवस्था में रहकर साधन-भजन में ही जीवन बिताओ, यही आकांक्षा है। व्रत का पालन नहीं कर पाने से वे क्या तुम्हारी इच्छा से ही यह व्रत देंगे? गोसाँईजी यदि तुम्हें यह दुर्लभ व्रत दें, तो बिना संशय के इसी क्षण ग्रहण करो।' योगजीवन ने कहा— 'तुम तो बड़े सौभाग्यवान् लगते हो! किसी की इच्छा रहने से ही क्या यह व्रत मिल सकता है? गोसाँईजी तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हैं, वे तुम पर विशेष रूप से कृपा करेंगे। संसार की नाना प्रकार की ज्वाला-यन्त्रणा से सहज में रक्षा हो जाएगी। व्रत की रक्षा कर पाओगे या नहीं, वैसा क्यों सोचते हो? महापुरुष कभी अपात्र को यह व्रत देते नहीं— पात्र को पहचानकर कृपा करते हैं। वे यदि दया करके तुमको ब्रह्मचर्य देते हैं, तो अभी जाकर ग्रहण करो।'

माता ठाकुरानी को इस विषय में बतलाने पर वे अचानक चौंक उठीं; उन्होंने मुझे डाँटते हुए कहा— 'ये क्या? ब्रह्मचर्य कैसे लोगे? ऐसी बुद्धि क्यों हुई? शरीर जितने दिन अस्वस्थ रहेगा, विवाह मत करना। ऐसे ही ब्रह्मचर्य पालन करके रहना। शरीर स्वस्थ होने से रीति के अनुसार सब करना। फिर विवाह करने से क्या धर्म होता नहीं? स्वेच्छा से वह सब कठोरता करने की क्या आवश्यकता है? व्रत लेना इतना सहज नहीं है, बहुत कठिन है। फिर यदि व्रत भंग कर डालोगे, तो अपराध होगा नहीं? अनर्थक यह मति क्यों हुई?'

माता ठाकुरानी की बात से मैं बड़े संशय में पड़ गया; मन भी मानो बिल्कुल निस्तेज हो गया। मैं बड़ी समस्या में पड़कर सोचने लगा— 'ब्रह्मचर्य-व्रत लेकर यदि उसका यथारीति प्रतिपालन न कर सका, तो व्रत-भंग करने का दोष लगेगा। उसकी अपेक्षा यह कठोर व्रत न लेना ही अच्छा है; किन्तु यह व्रत ग्रहण न करने से विवाह और नौकरी के अनर्थ से छुटकारा पाने का भी तो कोई उपाय नहीं है। इस उभय संकट की स्थिति में मैं क्या करूँ, विचार करने लगा। फिर सोचा, व्रत ग्रहण करने से मैं ठाकुर के विशेष शासन के अधीन रहूँगा, व्रत भंग करने से मेरे

दयालु ठाकुर ही मुझे दण्ड देंगे। दण्ड भोगने से भी वह मेरे ठाकुर का कार्य है, सोचकर बहुत शान्ति मिलेगी; विविध दुर्दशा में पड़कर तीव्र भोग की उत्पत्ति होने से भी उसे उनका ही विधान समझूँगा। यदि नरक में भी डुबा, तो ठाकुर के साथ कम-से-कम भाव का एक योग रहेगा; किन्तु विवाह करने से जो अशान्तिपूर्ण धिनौने संसार की सृष्टि होगी एवं नौकरी करने पर पैसे की गर्मी से जो दुर्नीतिपूर्ण नरक कुण्ड में डुबूँगा, उसे सर्वदा अपनी ही करतूत समझूँगा, उसके साथ ठाकुर का किसी प्रकार का सम्बन्ध है— इसे भाव अथवा कल्पना में भी ला नहीं सकूँगा। अतएव अपने ऐहिक और पारलौकिक स्वार्थ एवं सुविधा की ओर देखकर कार्य करने से लगता है, ब्रह्मचर्य ग्रहण करना मेरे लिए लाभदायक है; किन्तु फिर जब सोचता हूँ, अपने इस तुच्छ जीवन के आराम के लिए परम आराध्य ऋषियों का विशुद्ध आश्रम कलुषित होगा; विशेषकर आजन्म सत्यसंकल्प पुण्यमूर्ति गुरुदेव के परम पावन नाम को मैं कलंकित करूँगा, तब व्रत ग्रहण करने की प्रवृत्ति नहीं होती। अपने भाग्य का भोग मैं भोगूँ। शुद्ध स्फटिक जैसे श्रीश्री गुरुदेव के अमल शुभ्र रूप में बिन्दुमात्र कालिमा मैं किसी प्रकार से लगा नहीं सकता। अतएव अपने इस हीन एवं असार सामर्थ्य पर निर्भर करके मैं कभी ब्रह्मचर्य ग्रहण नहीं करूँगा।

आज मध्याह्न में भोजन के बाद हरिवंश पाठ करने हेतु ठाकुर के पास जाकर बैठा। ठाकुर ने मुझसे पूछा, **‘क्यों? तुमने क्या ठीक किया? ब्रह्मचर्य लोगे?’** मैंने कहा, इस सम्बन्ध में मैं कुछ निश्चय नहीं कर पाऊँगा। आप जैसा कहेंगे, वैसा ही करूँगा। दुर्लभ व्रत अनायास ग्रहण करके प्रकृति के दोष से अन्त में उसका पूरा-पूरा पालन न कर पाने से ऋषियों का पवित्र आश्रम मेरे द्वारा कलुषित होगा। मेरे भीतर की सारी अवस्था तो आप जानते हैं; मुझमें कामभाव अत्यन्त अधिक है। वैसा प्रलोभन आने पर अपनी शक्ति से आत्मरक्षा कर पाने का विश्वास नहीं है। इस प्रकार की अवस्था में पवित्र ब्रह्मचर्य माँगने का साहस कैसे करूँ? व्रत ग्रहण करने की मेरी बहुत इच्छा है; पर उसका पालन करने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है। मुझे दुर्बल समझकर यदि आप दया करके अपनी शक्ति से मेरे ब्रह्मचर्य व्रत की सम्पूर्ण रूप से रक्षा करें, तो फिर मैं उसे ग्रहण कर सकता हूँ; अन्यथा मुझे आवश्यकता नहीं है। यह कहकर मैं रो पड़ा। तब ठाकुर कुछ क्षण मेरी ओर स्नेहपूर्वक एकटक देखते रहे; फिर प्रसन्न होकर मुस्कुराते हुए उन्होंने कहा— **“अच्छा, वही होगा। कोई अच्छी तिथि देखकर यह व्रत ग्रहण करना। ब्रह्मचर्य ग्रहण न करने तक किसी से कुछ न कहना। अब पढ़ो।”**

मैं तब निश्चिन्त होकर हरिवंश पाठ करने लगा। आज मेरे मन में आनन्द की सीमा नहीं रही। सोचा— ‘आज ठाकुर ने मेरा सारा भार अपने ऊपर लेकर मुझे पूर्णतः सुरक्षित कर दिया; आज मेरा उद्धार हो गया।’ यह व्रत लेने की बात मैं और

किसी से नहीं कहूँगा, निश्चय किया; लेकिन माता ठाकुरानी पूछीं, तो क्या कहूँगा; चिन्ता हो गई। वे मेरे इस व्रत लेने के विरोध में हैं। कुतु का विवाह मुझसे कराने की आकांक्षा उनकी बहुत समय से है। किसी-किसी के सामने यह इच्छा व्यक्त भी की है। संकेत द्वारा मुझे भी उस बात से अवगत नहीं कराया, ऐसा नहीं है। क्या पता? लगता है, इसी कारण माताजी मेरे ब्रह्मचर्य ग्रहण के पक्ष में नहीं हैं। जिस दिन इच्छा होगी, ठाकुर मुझे ब्रह्मचर्य देंगे; मैं दिन-मुहूर्त कुछ नहीं जानता। जय गुरुदेव! तुम्हारी इच्छा ही पूर्ण हो।

## ठाकुर के साथ महापुरुष का दर्शन

20 जुलाई, रविवार। संध्या के समय ठाकुर के साथ हम लोग दर्शन के लिए बाहर निकले। ठाकुर अन्यान्य दिनों की अपेक्षा आज तेज गति से चलने लगे। माता ठाकुरानी, कुतु, श्रीधर आदि बहुत पीछे रह गए। मैं ठाकुर का कमण्डलु हाथ में लेकर साथ-साथ दौड़ा। ठाकुर सीधे कालीदह की ओर चलने लगे। सुना है, आज कालीदह में बहुत बड़ा मेला है, हजारों की संख्या में लोग वहाँ उपस्थित हैं। रास्ते में भी लोगों की भीड़ कम नहीं है। मेला-स्थल के निकट से होकर चलते-चलते ठाकुर एकाएक रुक गए एवं एक व्यक्ति की ओर एकटक देखने लगे। यह देखकर मैं विशेष रूप से उस व्यक्ति की ओर लक्ष्य रखने लगा। उनकी वेशभूषा कुछ नहीं, कौपीन के ऊपर केवल एक पुराना मलिन बहिर्वास लपेटे हैं; श्याम वर्ण के हैं, आकृति दीर्घ एवं बहुत ही दुर्बल है; शरीर में धूल अथवा ब्रज की रज लगी है (इससे मानो और भी कुरूप दिख रहा है)। शरीर में माला या तिलक का नामो-निशान नहीं है, माथे पर लम्बे-लम्बे लाल-भूरे रंग की जटा है, देखने में ठीक जैसे रास्ते के मजदूर के समान है; लेकिन आँखों की असाधारण ज्योति देखकर मैं चकित हो गया। ऐसा लगा जैसे उनके पलक झपकने के साथ-साथ उज्ज्वल नक्षत्र चमक रहे हैं।

ठाकुर को देखते ही वे लगभग सौ गज दूर रहकर विशृंखल भाव से नृत्य करते हुए अग्रसर होने लगे एवं समान गति से ठाकुर के पास से होकर चले गए। एक बार भी 'हरे कृष्ण' नहीं कहे। ठाकुर फिर पीछे देखे बिना ही कालीदह की ओर चलने लगे। आश्चर्य यह है कि मैंने तुरन्त पीछे की ओर देखा, वह व्यक्ति दिखाई नहीं दिया।

मेला देखकर हम लोग संध्या के बाद कुंज में आ गए। रात्रि में ठाकुर के पास बैठा हूँ, ठाकुर ने कहा— **“मेले में आज एक महापुरुष का दर्शन हुआ। ऐसे महात्मा लोकालय में प्रायः आते नहीं, पहाड़ों पर ही रहते हैं।”**

मैंने कहा— मैं तो आपके साथ-साथ ही था; महापुरुष को आपने कहाँ देखा? मुझे क्यों नहीं दिखलाया?

ठाकुर— अविश्वास से भरा संसार है! इतने बड़े महात्मा पर कैसे विश्वास कर पाएँगे? हिमालय के ऊपर ही रहते हैं, ऐसे महापुरुष लोग अधिकतर नीचे नहीं आते। जब आते हैं, तब इसी प्रकार छद्मवेश में तीर्थ आदि घूमकर चले जाते हैं। पहले भी एक बार इन्हीं महात्मा के साथ मेरी भेंट हुई थी। इस बार केवल क्षणभर प्रकाश फैलाकर देखते-देखते अन्तर्धान हो गए। बड़ा आश्चर्य है! वास्तव में महापुरुष हैं!

मैंने कहा— इतने लोगों के बीच आप एक व्यक्ति की ओर कुछ समय तक देखते रहे, मैंने देखा था। उनका कोई वेश नहीं था, ठीक साधारण मजदूर की भाँति; वे ही क्या वह महापुरुष थे?

ठाकुर— होंगे, वही होंगे। उनके दोनों पैर भूमि से एक फुट ऊपर थे, रज पर वे चरण नहीं रखते। पैर की ओर तो कोई देखता ही नहीं! पैर की ओर देखने से कई बार पकड़ में आ जाते हैं।

मैं— वे तो रुके नहीं, आपके साथ उन्होंने कोई बात भी नहीं की?

ठाकुर— जो कुछ कहने का था, सभी कहा। वे लोग क्या हम लोगों के समान केवल मुख से ही बातें करते हैं? संकेत से, दृष्टि से, कई प्रकार से वे लोग सारी बातें कहा करते हैं।

मैं— संकेत द्वारा एवं दृष्टि से भी क्या बातचीत कर सकते हैं?

ठाकुर— तो क्या नहीं कर सकते? खूब कर सकते हैं! ऐसे कई जीव हैं, जो मुख से कहते नहीं; संकेत व दृष्टि द्वारा ही सब व्यक्त करते हैं।

## ब्रह्मचर्य ग्रहण का दिन निर्धारित

21 जुलाई, सोमवार। आज मध्याह्न में ठाकुर ने सदाचार के सम्बन्ध में अनेक उपदेश दिया। ब्राह्मणों का आचार, नित्य-कर्म, संध्या-तर्पणादि कितना उपकारी है, वह समझाकर कहा।

बातों-बातों में मैंने पूछा, वैदिक धर्म का अनुष्ठान करने से आजकल क्या कोई ऋषियों के समान हो सकता है? अभी भी क्या वशिष्ठ, याज्ञवल्क्यादि के जैसा ब्राह्मण होना सम्भव है?

ठाकुर ने कहा— “वैदिक धर्म का अनुष्ठान करना आजकल बहुत कठिन है, सहज नहीं है। यदि कोई उस प्रकार अनुष्ठान कर सकते हैं,

तो सम्भव क्यों नहीं होगा? समय अधिक लगता है।”

मैं— वैदिक धर्म का अनुष्ठान करके प्राचीन ऋषियों के जैसा ब्राह्मण होने की इच्छा होती है। आप दया करके मुझे वैसा ब्राह्मण बना दें।

ठाकुर— वही ठीक है। उसके लिए अब वैदिक ब्रह्मचर्य लेना होता है। ब्रह्मचर्य लेकर ठीक उसी नियम के अनुसार चलो, तब ठीक होगा। अच्छा दिन देखकर बताओ, ब्रह्मचर्य दे दूँगा।

मैं— दिन देखना मैं जानता नहीं।

ठाकुर— पंचांग लेकर आओ न।

मैंने एक पंचांग लाकर ठाकुर के हाथ में दे दिया।

ठाकुर ने देखकर कहा— “27 जुलाई, श्रावण शुक्ल दशमी का दिन अच्छा है। उसी दिन एकान्त में आकर ब्रह्मचर्य ग्रहण करना। मैं ही उस दिन तुमको समय पर बुला लूँगा। अभी किसी से कुछ कहना मत।” हरिवंश पाठ के बाद ठाकुर ने कहा— “पाठ का एक नियम रहना अच्छा है। समय निश्चित करके नियमानुसार अच्छी-अच्छी पुस्तकों का पाठ करना।”

मैं— मेरे लिए कौन-कौन-सी पुस्तकों का पाठ करना उपयुक्त है, वह तो मैं जानता नहीं। आप ही मुझे बतला दीजिए।

ठाकुर— गीता का नियमानुसार प्रतिदिन पाठ करना; महाभारत का शान्तिपर्व और श्रीमद्भागवत पढ़ना।

### केलिकदम्ब वृक्ष में राधाकृष्ण नाम

संध्या के समय हम सभी ठाकुर के साथ घूमने के लिए बाहर निकले। श्रीमदनमोहनजी का दर्शन करके कालीदह की ओर गए। प्रबोधानन्द सरस्वती की समाधिवेदी का दर्शन करके यमुना के किनारे जा पहुँचे। वहाँ कालीय सरोवर के समीप एक प्राचीन वृक्ष के नीचे हम लोग बैठ गए। ठाकुर ने कहा— “यह वही केलिकदम्ब का पेड़ है, बहुत प्राचीन है। कहा जाता है कि इसी वृक्ष के ऊपर खड़े होकर श्रीकृष्ण कालीयदमन के समय यमुना में कूद पड़े थे। इस वृक्ष पर अपने-आप ‘राधाकृष्ण’, ‘राम राम’, ‘राधेश्याम’— ये सब नाम लिखे हुए हैं। तुम लोगों की इच्छा हो तो देख लो।”

ठाकुर की यह बात सुनकर हम लोग वृक्ष के नीचे जाकर खोज करने लगे। पेड़ के तने में और ऊपर शाखा-प्रशाखा में वह सब नाम स्पष्ट रूप से छाल के शिराओं द्वारा संस्कृत और बंगला अक्षरों में लिखा हुआ है। दो-एक स्थानों पर



दो-चार नाम नहीं, समूचे वृक्ष पर ऐसे असंख्य नाम देखकर आश्चर्य होने लगा। मेरा चित्त बहुत ही सन्देहपूर्ण है, सहज में कुछ भी विश्वास नहीं करता। मैंने ठाकुर से पूछा— दुष्ट पण्डे लोग पैसा कमाने के लोभ में ये सब नाम छुरी से काट-काटकर तो नहीं लिख दिए? ठाकुर ने मेरी बात सुनकर कहा— **“तुम जो कहते हो, वह भी ठीक है। पण्डों ने दो-चार स्थानों में छुरी से काटकर वह सब नाम लिखा है; परन्तु वह देखते ही समझ में आ जाता है। स्वाभाविक नाम था तभी तो पण्डों ने वह लिखा है!”** यह कहकर ठाकुर उठकर खड़े हो गए एवं वृक्ष के निकट जाकर उन्होंने चार-पाँच नाम दिखलाते हुए कहा— **“यह देखो, ये सब पण्डे लोगों की करतूत है। पैसा कमाने के लोभ से पण्डों ने इन सब स्वाभाविक वस्तु की नकल करके मूल वस्तु के ऊपर लोगों का सन्देह उत्पन्न कर दिया है। यह सब बड़ा अपराध है। कितने देवी-देवता, ऋषि-मुनि, वैष्णव महापुरुष श्रीवृन्दावन की रज पाने के लिए वृक्ष-लता के रूप में विद्यमान हैं; उन्हें इस प्रकार क्षत-विक्षत करना बड़ा अपराध है। थोड़ा ध्यान से देखो, स्वाभाविक और नकल समझ पाओगे।”**

मैं— यह सब देखकर स्वाभाविक है या नहीं, कैसे समझेंगे? छुरी से अंकित अक्षर भी तो अधिक दिन तक हरे पेड़ में रहने से स्वाभाविक की भाँति ही दिखेगा।

ठाकुर ने थोड़ा हँसकर कहा— **“वह ठीक है। अच्छा, एक काम करो, पेड़ की जो सब मोटी-मोटी छाल सूखकर एक ओर से थोड़ा अलग हो गई है, उसके भीतर देखो। वहाँ तो लिखना सम्भव नहीं है।”**

मैंने तभी उस पुराने वृक्ष की तीन-चार इंच थोड़ी निकली हुई दो छाल को खींचकर निकाला। तब ठाकुर— **‘ओह! ओह! क्या किया?’** कहकर सिहर उठे। मैं फिर छाल न निकालकर बड़े ध्यान से उसके भीतर की ओर देखने लगा। ‘राधाकृष्ण’, ‘राम राम’ नाम स्पष्ट रूप से वृक्ष की शिरा-शिरा में लिखा देखकर चकित हो गया। पेड़ के ऊपर शाखा-प्रशाखा में, डाल-डाल में, नीचे की ओर भी वह सब नाम स्पष्ट दिखलाई पड़ा। वैसे स्थानों पर किसी प्रकार से कोई नाम लिख नहीं सकता, यह समझ में आ गया। देवी-देवता या महापुरुष वृक्ष रूप में हैं, अथवा वृक्ष का आश्रय लेकर अवस्थान कर रहे हैं, इन सब बातों पर विश्वास करने का मुझमें सामर्थ्य नहीं है; लेकिन यह वृक्ष जो असाधारण है, उस विषय में अब कोई सन्देह नहीं रहा। ठाकुर के साथ सब लोगों ने वृक्ष की परिक्रमा करके साष्टांग प्रणाम किया। मैंने भी प्रणाम किया।

## मनोरम वन की शोभा: हिंसारहित वृन्दावन

कालीदह दर्शन करके हम लोगों ने यमुना के किनारे-किनारे जाकर श्रीवृन्दावन के घने वन में प्रवेश किया। वन की स्वाभाविक शोभा देखकर बड़ा आनन्द आया। छोटे-बड़े सभी पेड़ों को अन्य स्थानों के पेड़-पौधों से अलग प्रकार का देखा। ऊँचे-ऊँचे प्राचीन एवं विशाल सभी वृक्ष सर्वत्र ही सिर झुकाए हुए हैं। उनकी शाखा-प्रशाखा चारों ओर फैलकर क्रमशः भूमि से लग गई हैं। देखकर लगता है, मानो श्रीधाम की रज को स्पर्श करने के मनोभाव से सब वृक्ष शाखारूपी बाहु फैलाकर उसे पाने के लिए प्रयास कर रहे हैं। प्राचीन वृक्षों की सब शाखाएँ-प्रशाखाएँ जो भूमि से लगी हुई हैं, वे भी मानो रज के स्पर्श से कामना पूर्ण हो जाने पर स्थिर समाधि लगा रखे हैं। वृक्षों की इस प्रकार अद्भुत शोभा इस जीवन में मैंने और कहीं देखी नहीं। श्रीवृन्दावन के छोटे-बड़े सभी वृक्ष-लताओं की शाखाएँ-प्रशाखाएँ यहाँ तक कि पत्ते आदि भी नीचे झुके हुए हैं। वृक्षों की ऐसी अपूर्व सृष्टि और सौन्दर्य इस स्थान पर ही देखा। जगह-जगह इन झाड़ियों के भीतर में अच्छी-अच्छी परित्यक्त भजन-कुटिया रिक्त अवस्था में पड़ी हुई दिखी। ठाकुर ने कहा— **“एक समय इन सब भजन-कुटियों में कितने ही वैष्णव महात्माओं ने साधन-भजन किया है। ओह! ये सब स्थान अब चोर-डकैतों का अड्डा हो गया है।”**

ऐसी अच्छी-अच्छी भजन-कुटिया सूनी पड़ी हैं, देखकर बड़ा दुःख हुआ। ठाकुर से पूछा— ‘इन कुटियों में आजकल कोई साधन-भजन नहीं कर सकता? वैष्णव साधु लोग यहाँ क्यों नहीं रहते?’

ठाकुर ने कहा— **“रहेंगे कैसे? इन स्थानों पर रहने के लिए कंगाल होकर रहना पड़ता। मिट्टी का एक करवा और फटी कथरी लेकर ही सुरक्षित रहा जा सकता है, अन्यथा थोड़ा-कुछ भी रहने से चोर-डकैतों के अत्याचार से बचाव कठिन है।”**

हम लोग ठाकुर के पीछे-पीछे वन के भीतर से होकर चलने लगे। दोनों ओर बहुत-से मोर-मोरनी जगह-जगह घूम रहे हैं, खेल रहे हैं, आनन्द से पंख फैलाकर नाच रहे हैं, मैं देखने लगा। हम लोगों से सात-आठ फीट दूर रहकर भी उन्हें बिल्कुल डर नहीं है; भागने का प्रयास नहीं है, स्फूर्ति का भी विराम नहीं। देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वन के हिरण भी मनुष्य को मानो मनुष्य नहीं समझते; वे निर्भीक होकर स्वेच्छानुसार निःसंकोच मनुष्य के शरीर से स्पर्श करते हुए चलते-फिरते हैं। भगवान् के राज्य में यह अपूर्व दृश्य न देखने से कभी विश्वास नहीं करता। ठाकुर से पूछा— ‘वन के हिरण, मोर, ये लोग इतने निर्भीक क्यों हैं?’

ठाकुर ने कहा— “श्रीवृन्दावन में हिंसा नहीं है; इसलिए इस स्थान के जीव-जन्तु, पशु-पक्षी मनुष्य के पास भी इतने निर्भय हैं।”

हम लोग श्रीवृन्दावन के घने वन में पशु-पक्षी, वृक्ष-लता के ये सब भाव और असाधारण अवस्था देखकर संध्या के बाद कुंज में लौटे। श्रीवृन्दावन के इन स्थानों पर पहुँचने के बाद फिर लोकालय में लौटने की इच्छा नहीं होती। लगता है, जीवन-भर इन सब स्थानों में रहने से भी इसकी नित्य-नवीनता कम नहीं होती।

## ब्राह्मण का विशेषत्व सद्गुरु आश्रित लोगों की गति

22 जुलाई, मंगलवार। भोजन करके हरिवंश पाठ करने के बाद ठाकुर से पूछा— जाति से जो लोग ब्राह्मण हैं, उन लोगों का क्या कोई बड़ा सत्कर्म था?

ठाकुर— **अवश्य था। कुछ विशेषता थी ही।**

मैं— यदि पुनः संसार में आना पड़ता है, तो किस प्रकार चलने से वर्तमान अवस्था से और नीचे नहीं गिरेंगे? ब्राह्मण लोग किस प्रकार चलने से अगले जन्म में भी ब्राह्मण ही होते हैं?

ठाकुर— **ब्रह्मचर्य ग्रहण करके ठीक उसी प्रकार चलो। ब्रह्मचर्य का ठीक नियमानुसार पालन करके चल पाने से फिर कभी निम्न अवस्था में जाना नहीं पड़ेगा। संध्या, गायत्री, नित्यक्रिया आदि का अनुष्ठान करते रहने से ब्राह्मण अगले जन्म में भी ब्राह्मण होता है।**

मैं— हम लोगों की यह साधना जिन्होंने प्राप्त की है, उन लोगों को भी क्या पुनः जन्म लेना होगा?

यह प्रश्न सुनकर माता ठाकुरानी ने प्रसंगवश कहा— ‘श्यामाकान्त पण्डित जी ने एक दिन देखा था, साधन-प्राप्त सब लोगों को तीन श्रेणी में रखा गया है; पण्डित जी प्रथम श्रेणी में हैं; द्वितीय श्रेणी में अधिक लोग नहीं हैं; तृतीय श्रेणी में ही अधिक लोग हैं। जो प्रथम श्रेणी में हैं, उन्हें अब संसार में पुनः नहीं आना पड़ेगा, यह उनका अन्तिम जन्म है। द्वितीय श्रेणी के लोगों को और एक बार आना होगा; लेकिन जो लोग तृतीय श्रेणी में हैं, उनको और भी दो बार आना पड़ सकता है।’

मैं— अच्छा, जो लोग सद्गुरु प्राप्त करके देह त्यागकर पुनः जब जन्म लेंगे, तब वे लोग क्या फिर सद्गुरु की कृपा प्राप्त करेंगे?

ठाकुर— **उसमें कोई संशय नहीं, वे अवश्य ही सद्गुरु की कृपा प्राप्त करेंगे।**

मैं— सद्गुरु कृपा यदि प्राप्त होती है, तो पुनः संसार में आने में क्या आपत्ति है? कठिनाई भी क्या है?

ठाकुर— बाबा, संसार की माया में बड़ी आशंका है, संसार में बड़ी ज्वाला है।

मैं— सद्गुरु का आश्रय प्राप्त होने से एक जन्म में ही क्या मुक्त हुआ जा सकता है?

ठाकुर— बिना सन्देह के गुरु के आदेश का पालन करने से और गुरु के प्रति निष्ठा उत्पन्न होने से एक जन्म में ही मुक्त हो जाते हैं।

मैं— गुरु आदेश का पालन तो प्रयास करने से बहुत-कुछ हो सकता है; परन्तु निःसन्देह होना तो प्रयास के ऊपर निर्भर नहीं है। मन में अपने-आप जो संशय आता है, उसे किस प्रकार रोकूँगा?

ठाकुर— गुरु जो करने के लिए कहते हैं, वही करने से हो गया। सन्देह होता है, होने दो; काम ठीक प्रकार कर लेने से ही सब होगा।

मैं— जो लोग इस बार साधन पाए हैं, यत्नपूर्वक साधना करने से वे लोग क्या फिर संसार में नहीं आएँगे? इस एक जन्म में ही उनका सब हो जाएगा?

ठाकुर— तीन जन्म के पहले मुक्ति प्राप्त करना अधिकतर देखा नहीं जाता। तीन जन्म प्रायः लगते हैं।

मैं— तब तो हम सभी को तीन जन्म लेना होगा?

ठाकुर— लेना होगा और नहीं भी होगा।

मैं— जो लोग इस बार सद्गुरु कृपा प्राप्त किए हैं, पहले भी क्या उन्हें सद्गुरु का आश्रय मिला था?

ठाकुर— किसी-किसी को पहले भी सद्गुरु का आश्रय मिला था; फिर अनेक लोगों को इस बार ही मिला है।

मैं— मुझे क्या पहले भी सद्गुरु का आश्रय मिला था?

ठाकुर ने मस्तक हिलाते हुए संकेत द्वारा मेरे इस प्रश्न का उत्तर दिया। मैंने फिर पूछा, सद्गुरु आश्रय लेने पर जिन लोगों की तीन जन्म में मुक्ति होगी, उन लोगों की मुक्ति न होने तक क्या सद्गुरु को भी संसार में आना होगा? जन्म लेकर सद्गुरु क्या शिष्य के साथ रहते हैं?

ठाकुर— सद्गुरु साथ ही रहते हैं। जन्म न लेकर भी कितने प्रकार से, कितने उपायों से शिष्य पर कृपा करते हैं। वृक्ष-लता, मनुष्यादि के भीतर से, नाना विषयों के भीतर से सद्गुरु कृपा करते हैं। फिर वे लोग

क्या सब समय आते हैं? चार कल्प के बाद नानक इस बार आए थे।

मैं— तब तो बड़ी कठिनाई है! प्रत्यक्ष रूप से गुरु न मिले, वह तो बड़ा कष्टदायक है।

ठाकुर— कष्ट तो है ही। तो भी जो गुरुवाक्य के अनुसार चलते हैं, उनको तो फिर कोई कष्ट नहीं है! अपने भाव के अनुसार मनमाना करने से ही भटकना पड़ता है। जब तक गुरुवाक्य के अनुसार नहीं चलते, उन पर निष्ठा उत्पन्न नहीं होती, तब तक बारम्बार जन्म लेना होगा। सद्गुरु के साथ कोई मायिक सम्बन्ध तो है नहीं, शिष्य के कल्याण के लिए ही वे संसार में आते हैं; शिष्य का उपकार करना ही उनके आने का उद्देश्य है। अतएव उनके आदेश के अनुसार न चलने से कैसे होगा? ठीक गुरुवाक्य के अनुसार चलना पड़ता है, ऐसा होने से फिर कोई उत्पात नहीं रहता।

मैं— गुरु कई बार शिष्य की विभिन्न प्रकार से परीक्षा भी लिया करते हैं? ऐसा होने से उनका यथार्थ आदेश कैसे समझा जाएगा?

ठाकुर— जो सद्गुरु हैं, वे कभी भी शिष्य की परीक्षा नहीं लेते। वैसा क्यों करेंगे? जिससे शिष्य का यथार्थ कल्याण होता है, सद्गुरु वही कह देते हैं। फिर भी जो लोग उस वाक्य को अग्राह्य करके अपने मन के अनुसार चलते हैं, गुरु उनको ही विभिन्न परिस्थितियों में गिराकर ठीक कर लेते हैं।

## पितृ-ऋणादि के सम्बन्ध में उपदेश

विक्रमपुर निवासी श्री सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय एक शिक्षक थे। गृहस्थी की जो कुछ आवश्यकताएँ हैं, उनकी नौकरी द्वारा ही पूर्ण होती थी। कुछ दिन पहले पिता की मृत्यु का संवाद पाकर सतीश तुरन्त वैरागी के समान घर से निकल पड़े; घर पर विधवा माता के कष्ट की ओर एक बार ताके भी नहीं। पैदल यात्रा करके वे श्रीवृन्दावन पहुँचकर अब ठाकुर के साथ रहते हैं। घर जाकर पिता का श्राद्ध एवं शोक से व्याकुल रोगग्रस्त माता की सेवा करने के लिए ठाकुर ने सतीश से कई बार कहा; लेकिन सतीश कहते हैं, ठाकुर के इस आदेश का पालन किसी प्रकार भी नहीं कर पाएँगे और वैराग्य का ही आश्रय लेकर शेष जीवन बिताएँगे। ठाकुर जब सतीश से घर जाकर पिता का श्राद्ध करने और संसार-धर्म का पालन करने के लिए कहते हैं, तो तुरन्त उनका माथा गरम हो जाता है; उस समय वे ठाकुर के साथ तर्क-वितर्क करके झंझट करने लगते हैं। ठाकुर आज पुनः सतीश

को लक्ष्य करके बड़े तेज स्वर में कहने लगे— 'सतीश का जिससे वास्तविक कल्याण होगा, बारम्बार वह कहा; अब नहीं सुनता तो क्या किया जाए? पितृ-ऋण शोध किए बिना उसका कुछ नहीं होगा; घर जाकर मातृ-सेवा न करने से यह जीवन व्यर्थ चला जाएगा। केवल यह जन्म ही क्यों, इस अपराध के कारण कितने जन्म व्यर्थ चले जाएँगे, कोई ठीक नहीं। शुकदेवादि के समान तीव्र वैराग्य होने से किसी प्रकार रुका नहीं जाता, सच है; लेकिन वैसा हुए बिना तो होगा नहीं! यथार्थ वैराग्य उत्पन्न न होने तक प्रणाली के अनुसार चलना पड़ता है। जिसका जो कर्तव्य है, उसकी अवहेलना करके पलायन कर पाना सम्भव नहीं है। हरिमोहन को गृहस्थी करने के लिए कई बार कहा, अभी ये लोग समझ नहीं रहे हैं; लेकिन मैं निश्चित रूप से कहता हूँ, अभी ठीक प्रकार से नहीं चलते हैं, तो इसके बाद सूद सहित कौड़ी-कौड़ी चुकानी होगी। बात नहीं सुनते तो फिर क्या किया जाए? बाद में अच्छे-से समझेंगे।'

ठाकुर कुछ समय तक उन लोगों से इस प्रकार कहकर चुप हो गए। तब मैंने धीरे-धीरे पूछा— देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण से कैसे मुक्त होते हैं?

ठाकुर ने कहा— "पुत्रोत्पत्ति द्वारा पितृ-ऋण से; याग-यज्ञ, पूजा, तीर्थ-दर्शन द्वारा देव-ऋण से और ऋषि प्रणीत शास्त्र-ग्रन्थ के अध्ययन आदि के द्वारा ऋषि-ऋण से मुक्त हुआ जाता है; अन्य उपाय नहीं है।"

मैं— श्राद्ध-तर्पणादि करने से क्या पितृ-ऋण से मुक्त नहीं हो सकते? सभी को क्या इसके लिए पुत्रोत्पत्ति करनी होगी?

ठाकुर— केवल तर्पणादि करने से पितृ-ऋण से मुक्त नहीं हुआ जा सकता। ऋण से मुक्त होने का यही एक उपाय है। फिर जो असमर्थ हैं, उनके लिए अलग प्रकार की व्यवस्था है।

मैं— किस प्रकार का असमर्थ?

ठाकुर— जैसे कि कोई बहुत अस्वस्थ है; शारीरिक अस्वस्थता के कारण पुत्रोत्पत्ति में असमर्थ है अथवा अन्य किसी विशेष असुविधा या असमर्थता के कारण वह कार्य सम्पन्न नहीं हुआ, ऐसा भी हुआ करता है। बहुतों को विवाह करने के बाद भी पुत्र की प्राप्ति नहीं होती। इन सब कारणों से निःसन्तान होने पर ऋणी नहीं होना पड़ता।

भोजन के बाद इस प्रकार प्रश्नोत्तर में हम लोगों का बहुत समय बीत गया। संध्या के समय ठाकुर के साथ हम लोग चीर (वस्त्र-हरण) घाट गए। यमुना की ओर देखते हुए ठाकुर बहुत समय तक घाट पर बैठे रहे। माता ठाकुरानी, कुतु,

भारत पण्डित जी\*, सतीश, मैं और श्रीधर भी स्थिर बैठकर नाम-जप करने लगे। बाद में सतीश के साथ बातों-बातों में मेरा झगड़ा हो गया। श्रीधर भी उसमें सम्मिलित हो गए। संध्या के बाद हम लोग कुंज में आ गए।

## बारदी के मार्ग में श्रीधर का काण्ड

25 जुलाई, शुक्रवार। संध्या के समय सब गुरुभाई दाऊजी के बरामदे में बैठकर बातचीत करने लगे। बारदी के ब्रह्मचारीजी के अद्भुत योगेश्वर्य और दया की बातें होने लगी। श्रीधर की एक बार विपिन बाबू के साथ बारदी जाते समय जो घटना हुई थी, गुरुभाइयों ने उसे सुनने का आग्रह किया। श्रीधर ने जो कहा उसे सुनकर आश्चर्यचकित हो गया। घटना को श्रीधर के कथनानुसार लिखकर रख लिया—

हमारे गुरुभाई श्री विपिनबिहारी राय क्षय (टी.बी.) रोग से पीड़ित होकर प्राण के विषय में भयभीत हो गए। ढाका आकर उन्होंने गुरुदेव की सम्मति से श्रीधर आदि कुछ गुरुभाई को साथ लेकर बारदी जाने लगे। श्रीधर उपदेश दिया— 'खाली हाथ साधु-दर्शन नहीं करते।' तदनुसार ब्रह्मचारीजी के लिए विविध साक-सब्जी, फल-फलादि साथ में ले लिए गए। विपिन बाबू ने ब्रह्मचारीजी को अपने हाथ से देने की आकांक्षा से बाजार का सबसे अच्छा चार फजली आम अधिक मूल्य में क्रय करके उसे अच्छे-से बाँधकर रख लिया। श्रीधर साथ में जाएँगे; उनकी मति-गति का भरोसा नहीं; रास्ते में अवसर पाकर कहीं कुछ आम समाप्त न कर दें, सोचकर विपिन बाबू ने श्रीधर आदि के लिए भी अलग से एक टोकरी आम क्रय करके ले लिया। नौका में सामान आदि रखते समय श्रीधर फजली आम को बड़े ध्यान से देखने लगे। यह देखकर विपिन बाबू ने श्रीधर से कहा— 'भाई, दुहाई है तुम्हारी! बड़ी आशा से ये चार आम महापुरुष के लिए ले जा रहा हूँ। उसमें हाथ मत देना। तुम लोगों के लिए एक टोकरी अच्छे आम अलग लिया हूँ। उसे ही खाना।' श्रीधर ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा— 'तुम क्या कहते हो, हैं? ऐसी बात तुम मुझसे कहते हो? ब्रह्मचारीजी के लिए आन्तरिक इच्छा से एक वस्तु ले जा रहे हो, उसे मैं खाऊँगा! इस प्रकार नीच कल्पना तुम्हारे मन में आई कैसे? तुम तो बड़े भयंकर लगते हो!' विपिन बाबू ने लज्जित होकर श्रीधर से क्षमा माँगी। कुछ दूर जाने के बाद नौका एक बाजार के पास पहुँची। सभी गुरुभाई वहाँ उतरे। श्रीधर को भी साथ में ले जाने के लिए विपिन बाबू ने दो-तीन बार प्रयास किया; भजन-मग्न श्रीधर ने मौन रहते हुए हाथ हिलाकर समझाया— 'तुम लोग जाओ। मैं नहीं जाऊँगा।' नौका से उतरकर विपिन बाबू ने श्रीधर से एक बार फिर कहा—

---

\* विक्रमपुर निवासी, गुरुनिष्ठ साधन-परायण गुरुभाई, ढाका नार्मल स्कूल के भूतपूर्व शिक्षक।

‘भाई, आम खाने की इच्छा हो तो टोकरी में अच्छे-अच्छे आम हैं, लेकर खा लेना।’ श्रीधर गम्भीर रहे। विपिन बाबू चलते-चलते भी बार-बार पीछे की ओर देखते हुए कुछ दूरी पर स्थित बाजार में प्रवेश किए। उनके अदृश्य होने पर श्रीधर व्यग्रतापूर्वक आसन से उठकर चारों ओर चंचल दृष्टि से देखने लगे। इसी समय पाँच-सात वर्ष के चार उलंग बालक एक भिखारिन के साथ नौका के समीप आए। श्रीधर ने आग्रह के साथ उनसे पूछा— ‘क्या चाहते हो?’ दुःखी बालकों ने कहा— ‘बाबा, कुछ खाने को दोगे?’ श्रीधर ने तुरन्त उठकर वही बड़े-बड़े चारों फजली आम निकाल लिया; फिर उसे उन बालकों के हाथ में देकर धमकाते हुए कहा— ‘जाओ, शीघ्र चले जाओ; नहीं तो आम फिर छीन लूँगा।’ श्रीधर की धमकी से डरकर बालकों ने दौड़ लगा दी। तब श्रीधर पुनः आसन पर स्थिर होकर बैठ गए एवं बड़े उत्साह के साथ भावमग्न होकर भजन गाने लगे। संयोगवश, गुरुभाइयों के साथ विपिन बाबू जिस पथ से आ रहे थे, उसी पथ से वे बालक हाथ में आम लेकर जा रहे थे। बालकों के हाथ में बड़े-बड़े फजली आम देखकर विपिन बाबू आँखें फैल गईं। उन्होंने जीभ निकालकर सिर पर हाथ रखते हुए गुरुभाइयों से कहा— ‘देख लिया! पगले का काम देख लिया!! पगले ने सर्वनाश कर दिया। इतना समझाकर जो मना किया था, पगला वही किया— वही चारों आम दे दिया।’ उस समय विपिन बाबू ने फिर आठ आना देकर बालकों से आम पुनः ले लिया, फिर बड़ा क्रोध व्यक्त करते हुए नौका पर पहुँचे। वे श्रीधर को खूब गाली देने लगे। तब श्रीधर और भी उच्च स्वर में गाने लगे। कुछ क्षण बाद श्रीधर ने भजन समाप्त करके, विपिन बाबू के कुछ कहने के पहले ही उनको खूब धमकाते हुए कहा— ‘क्यों, ये कैसी बात है? भजन के समय गड़बड़ कर रहे थे? तुम्हें अक्ल नहीं है?’ विपिन बाबू ने धमक खाकर थोड़ा दबने पर भी गुरुभाइयों का बल पाकर कहा— ‘तुम्हारी तो खूब अक्ल है, तुमने क्या सोचकर मेरे चारों आम दूसरों को दे दिया?’ श्रीधर ने कहा— ‘दे दिया तो क्या हुआ? वापस मिल तो गया? हाथ बदल होने से दोष हो जाता है?’ विपिन बाबू ने कहा— ‘ब्रह्मचारीजी के लिए आम रखा था, तुमने किसके हुक्म से दूसरों को दिया?’ श्रीधर ने कहा— ‘ब्रह्मचारीजी के हुक्म से दिया। जाओ, उनसे पूछ लो? इस प्रकार झगड़े के बाद दोनों ही चुपचाप बैठे रहे। इधर संध्या हो गई। प्रदीप जलाने के लिए बाती नहीं थी। ‘बाती बनाने के लिए थोड़ा-सा फटा कपड़ा कहाँ मिलेगा’— सोचकर सभी बेचैन हो गए। श्रीधर के झोले में फटे-पुराने कपड़ों के बहुत-से टुकड़े हैं, सभी जानते हैं। उसे श्रीधर सहज में निकालेंगे नहीं, फटे-पुराने कपड़ों की झोली में सिर रखकर वे शयन करते हैं। विपिन बाबू ने अन्धकार में अवसर देखकर, गुरुभाइयों के संकेत से, बाती बनाने के लिए श्रीधर के झोले से जैसे ही कपड़े का एक टुकड़ा निकाला, वैसे ही श्रीधर



भयंकर चित्कार करते हुए विपिन बाबू के सामने आ गए एवं कुछ कहे बिना सीधे उनकी जाँघ के बीच में दाँत से काटने लगे। विपिन बाबू 'बाप रे, माँ रे, खून कर दिया रे' कहते हुए चिल्लाने लगे। गुरुभाई लोग भी जब उन्हें खींच-तान करके नहीं छोड़ा पाए, तब श्रीधर की पीठ पर लगातार घूँसा मारने लगे। उस पर भी श्रीधर ने परवाह नहीं की। तब वे लोग नौका की पटिया निकालकर श्रीधर की पीठ पर धड़ाधड़ मारने लगे। श्रीधर सिर हिलाते हुए पूरी शक्ति के साथ प्राणपण से काटने लगे। क्षत-विक्षत जाँघ से खून निकलने लगा। तब कोई उपाय न देखकर माझियों ने कहा— 'आप सब लोग भी उसको दाँत से काटो, वह छोड़ देगा।' माझियों की बात मानकर दो-तीन लोग श्रीधर की पीठ पर दाँत से काटने लगे। तब श्रीधर काटना छोड़कर अचानक उछल पड़े; 'जय नितार्ई, जय नितार्ई' कहकर दो-एक बार उछलकर, चलती नौका से नदी में कूद पड़े। श्रीधर तैरना नहीं जानते, यह सभी जानते थे। अतः जो जिस अवस्था में थे, तुरन्त नदी में कूद पड़े। गोते लगा-लगाकर सब लोग श्रीधर को खींच-तानकर नौका पर चढ़ाए। इस प्रकार सारी रात उद्वेग में व्यतीत हुई। धीरे-धीरे नौका बारदी के बाजार में पहुँची।

प्रातःकाल सभी फल-मिठाई, सीधा की सामग्री हाथ में लेकर ब्रह्मचारीजी के दर्शन के लिए चल पड़े। श्रीधर के पास कुछ भी नहीं है; ब्रह्मचारीजी के लिए क्या लेकर जाएँगे, यह सोचकर श्रीधर दुःखी मन से चुपचाप बैठे रहे। अचानक नौका से उछलते हुए नीचे उतरकर नहर से पत्ते वाली घास, करेमु शाक, लता-पत्ता एकत्र करके नहर के किनारे रखने लगे। ढेर हो जाने पर अपने बहिर्वास द्वारा उसे बाँध लिए और केवल लंगोटी पहने हुए ही घास के उस विशाल बोझ को श्रीधर अपने सिर पर उठाकर ब्रह्मचारीजी के आश्रम की ओर सीधे दौड़ पड़े। श्रीधर विपिन बाबू आदि को आश्रम पहुँचने पर ब्रह्मचारीजी के दर्शन नहीं हुए। थोड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ी। यथासमय ब्रह्मचारीजी ने सब लोगों को बुलाया। प्रणाम करके वे लोग जैसे ही बैठे, ब्रह्मचारीजी ने उनसे पूछा— 'अरे, वह श्रीधर कहाँ है? तुम लोगों के साथ नहीं आया?' गुरुभाइयों ने कहा— 'वह नौका पर ही बैठा है।' ब्रह्मचारीजी ने कहा— 'वह आया क्यों नहीं? उसको क्या तुम लोगों ने मारा है?' विपिन बाबू ने कहा— 'महाराज, उसके कारण बहुत कष्ट हुआ। उसने रास्तेभर बड़ा उपद्रव किया। मेरी जाँघ में काटकर घाव कर दिया।' ब्रह्मचारीजी ने आम देखकर कहा— 'तुम लोगों को यह आम फिर कहाँ से मिला?' इसी समय सिर पर बोझा लेकर श्रीधर हाँफते-हाँफते आश्रम में आए। श्रीधर को देखते ही ब्रह्मचारीजी आसन से उठकर थोड़ा आगे बढ़े; श्रीधर ने वैसे ही घास का बोझा उनके सामने धम् से पटककर 'इसे खाओ', 'इसे खाओ' कहते हुए उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। ब्रह्मचारीजी एक बार हँसकर बड़ी प्रसन्नतापूर्वक घास की प्रशंसा करने लगे।

श्रीधर का कार्य देखकर सभी हँस पड़े। एकजन ने श्रीधर से पूछा— 'ये सब क्या ब्रह्मचारीजी को खाने के लिए दिया है?' श्रीधर ने सिर उठाकर तेज स्वर में कहा— शास्त्र जानते हो? 'गोब्राह्मणहितायच'। उन्होंने पूछा— 'इसका अर्थ क्या हुआ?' श्रीधर ने कहा— 'अरे पहले गाय का; फिर बामुन बेटों का; उसके बाद तुम्हारा, हमारा, जगत् का। 'नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहितायच। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥' इसलिए पहले गाय को जो प्रिय है, वही तो ब्राह्मणों को भी सब लोगों की अपेक्षा प्रिय है।' श्रीधर की बात सुनकर सभी खूब हँसने लगे। विपिन बाबू ने तब अपने रोग का परिचय देकर रोग से मुक्ति के लिए प्रार्थना की। ब्रह्मचारीजी ने कहा— 'श्रीधर ने तेरी जाँघ में काटा है न? उससे खून निकला तो?' विपिन बाबू ने कहा— 'जी हाँ, बुरी तरह से काट खाया।' ब्रह्मचारीजी ने कहा— 'उससे ही तेरा रोग दूर हो जाएगा। श्रीधर क्यों काटा, उससे एक बार पूछा नहीं?' तब श्रीधर सबके पूछने पर बहुत ही उत्साह के साथ कहने लगे— 'अरे भाई, तुम लोग तो सब बाजार चले गए। मैं अचानक कीर्तन की ध्वनि सुनकर चौंक उठा। नौका से उतरकर चारों ओर देखा, संकीर्तनादि कुछ नहीं है। ब्रह्मचारीजी चार ऋषि बालकों को लेकर नौका के निकट पहुँचे। कहने लगे— 'अरे, मेरे लिए जो चार आम रखे हैं, उसे लाकर इन लोगों को दे दे।' मैंने तुरन्त चारों आम दे दिया। सच है या झूठ, ब्रह्मचारीजी से पूछ लो। इसी के लिए तो तुम लोगों ने मुझे कितनी गालियाँ दी! तुम लोग की बातों पर कान न देकर मैं नाम-जप करने लगा। देखा, आकाश मार्ग से एक संकीर्तन का दल आ रहा है! ब्रह्मचारीजी ने संकीर्तन दल से आगे आकर कहा— 'अरे, उसकी जाँघ में काटकर रक्त निकाल दे, उससे उसका रोग दूर हो जाएगा।' मैंने सोचा, अकारण कैसे काटूँ? इस समय विपिन बाबू की ओर देखा, वे मेरे झोले में से एक फटा कपड़ा खींचकर निकाल रहे हैं। तुरन्त मेरा माथा गरम हो गया। नेपाल, कामाख्या, चन्द्रनाथ और पश्चिम के विभिन्न स्थानों में घूम-घूमकर जिन सब महात्मा-महापुरुषों का दर्शन मिला, प्रत्येक का व्यवहृत बहिर्वास, लंगोटी, आसन आदि का कुछ-न-कुछ अंश संग्रह करके अपने झोले में रखा हूँ; वह सब मेरे हृदय का रक्त है। मैला फटा-पुराना चीथड़ा समझकर विपिन बाबू एक टुकड़ा जब निकाल रहे थे, मैंने तुरन्त उनकी जाँघ में काट खाया। उसके बाद तुम लोग घूँसा मारो या लाठी मारो, रक्त न निकलने तक तो छोड़ूँगा नहीं। रक्त निकलते ही मैं उछल पड़ा। सामने देखा, संकीर्तन का कोलाहल। महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु एवं अद्वैत प्रभु नृत्य कर रहे हैं और गोसाँईजी संकीर्तन के आगे 'हरिबोल, हरिबोल' कहते हुए जा रहे हैं। मैं तुरन्त उस संकीर्तन में कूद पड़ा। फिर देखा डूब रहा हूँ। तब तुम लोगों ने खींच-तानकर मुझे नौका पर चढ़ाया।' श्रीधर के मुख से यह कहानी सुनकर उस समय सभी लोग आश्चर्यचकित हो गए।

धन्य है श्रीधर!

## ब्रह्मचर्य दीक्षा

27 जुलाई, रविवार, शुक्ल दशमी तिथि। आज ब्रह्मकुण्ड में स्नान का महायोग है। सुना है, हजारों की संख्या में लोग स्नान करने के लिए वहाँ सम्मिलित हुए हैं। हमारे कुंज के भी सब लोग आज वहाँ गए हैं। मैं अन्य दिनों की भाँति प्रातः शौच के बाद यमुना में स्नान करने के लिए जाने लगा, ठाकुर ने मुझे बुलाकर कहा— **“तुम जाकर केशीघाट पर मुण्डन करवाकर ब्रह्मकुण्ड में स्नान करके शीघ्र चले आओ। एक चोटी रखना।”**

मैं गुरुदेव के कहे अनुसार यमुना के किनारे केशीघाट पहुँचा। एक शिखा रखकर पूरा मुण्डन करा लिया। ब्रह्मकुण्ड में जाकर देखा, असंख्य लोगों के समागम से स्थान आज परिपूर्ण है। पानी भाँग के घोल के जैसा बहुत मटमैला होने पर भी स्नानार्थियों का भक्ति भाव देखकर मेरी भी स्नान करने की प्रबल इच्छा जागी। जल में उतरकर स्नान के बाद तर्पण करके शीघ्र ही कुंज में आ गया। गुरुदेव के श्रीचरणों में प्रणाम करके अपने आसन पर बैठ गया। इसी समय ठाकुर ने मुझको पुकारकर कहा— **“कुलदा मेरे आसन-गृह में आओ। अभी तुमको ब्रह्मचर्य दूँगा। बैठने के लिए एक आसन ले आना।”** मैंने आसन लेकर ठाकुर के कमरे में प्रवेश करके देखा, ठाकुर पहले से ही अपने आसन पर बैठे हैं। मुझसे कहा— **“पूर्व की ओर मुख करके मेरे सामने बैठो।”** मैं कम्बल का आसन बिछाकर ठाकुर के सामने स्थिर बैठ गया। उस समय मुझे रोना आ गया, मैं सिसकने लगा। सोचा, गुरुदेव आज मुझे ऋषि-मुनियों के पवित्र ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा दे रहे हैं। ठाकुर कितने दयालु हैं! ठाकुर कुछ क्षण स्थिर रहकर धीरे-धीरे मुझसे कहने लगे— **“यह नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत 12 वर्ष, तीन वर्ष अथवा एक वर्ष के लिए दिया जाता है। अभी तुम्हें एक वर्ष के लिए ही व्रत दे रहा हूँ। यदि नियमपूर्वक ठीक प्रकार से यह एक वर्ष चल सको, तब फिर से दिया जाएगा। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य में निष्ठा मूल है। निष्ठा खूब होनी चाहिए। अपनी निष्ठा का किसी भी प्रकार से त्याग नहीं करना। जो नियम कह रहा हूँ, निष्ठा के साथ उन सबका पालन करके चलना।”**

1— प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में उठकर साधना करना। फिर प्रातःक्रिया समाप्त करके पवित्रता के साथ आसन पर बैठना। गायत्री-जप करना। उसके बाद गीता का कम-से-कम एक अध्याय पाठ करना। स्नान के बाद गायत्री-जप करके तर्पणादि करना।

2— स्वपाक आहार करना अथवा अच्छे ब्राह्मण के द्वारा बना अन्न भी आहार कर सकते हो। आहार में किसी प्रकार का अनाचार न हो। आहार का एक नियम रखना। सीमित आहार करना, बहुत अधिक या कम न हो। जिससे कामभाव उत्तेजित होता है, ऐसी वस्तु नहीं खाना। अधिक तीखा, खट्टा और मीठा त्याग करना। मधु और घी से उत्तेजना बढ़ती है; ये सब वस्तुएँ भी अधिक नहीं खाना। आहार के सम्बन्ध में खूब सावधान रहना। आहार अच्छी शुद्धता के साथ करना।

3— आहार के बाद कुछ क्षण बैठकर विश्राम करना। फिर भागवत, महाभारत, रामायण आदि का कुछ समय पाठ करना। पाठ के बाद निर्जन में बैठकर ध्यान करना। संध्या के समय इच्छा होने पर थोड़ा टहल सकते हो।

4— संध्या के समय गायत्री-जप करना। फिर साधनादि जैसा किया करते हो, करना। खूब भूख लगने पर थोड़ा-कुछ जलपान करना। दोनों समय भात नहीं खाना।

5— अत्यन्त साधारण वस्त्र पहनना। साधारण शैय्या पर सोना। वस्त्र और बिछौना अपना निर्दिष्ट रखना। दिन के समय सोना नहीं। समय-समय पर साधु-संग करना, उनके उपदेश को श्रद्धापूर्वक सुनना। अपनी साधना के प्रति विशेष रूप से निष्ठा रखना।

6— किसी की निन्दा नहीं करना; किसी की निन्दा नहीं सुनना; जिस स्थान पर निन्दा होती है, उस स्थान का विषवत् त्याग कर देना।

7— किसी प्रकार का साम्प्रदायिक भाव नहीं रखना। जो जिस भाव से साधना करते हैं, उनको उसी भाव की साधना करने के लिए प्रोत्साहित करना।

8— किसी के मन में कष्ट नहीं देना; सभी को सन्तुष्ट रखने का प्रयास करना। जितना तुमसे सम्भव हो, अन्य लोगों की सेवा करना। मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-लतादि की यथासाध्य सेवा करना। स्वयं को अन्य लोगों से छोटा समझना। सभी को सम्मान देना। सभी कार्य विचारपूर्वक करना। प्रत्येक कार्य में सर्वदा विचार करके चलने से कोई विघ्न नहीं होता।

9— सर्वदा सत्य कथन कहना; सत्य व्यवहार करना। असत्य कल्पना को मन में भी नहीं आने देना। बातें कम करना।

10— युवती स्त्रियों को स्पर्श नहीं करना। देव-दर्शन में, भीड़-भाड़,

रास्ते आदि में या अनजाने में स्पर्श होने से वह स्पर्श के अन्तर्गत गण्य नहीं होगा। अत्यन्त गुप्त रूप से अपना काम करते जाना।

11— सर्वदा खूब पवित्रता से रहना। पवित्र स्थान में पवित्र आसन पर बैठना।

“इन सब नियमों का पालन करके चल सकने पर आगामी वर्ष और भी नियम बतला दिए जाएँगे।”

इन सब नियमों का उपदेश देकर ठाकुर मेरी ओर देखते हुए खूब प्राणायाम करने लगे। मुझे भी साथ-साथ प्राणायाम करने को कहा; मैं भी वह करने लगा। फिर मुझे दुर्लभ ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा दी। इस समय आनन्द से मुझे नृत्य करने की इच्छा हुई। भाव में अभिभूत होकर बहुत समय तक बैठा रहा। फिर ठाकुर ने मुझसे उठने के लिए कहा।

मैं जैसे ही ठाकुर के कमरे से बाहर निकला, तभी सब लोग कुंज में आ गए। मेरे व्रत के विषय में कोई भी कुछ नहीं जान सका।

### विचारपूर्वक दान का उपदेश

संध्या के समय हम सब लोग ठाकुर के साथ श्रीश्री गोविन्दजी के दर्शन के लिए बाहर निकले। मन्दिर के निकट एक वृद्ध को देखकर ठाकुर रुक गए। वृद्ध ज्वर से अत्यन्त पीड़ित एवं कंगाल वेश में थे। ठाकुर के सामने आकर संकेत द्वारा अपने मन का भाव व्यक्त करने लगे। हम लोगों को उनका संकेत कुछ भी समझ नहीं आया। इस समय मैंने ठाकुर से पूछा— वृद्ध क्या कह रहा है? ठाकुर ने कहा— **“तुम्हारा ओढ़ा हुआ कम्बल चाहता है।”** मैं— तो दे दूँ? ठाकुर ने कहा— **“तुम्हारी इच्छा हो तो दे सकते हो।”** तब मैं वृद्ध को कम्बल देकर, खुले बदन ठाकुर के पीछे-पीछे चलने लगा। ठाकुर ने मुझसे पूछा— **“तुम्हारे पास ओढ़ने का अन्य कोई कपड़ा नहीं है?”** मैं— केवल एक फटी धोती है, दूसरा कुछ नहीं है। प्रातःकाल अपनी गरम ऊनी चदर एक भिखारी को दे दी। सुनकर ठाकुर ने कहा— **“जिस वस्तु के अभाव से अत्यन्त क्लेश होता है, वैसी नितान्त आवश्यक वस्तु छोड़नी नहीं चाहिए। उसके अभाव से कष्ट होने पर यदि एक बार भी दान के लिए अनुताप होता है, तो सब मिट्टी में मिल जाता है। इसलिए सभी कार्य विचारपूर्वक करना चाहिए। ठीक है, भगवान् तुम्हारे लिए जुगाड़ कर रखे हैं।”**

कुंज में आकर ठाकुर ने माता ठाकुरानी से कहा— **“तुम्हारे आसन का कम्बल, बिछाकर सोने हेतु कुलदा को दे दो।”** माता ठाकुरानी ने तुरन्त मुझे

अपना कम्बल लाकर दे दिया। माता ठाकुरानी के बहुत दिनों के साधन-भजन का कम्बल-आसन पाकर अपने को बड़ा भाग्यवान् समझा। मन में बड़ी प्रसन्नता हुई।

## आसन का ग्रन्थ

28 जुलाई, सोमवार। भोर में यथारीति प्रातःक्रिया करने के पश्चात् जाकर यमुना में स्नान और तर्पण किया। कुछ दिनों से ब्रह्मसमाजी मित्र गुरुभाई सतीशचन्द्र भी मेरे साथ तर्पण कर रहे हैं। तर्पण करने से सम्भवतः उनको अपना शरीर हल्का अनुभव होता है, मन में भी वे एक अपूर्व आनन्द का अनुभव करते हैं। उनकी यह बात सुनने के बाद से मेरी भी तर्पण के प्रति श्रद्धा बढ़ गई। स्नान के बाद अपने आसन पर बैठकर मैंने कुछ समय तक साधना की। मेरे लिए प्रतिदिन एक अध्याय गीता-पाठ करने का आदेश हुआ है, परन्तु मेरे पास गीता नहीं है। मैं साहस करके ठाकुर के आसन-गृह में गया और उनकी गीता लेकर आ गया। फिर पाठ करने के बाद पुनः उसे यथास्थान पर रख दिया। ठाकुर ने मुझसे कहा—  
**“आसन का ग्रन्थ कभी स्थानान्तरित नहीं करते, हानि होती है।”**

मैं— आपने मुझसे गीता-पाठ करने को कहा है, मेरे पास गीता नहीं है।

ठाकुर— वही गीता तुम निःसंकोच पढ़ो। अन्य कमरे में न ले जाना ही अच्छा है। मेरे आसन-गृह में ही बैठकर पढ़ सकते हो।

मैं— आसन से ग्रन्थ उठाने से भी तो स्थानान्तरित करना होगा?

ठाकुर— उससे कोई दोष नहीं होता। आसन-गृह में रहने से ही हो गया।

## दृष्टि-साधना

अपराह्न में कुछ समय दृष्टि-साधना करके ठाकुर के पास जाकर पूछा— बहुत दिनों से क्षिति में दृष्टि-साधना करता आ रहा हूँ। अब अन्य भूत में अभ्यास करूँ? ठाकुर ने कहा— **“नहीं, अभी यही करो। और भी पक्का होने दो। एक का ठीक अभ्यास हो जाने पर ही फिर अन्य का करना अच्छा है। एक बिन्दु पर ही दृष्टि को पूर्णतः स्थिर करना चाहिए।”**

मैं— दृष्टि-साधना से क्या उपकार होता है? ठाकुर ने कहा— **“आँखें स्वच्छ होती हैं; दृष्टि-शक्ति बढ़ती है। बहुत दूर की वस्तु और सूक्ष्म विषय सभी स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। और भी जो-जो होते हैं, दृष्टि-साधना करते-करते ही वह समझोगे।”**

**‘करते-करते ही वह समझोगे’**— ठाकुर के इस प्रकार कहने पर मेरा फिर कोई प्रश्न करने का साहस नहीं हुआ। सोचा, ‘इस कथन के द्वारा ही उन्होंने मुझे चुप रहने का संकेत किया है।’ मैं चुपचाप बैठकर नाम-जप करने लगा।

## श्रीविग्रह दर्शन का उपदेश

कुछ समय बाद ठाकुर ने अपने-आप कहा— **“श्रीवृन्दावन में जितने दिन रहोगे, प्रतिदिन मन्दिर जाकर ठाकुरजी का दर्शन करो, उपकार होगा।”** मैंने कहा, ठाकुरजी तो पत्थर की मूर्ति है, वह दर्शन करने से क्या उपकार होगा? आपके साथ तो कितने दिन दर्शन किया ही हूँ। क्या उपकार हुआ, वह तो कुछ समझ ही नहीं आया।

ठाकुर— **जिन स्थानों पर भगवान् के उद्देश्य से हजारों-हजारों लोग श्रद्धा-भक्ति अर्पण करते हैं, वहाँ उन सब भावों का एक योग रहता है। उन स्थानों पर जाने से भीतर के सब धार्मिक भाव जागृत हो जाते हैं। यह क्या कम उपकार है? फिर इस श्रीवृन्दावन के सब विग्रह साधारण प्रस्तर-मूर्ति नहीं हैं। ‘भक्तमाल’ पढ़े हो? एक बार पढ़ो।**

मैंने पूछा— क्या श्रीवृन्दावन के सब ठाकुरजी बात करते हैं, हाथ-पैर हिलाते हैं? सभी कहते हैं, यहाँ के सब ठाकुरजी जागृत हैं। किस प्रकार जागृत हैं?

ठाकुर ने कहा— **“जिनके उस प्रकार नेत्र-कर्ण हैं, वे लोग ठाकुरजी का हाथ-पैर हिलाना देखते हैं, वाणी भी सुनते हैं। यह सब कहने से साधारण लोग कैसे विश्वास कर पाएँगे?”**

## स्वप्न: गंगा के भँवर में डूबना

29 जुलाई, मंगलवार। माता ठाकुरानी के आने से ठाकुर के लिए चाय की अब अच्छी व्यवस्था हो गई है। श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव के कृपापात्र श्री राखाल बाबू (ब्रह्मानन्द स्वामी), प्रबोधचन्द्र एवं दक्ष बाबू नित्य चाय पीने हमारे कुंज में आते हैं। श्री रामदास काठिया बाबा के आश्रित श्री अभय बाबू भी प्रतिदिन आया करते हैं। सब लोगों के चाय पी लेने के बाद श्रीधर श्रीचैतन्यचरितामृत का पाठ करते हैं। उसके बाद ठाकुर के आदेशानुसार अभय बाबू ‘इमिटेशन ऑफ क्राइस्ट’ का भी पाठ और बंगानुवाद करके सब लोगों को सुनाया करते हैं। ठाकुर ने आज इस पुस्तक की बहुत प्रशंसा करके कहा— **‘इमिटेशन ऑफ क्राइस्ट’ नित्य पाठ के उपयुक्त है। ग्रन्थ को जिन्होंने लिखा है, वे एक महापुरुष हैं।**

सब चले गए, गत रात्रि के एक स्वप्न का वृत्तान्त ठाकुर को बतलाया।

स्वप्न यह है— निर्मल, शीतल गंगा के जल में गले तक उतरकर आनन्द से स्नान कर रहा हूँ, किसी ओर भी मेरी दृष्टि नहीं थी। अचानक प्रबल धारा में गिर पड़ा। धारा मुझे बहाकर ले जाने लगी। बहुत अच्छा तैरना जानता हूँ; अतएव उस ओर मैंने ध्यान नहीं दिया। फिर जब देखा, किनारे से बहुत दूर आ गया हूँ, तब किनारे जाने के लिए प्राणपण से चेष्टा करने लगा; लेकिन धारा के प्रतिकूल तैरने से मेरा सर्वांग अवसन्न हो गया। तब बहुत थक जाने के कारण बाध्य होकर हाथ-पैर चलाना छोड़ दिया। कुछ क्षण के बाद देखा, बहुत भयंकर स्थान पर आ गया हूँ। तरंगरहित बहुत विस्तृत मण्डलाकार भँवर 'सन्-सन्' शब्द के साथ घूमते-घूमते क्रमशः नीचे की ओर एक अज्ञात केन्द्र के गर्त में गिर रहा है। मैं उस भँवर में जल के साथ-साथ धीरे-धीरे पाताल की ओर जाने लगा। चारों ओर देखने लगा, किनारा कहीं नहीं है। तब सोचा, 'हाय, यह क्या हुआ? परम पवित्र साक्षात् ब्रह्मरूपिणी-गंगा के बीच था, उन्हीं के भँवर में पड़कर अब रसातल में जा रहा हूँ!' इसी समय अचानक मँझले भैया गंगा के किनारे आए एवं मेरे जीवन को संकट में देखकर उन्मत्त के समान हित-अहित का विचार किए बिना तुरन्त गंगा में कूद पड़े एवं शीघ्र तैरते हुए मेरे पास आ गए। फिर बायें हाथ से मुझे पकड़कर अपनी छाती से लगाया और दाहिने हाथ से पूरी शक्ति लगाकर तैरते हुए किनारे पहुँचे। किनारे पहुँचते ही हाँफते-हाँफते मैं जाग उठा।

ठाकुर ने स्वप्न का विवरण सुनकर कहा— **“जो स्वप्न देखोगे, उसे लिखकर रखो। कई बार स्वप्न में भविष्य का आभास मिलता है।”**

स्वप्न की बात होते-होते मैंने मँझले भैया की बात उठाई। ठाकुर से पूछा— क्या मँझले भैया ने दीक्षा ली है?

ठाकुर— **दीक्षा लिए रहने पर भेंट होने से समझ जाओगे।**

मैं— किस प्रकार जानूँगा? वे क्या मुझे बतलाएँगे?

ठाकुर— **उनके न बतलाने पर भी तुम समझ जाओगे। यह शक्ति जिन्हें मिल जाती है, फिर वे क्या अपने पास गुप्त रख सकते हैं?**

मैं— आपकी बातों से ही समझ आता है, उन्हें दीक्षा मिल गई है। फिर स्पष्ट रूप से क्यों नहीं कहते?

ठाकुर ने बच्चों के समान थोड़ा हँसते-हँसते कहा— **“वह कैसे कहूँगा? उन्होंने मुझे मना जो किया है।”**

ठाकुर की यह बात सुनकर सभी खूब हँसने लगे।



## श्रीवृन्दावन की रज

श्रीवृन्दावन आकर देख रहा हूँ, गुरुभाइयों में उच्छिष्ट का विचार नहीं है, साफ-सुथरा रहने की भी किसी की मति नहीं होती। भोजन के बाद सभी जूठा हाथ माटी में मलते हैं, उच्छिष्ट मुख में भी माटी मल लेते हैं। पानी से उनका हाथ धुलाने पर वे मुझे दबाकर पकड़ लेते हैं और बलपूर्वक मेरे हाथ-मुँह में धूल-माटी रगड़कर कहते, 'अब पवित्र हुआ।' स्नान करके आते समय भी मेरे स्वच्छ शरीर में कीचड़, धूल-माटी डाल देते। मेरे क्रोध करने पर अथवा विरक्त होने पर रास्ते के दोनों ओर से वैष्णव बाबाजी लोग मुझे शान्त होने का उपदेश देकर कहते— 'क्रोध मत कीजिए! आनन्द कीजिए। उससे राधारानी की कृपा होती है, कृष्ण-भक्ति प्राप्त होती है।' गुरुभाइयों का उत्साह इससे और भी बढ़ जाया करता है। आज मध्याह्न में हरिवंश पाठ के बाद गुरुभाइयों के इन सब अनाचार, अत्याचार और अशिष्ट व्यवहार के प्रतिकार की प्रत्याशा से ठाकुर से प्रश्न किया, 'श्रीवृन्दावन की माटी का क्या इतना गुण है कि उसको लगाने से उच्छिष्ट भी शुद्ध हो जाता है?'

ठाकुर ने कहा— "श्रीवृन्दावन की माटी नहीं, रज कहना चाहिए। ब्रज की रज परम पवित्र है। पृथ्वी के अन्य किसी भी स्थान की माटी के साथ इसकी तुलना नहीं होती। उच्छिष्टादि सब इस रज को लगाने से शुद्ध हो जाते हैं; श्रीवृन्दावन में पानी की अपेक्षा रज अधिक पवित्र होती है।"

मैंने कहा— खा-पीकर उच्छिष्ट हाथ-मुँह में रज लगाने से शुद्ध हो जाएगा? फिर पानी से धोना नहीं पड़ेगा?

ठाकुर ने कहा— "मैं जब पहले यहाँ आया, भोजन के बाद पानी से ही हाथ-मुँह धोकर आचमन करता था; ब्रजवासियों ने मुझसे कहा, 'बाबा, ब्रज-रज लगाने से और अधिक शुद्ध होता है।' दो दिन जब मुझसे इस प्रकार कहा गया, तो मैंने सोचा, अच्छा, देख क्यों न लूँ? तीसरे दिन मैं जल का उपयोग न करके हाथ-मुँह में रज मलने लगा। ऐसा करने पर मेरे मन में बिल्कुल भी दुविधा नहीं हुई, उच्छिष्ट का कुछ संस्कार न रहा। गंगाजल से धोने पर जैसे पवित्रता का बोध होता है, मुझे वैसा ही बोध हुआ। उसके बाद से मैं यह रज लेकर मल लेता हूँ। स्वच्छता के लिए थोड़ा पानी लेकर हाथ-मुँह धोने से ही हो जाता है। यहाँ ठाकुरजी के भोग का बर्तन तक रज में घिस लेते हैं, उससे ही पवित्र हो जाते हैं।"

मैंने पूछा— ब्रज-रज का इतना गुण है? जो उसको शरीर में मलने से

सत्वगुण बढ़ जाता है? रज में विश्वास न होने से क्या केवल शरीर में लगाने से सत्वगुण बढ़ेगा?

ठाकुर ने कहा— लगाकर देखने से ही समझ सकोगे। विश्वास करो या न करो, वस्तु का गुण जाएगा कहाँ? कुछ दिन पहले एक बंगाली सज्जन श्रीवृन्दावन आए थे। दो-तीन दिन विग्रह आदि का दर्शन करके दाऊजी के मन्दिर पर आए। मैं उस समय मन्दिर के पास बैठा था। बातों-बातों में उन्होंने मुझसे कहा, 'महाराज, गाँव में रहते समय वृन्दावन के माहात्म्य की कितनी बातें सुनी है; लेकिन कहाँ है? कुछ भी तो दिखा नहीं। रज का कितना गुण सुना था, वह भी तो कुछ समझ नहीं पाया! फिर सब स्थान जैसे हैं, इसे भी वैसा ही देख रहा हूँ।' मैंने उनसे कहा, रज की विशेषता अवश्य है। आप एक बार रज में लोटकर देखिए तो। उन्होंने एक बार रज में माथा टिकाकर कहा, 'कहाँ, जैसा है, वैसा ही तो है।' मैंने कहा, शरीर का कुर्ता उतारिए, साष्टांग प्रणाम करके रज में एक बार लोटिए, उसके बाद देखिए कोई परिवर्तन होता है या नहीं! वे तभी परीक्षण करने के लिए कुर्ता खोलकर रज में लोटने लगे। दो-तीन बार लोटते ही उन्हें क्या हुआ, वे ही जानें, सिसककर रो पड़े। कहे, 'महाराज, मैं घोर अविश्वासी हूँ; लेकिन जीवन में रज का यह गुण कभी भूलूँगा नहीं।'

ठाकुर बहुत समय तक ऐसे नाना दृष्टान्त देकर रज की असाधारण महिमा की बातें कही। कुछ समय बाद हम सब लोग विग्रह-दर्शन के लिए बाहर निकले।

## मथुरा के पथ पर श्रीधर की कीर्ति

30 जुलाई, बुधवार। अन्य दिनों की भाँति 9 बजे के भीतर आसन का कार्य समाप्त किया। ठाकुर ने मुझे बुलाकर कहा— "कुछ दिनों से हरिमोहन ज्वर से बड़ा कष्ट पा रहे हैं। तुमको देखना चाहते हैं। मनोमोहन (मथुरा के असिस्टेन्ट सर्जन) के निवास पर हैं। तुम्हारे लिए आज ही वहाँ एक बार जाना उचित है। पीड़ित अवस्था में कोई देखना चाहे, तो जाना चाहिए। तुम अभी सीधे वहाँ जाओ।"

मैंने कहा— मैं रास्ता नहीं जानता, मनोमोहन बाबू का घर भी नहीं जानता। किसके साथ जाऊँगा? ठाकुर ने श्रीधर को बुलाकर कहा— "कुलदा को मथुरा में मनोमोहन बाबू के घर ले जाओ। कुलदा मथुरा गया नहीं; अस्पताल भी नहीं जानता है।"

श्रीधर के साथ जाने लगा। सतीश भी हमारे साथ हरिमोहन को देखने गए। नाना स्थानों से घूमते हुए बहुत कष्ट से दिन के लगभग 11 बजे हम लोग मथुरा पहुँचे। मुझे देखकर स्वामी हरिमोहन को अत्यन्त आराम मिला। कुछ समय वहाँ विश्राम करके श्रीवृन्दावन के लिए निकल पड़े। श्रीधर का माथा गरम हो गया है। रास्तेभर उन्होंने हम लोगों को बहुत भुगताया। मनोमोहन बाबू के घर पर हमें पहुँचाते ही बिना कुछ कहे सीधे श्रीवृन्दावन की ओर भाग गए! हम लोग रास्तादि कुछ भी नहीं जानते। लगभग 3 बजे हम लोग कुंज पहुँचे। आहारादि करके ठाकुर के पास बैठते ही उन्होंने कहा— **“श्रीधर तुम लोगों को ठीक रास्ते से तो ले गए थे? उन्होंने कोई गड़बड़ तो नहीं की?”**

उत्तर में मैं कहने लगा— कुंज से जाते समय ही श्रीधर हाथ-मुँह मटकाते हुए ‘चल मथुरा चल, इस बार तुम लोगों को मथुरा दिखाऊँगा’ कहते ही लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाकर विपरीत दिशा में चलते हुए सीधे वंशीवट में पहुँच गए। हम लोगों को वहाँ से यमुना के किनारे-किनारे चलकर सीधे राधाबाग ले गए। जंगल में प्रवेश करके श्रीधर ने कहा, ‘सीधा चलो।’ हमने कहा, ‘रास्ता कहाँ है?’ तब श्रीधर तेज गति से चलकर हम लोगों को घुमाने लगे। एक ही स्थान में दो-तीन बार घूम-फिरकर समझ गया, श्रीधर का माथा गरम हो गया है। तब धीरे से पूछा, ‘भाई श्रीधर, मथुरा किस ओर है?’ श्रीधर ने उत्तर दिया, ‘मयूर देखो!’ हम लोग फिर क्या करते? चुप रह गए। फिर श्रीधर साफ-सुथरे रास्ते से न चलकर रास्ते के दायें, बायें, वन के भीतर से दौड़ने लगे। हम लोग भी उनके पीछे-पीछे बहुत समय तक जंगल में दौड़-भाग करके थक गए। इस प्रकार कष्ट भोगते-भोगते अन्त में हम लोग एक विशाल मैदान के सामने पहुँचे। तब श्रीधर को समीप पाकर फिर पूछा, ‘भाई श्रीधर, मथुरा और कितनी दूर है?’ श्रीधर ने रास्ते में एक विशाल वट वृक्ष दिखलाकर कहा, ‘प्रणाम करो। इस वृक्ष की गोसाँईजी ने खोज की है।’ वृक्ष को प्रणाम करके हम लोगों ने देखा, पूरे वृक्ष में देवमूर्तियाँ हैं; तने पर स्पष्ट रूप से ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेशादि की मूर्ति अपने-आप बनी हुई हैं। हाथ से बनाए मिट्टी के पुतलों की भाँति इतनी स्पष्ट देवमूर्ति वृक्ष में किस प्रकार उत्पन्न हुई, सोचकर चकित हो गया। मूर्ति आदि को सतीश और मैं ध्यान से देख रहे हैं, अचानक श्रीधर पुनः मैदान के बीच से दौड़ पड़े। हम लोग उसके पीछे-पीछे चलकर एक बस्ती में पहुँचे। उस बस्ती के विभिन्न गंदे स्थानों से हम लोग को ले जाकर फिर एक विशाल मैदान में ले आए। श्रीधर उस विशाल मैदान के मध्य तक तो खूब धीरे-धीरे चले। फिर मैदान के मध्य स्थल पर पहुँचते ही हम लोगों से कुछ कहे बिना ही लम्बी दौड़ लगा दी। हम भी उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। तब श्रीधर एक बार दायें एक बार बायें एकदम से दौड़ने लगे। हम लोग रास्तादि

कुछ जानते नहीं, क्या करें? उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। इतना कष्ट भुगतकर बहुत देर बाद हम लोग उनके साथ यमुना के किनारे पर पहुँचे। तब श्रीधर घास के जंगल के बीच से धीरे-धीरे चलने लगे। कुछ दूर जाकर अचानक 'जलजन्तु रे, जलजन्तु' कहकर उन्होंने घास के ऊपर से दौड़ लगा दी। हम लोग कोई उपाय न देखकर उनके पीछे-पीछे भागे। कुछ दूर जाकर हम लोग एक छोटी नहर के किनारे पहुँचे। तब श्रीधर से पूछे, 'श्रीधर ये कहाँ ले आए?' श्रीधर ने कहा, 'नहर पार करो।' हमने कहा, 'तुम आगे जाओ।' उन्होंने कहा, 'तैरना नहीं जानता।' तब सतीश ने धमकाते हुए कहा, 'आओ, इस बार तुम्हें पानी में डुबाएँगे।' श्रीधर ने एक बार आगे-पीछे देखकर सीधे दौड़ लगा दी। हम लोग निरुपाय होकर उनके पीछे-पीछे भागे। श्रीधर एक स्थान पर कुछ हड्डियाँ देखकर वहाँ रुक गए। हड्डियों में छानबीन करते-करते हमारी ओर बार-बार देखने लगे। सतीश ने कहा, 'श्रीधर क्या कर रहे हो? वह तो गाय की हड्डी है! छिः, छिः।' यह बात सुनकर श्रीधर 'रुक साला' कहकर, गाय की विशाल मेरुदण्ड की हड्डी कन्धे में उठाकर सतीश को भगाने के लिए आए। 'पगला साला इस बार खून करेगा रे' कहते हुए सतीश ने दौड़ लगा दी, मैं भी प्राण बचाकर दौड़ने लगा। श्रीधर हम लोगों को पकड़ने ही वाला है; इस समय दूसरा उपाय न देखकर सतीश के साथ मैं भी नहर में कूद पड़ा। श्रीधर भी उस हड्डी को साथ में लेकर दौड़ते हुए पानी में कूद पड़े। श्रीधर तैरना नहीं जानते; गोता खाते-खाते हड्डी को छोड़ दिए। तब हम लोगों ने ही किसी प्रकार से उनको खींच-तानकर दूसरे किनारे पर उठाया। फिर बड़े कष्ट से हम लोग उनके साथ मथुरा में मनोमोहन बाबू के निवास-स्थान पर जा पहुँचे। स्वामी हरिमोहनजी को देखा, वे अब थोड़ा ठीक हैं। स्वस्थ होते ही वे यहाँ आएँगे। श्रीधर ने मनोमोहन बाबू से हम लोग के जलपान के लिए कुछ आने पैसे लेकर कहा— 'भाई, तुम लोग थोड़ा बैठो, तुम लोगों के लिए भूने चने लेकर आता हूँ।' यह कहकर श्रीधर सीधे स्टेशन चले गए एवं हम लोगों के जलपान के उस पैसे से एक टिकट लेकर श्रीवृन्दावन आ गए। हम लोग उनकी प्रतीक्षा में बहुत समय तक रुककर फिर चले आए।'।

ठाकुर श्रीधर के पागलपन की ये सब बातें सुनकर खूब हँसने लगे। उनकी प्रसन्नता देखकर हम लोगों को बड़ा आनन्द आया। धन्य है श्रीधर! तुम्हीं धन्य हो! साधन-भजन की अपेक्षा तुम्हारा यह पागलपन ही श्रेष्ठ है।

मैंने ठाकुर से पूछा— उस वृक्ष को क्या आपने ही सबसे पहले देखा था? उन सब मूर्तियों में सिन्दूरादि का टीका भी तो देखने को मिला।

ठाकुर— पंचकोसी-परिक्रमा करते समय उस वृक्ष को देखा था। तब तक वृक्ष की ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। जो साथ में थे,

उन्हें उस वृक्ष में देवी-देवताओं की मूर्ति दिखलाने से उन लोगों ने ही प्रचार कर दिया। अब पण्डे लोग उस वृक्ष को दिखाकर यात्रियों से प्रणामी लेते हैं; सिन्दूर भी पण्डों ने ही लगाया है।

मैंने कहा— वृक्ष लेकिन बड़ा ही अद्भुत है! सुना है, वे सब देवी-देवता वास्तव में उस वृक्ष में हैं। अच्छा, देवी-देवता वहाँ उस जंगल में वृक्ष का आश्रय लेकर क्यों रहेंगे?

ठाकुर— अरे बाबा, कितने ही देवी-देवता ऋषि-मुनि इस श्रीवृन्दावन की रज पाने के लिए लालायित हैं! इस स्थान में रज के प्रत्येक कण में महाविष्णु विद्यमान हैं।

उसके बाद श्रीवृन्दावन की रज का माहात्म्य ठाकुर के मुख से सुनते-सुनते संध्या हो गई। हम लोग दाऊजी की आरती देखने नीचे आ गए।

### स्वप्न: गृहस्थ नहीं होना पड़ेगा

1 अगस्त, शुक्रवार। रात्रि के अन्तिम प्रहर में एक स्वप्न देखकर मन बड़ा विचलित हो गया। अवसर पाकर ठाकुर को स्वप्न का सुनाया— निर्जन मनोरम एक स्थान में पाँच महापुरुष अपने-अपने आसन पर बैठे हुए धर्म-प्रसंग में लीन हैं; मैं उन लोगों के निकट जा पहुँचा। बारदी के ब्रह्मचारीजी भी उनमें से एक हैं। मैं सभी के चरणोद्देश्य से साष्टांग प्रणाम करके उन लोगों का दर्शन करने लगा। मुझे देखकर सभी महापुरुष एकदम से कह उठे, 'ये क्या? तुम यहाँ पर कैसे आए? क्या चाहिए? तुम्हारा जो कर्म है, वह अभी पूर्ण नहीं हुआ है। संसार के अनेक कर्म तुमको करने होंगे।' मैंने कहा, संसार-कर्म यदि मेरे प्रारब्ध में रहता है, तो होएगा; लेकिन प्रारब्ध कर्म तो मेरे ठाकुर की मुट्टी में है। वे जो कहेंगे, वही तो कर्म है। उसके सिवा और कर्म क्या है? अच्छा, अपने गुरुदेव से पूछता हूँ, वे मुझे गृहस्थ में जाने कहते हैं या नहीं। यह कहकर उन लोगों को प्रणाम करके मैं आपके पास आ गया। महापुरुषों की बातें आपको बतलाकर आपसे पूछा, मुझे क्या कर्म-बन्धन से मुक्त नहीं करेंगे? तो क्या वास्तव में मुझे पुनः वही घर-गृहस्थी करनी होगी? आपने मेरी ओर स्नेहपूर्वक देखकर सिर हिलाते हुए कहा— 'नहीं, नहीं, तुमको अब गृहस्थी नहीं करनी पड़ेगी।' ये कुछ बातें सुनकर मैं जाग गया। यह स्वप्न क्या सत्य है?

ठाकुर ने कहा— "ऐसे स्वप्न मिथ्या नहीं होते। तुम्हें अब संसार-कर्म या घर-गृहस्थी नहीं करनी पड़ेगी। स्वप्न को लिखकर रखो। अब से सभी स्वप्नों को लिखकर रखो। और भी कितने स्वप्न देखोगे!"

## वृक्षरूपी वैष्णव महापुरुष

कल श्रीवृन्दावन परिक्रमा मार्ग पर मुख्य मार्ग के किनारे जिस प्राचीन वट वृक्ष का दर्शन करके आए थे, उस वृक्ष के सम्बन्ध में दो-चार बातें उठाने से और भी बातें होने लगीं। श्रीवृन्दावन में वृक्ष के रूप में कितने महापुरुष हैं, कहा नहीं जा सकता। गुरुदेव ने स्वयं जो प्रत्यक्ष किया था, वह कहने लगे— **एक दिन मैं घूमते-घूमते राधाबाग जा पहुँचा। यमुना के किनारे एक निर्जन स्थान देखकर वहाँ एक वृक्ष के नीचे निश्चिन्त होकर बैठ गया। कुछ ही क्षण में 'सर् सर्' ध्वनि मेरे कानों में आने लगी। देखा, सामने में एक वृक्ष काँप रहा है। देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं वृक्ष की ओर देखता रहा। फिर देखा वृक्ष नहीं है, एक बहुत सुन्दर वैष्णव महात्मा वहाँ खड़े हुए हैं। उनके द्वादश अंग में यथारीति तिलक, गले में कण्ठी, तुलसी की माला, हाथ में भी जप की तुलसी-माला है। उनके विषय में जानने की इच्छा व्यक्त करने पर उन्होंने मुझे पूरा परिचय दिया, फिर कहा, 'यहाँ मैं वृक्ष के रूप में हूँ।' और भी अनेक बातें कहकर उन्होंने पुनः वृक्ष का रूप धारण कर लिया। मैंने यह बात दो-एक वैष्णवों से कही, वे लोग विश्वास नहीं कर पाए, वरन् उपहास करके गौर शिरोमणि जी के पास जाकर कह दिए। इस विषय में शिरोमणि जी के पूछने पर मैंने उन्हें सब स्पष्ट रूप से बतलाया। वे सुनकर रज में लोटने लगे, रोने लगे; फिर उन्होंने मुझसे कहा, 'प्रभु, ये सब बातें जिस किसी को भी न कहें; विश्वास नहीं कर पाएँगे, उपहास करेंगे।'**

सुना है, बाद में गौर शिरोमणि जी भी राधाबाग में उसी वृक्षरूपी वैष्णव महात्मा का दर्शन करके आए थे। मैंने ठाकुर से पूछा— महात्मा लोग यहाँ वृक्ष के रूप में क्यों रहते हैं?

ठाकुर ने कहा— **"श्रीवृन्दावन अप्राकृतिक धाम है। अप्राकृतिक लीला यहाँ नित्य हो रही है। वैष्णव महापुरुष निश्चिन्त होकर उसी का दर्शन करने के लिए वृक्षादि के रूप में विद्यमान हैं; ब्रजधाम में वास करके आनन्द से भजन करते हैं और लीला दर्शन करते हैं।"**

मैंने कहा— वृक्षरूप में जो सब महापुरुष वृन्दावन में हैं, फिर उन्हें तो साधारण लोग जानते नहीं! वृक्ष के ऊपर किसी प्रकार का अत्याचार करने से उन महापुरुषों को कोई हानि नहीं होती?

ठाकुर ने कहा— **"इसीलिए ब्रज के वृक्ष-लता को हानि नहीं पहुँचाते। हानि पहुँचाने से उनको बहुत कष्ट होता है। अभी कुछ दिन पहले ही**

तो एक वृक्ष पर अत्याचार करने से भयानक अनिष्ट हो गया।”

क्या हुआ था, यह जानने की इच्छा व्यक्त करने पर ठाकुर कहने लगे—  
“यहाँ पास में ही एक कुंज में एक बहुत पुराना नीम का सुन्दर वृक्ष था, कुंज के वैष्णव बाबाजी वृक्ष की खूब सेवा-जतन करते थे। एक दिन वहाँ की एक युवती वैष्णवी ने रजस्वला अवस्था में वृक्ष को पकड़ लिया। रात्रि में बाबाजी ने स्वप्न देखा— एक वैष्णव ब्रह्मचारी ने आकर उनसे कहा, ‘तुम्हारे कुंज में इतने समय से बड़े आराम से था, कल तुम लोगों की वैष्णवी ने अशुद्ध काम-कलुषित अवस्था में वृक्ष को कई बार पकड़ा। इससे मेरी अत्यन्त हानि हुई है; इसीलिए मैंने यह स्थान त्याग दिया।’ बाबाजी ने प्रातः उठकर देखा, वृक्ष सूख गया है। हम लोगों ने भी जाकर देखा, एक रात्रि में ही वह बड़ा वृक्ष बिल्कुल सूख गया।”

ठाकुर की ये सब बातें सुनकर चकित रह गया। मुँगेर में जो घटना हुई थी, उसी गुलाब के पौधे की बात आज मन में आ गई। ठाकुर को वह बात बतलाने पर उन्होंने कहा— **“वास्तविक रूप से सेवा कर सको, तो वृक्ष की बातचीत भी सुनी जा सकती है।”**

श्रीवृन्दावन के सब वृक्ष वास्तव में अद्भुत हैं। छोटे-बड़े सभी वृक्षों की शाखा-प्रशाखाएँ लता के समान झूलकर भूमि की ओर लटक गई हैं, पत्ते तक डंडी सहित नीचे की ओर मुख किए हुए हैं। ऐसा और कहीं नहीं देखा। निधुवन एवं अन्यान्य प्राचीन कुंज और वन में बड़े-बड़े सब वृक्ष रज में लोटते हुए बढ़ रहे हैं। वृक्ष ऊपर की ओर क्यों नहीं उठते, वह कुछ समझ में नहीं आता। उन वनों में अत्यन्त प्राचीन अनेक वृक्ष भी लता के समान ही लगते हैं। अद्भुत है ब्रजभूमि! लगता है, भूमि का ही यह गुण है कि मस्तक उठाने नहीं देता। निर्लज्ज स्वभाव के अशिष्ट लोग का भी श्रीवृन्दावन में दीर्घकाल तक वास करने पर रज के प्रभाव से मस्तक झुक जाता है, इस पर फिर अविश्वास करने का मन नहीं होता। अन्यान्य सैकड़ों दोष रहने पर भी ब्रजवासियों का स्वभाव मृदु एवं नम्र देखता हूँ।

## श्रीवृन्दावन में अपार मच्छर

श्रीवृन्दावन में दिनभर तो आनन्द रहता है, परन्तु संध्या होते ही आतंक! दिन शेष होते-होते मच्छरों के उत्पात की बात सोचकर ही मैं बेचैन हो जाता हूँ। ऐसे भयंकर मच्छर और कहीं देखा नहीं। रात्रि होते ही झुंड-के-झुंड मच्छर आकर शरीर पर बैठते हैं। निद्रा का तो अवसर ही नहीं मिलता, एक स्थान पर निश्चिन्त होकर थोड़े समय के लिए बैठना भी असम्भव हो जाता है। सारी रात छटपटाते

हुए काटता हूँ; सोचता हूँ, कब सबेरा होगा। रात्रि में ठाकुर कमरे में न रहकर अब भी पूर्ववत् बरामदे में बैठा करते हैं। माता ठाकुरानी भी रातभर पंखा हाथ में लेकर ठाकुर को हवा करती हैं। ठाकुर दो-तीन बार माता ठाकुरानी को विश्राम करने के लिए कहते हैं; लेकिन माताजी वह बात सुनती नहीं, शान्त भाव से सबेरे तक मच्छर भगाया करती हैं। हवा करके माता ठाकुरानी ठाकुर की सेवा में ही सारी रात काट देती हैं। उधर कुतु मच्छर के काटने से छटपटाती है। बड़ा कष्ट है। ठाकुर के पास एक मच्छरदानी थी, परन्तु उसका वे उपयोग नहीं कर पाए। श्रीवृन्दावन पहुँचने के कुछ दिन बाद ही श्री राखाल बाबू (ब्रह्मानन्द स्वामी) ज्वर से शय्यागत हो गए थे। ठाकुर उन्हें देखने गए थे; देखे, राखाल बाबू अन्धेरे कमरे में पड़े हुए हैं। ठाकुर तुरन्त कुंज में आकर अपनी मच्छरदानी, रस्सी और लोहे के चार कील लेकर राखाल बाबू के कमरे में पहुँचे एवं उनके बिछौने के ऊपर उसे चुपचाप लगा कर चले आए। आज बातों-बातों में कुतु ने ठाकुर से कहा, 'बाबा, श्रीवृन्दावन में तो हिंसा नहीं करनी चाहिए, लेकिन रात्रि में मच्छर भगाते समय जो हिंसा हो जाती है?'

ठाकुर ने कहा— "तो तू मच्छर को मार डालती है? दो-चार दिन मच्छर को काटने दे न। फिर देखना, मच्छर के काटने से कष्ट नहीं होगा।"

कुतु ने कहा— 'आपको मच्छर के काटने से कष्ट नहीं होता?'

ठाकुर ने कहा— "अब और होता नहीं। पहले जब यहाँ आया था, तब खूब हुआ था। एक दिन मच्छर भगाने के लिए हाथ के ऊपर हाथ फेरने गया तो देखा, हाथ मच्छरों से भरा हुआ है! तब फिर क्या करता? भगाने पर तो सैकड़ों मच्छर मर जाएँगे। मैं उस समय हाथ-पैर हिलाए बिना एक ही दशा में रहा। रातभर में मेरा इतना रक्त पी गए कि प्रातः उठने पर मेरा शरीर अशक्त लगने लगा; लेकिन उससे मेरी कोई हानि नहीं हुई, बहुत उपकार ही हुआ। उस समय मुझे प्रतिदिन मलेरिया का ज्वर होता था। मच्छरों ने जिस दिन उस प्रकार काटा, फिर उस दिन से मुझे ज्वर नहीं होता। मच्छरों ने मलेरिया का सारा विष चूस लिया। फिर उस दिन से मच्छरों के काटने से मुझे कष्ट भी नहीं होता। तुम लोग थोड़ा सहन नहीं कर सकते? एक-दो दिन सहन करके देखना तो, कष्ट होता है या नहीं? नहीं तो फिर मच्छर से कह तो सकती है कि मुझे काटना मत। ऐसा कहने से ही हो गया।"

कुतु— हाँ! मच्छरों को कहने से क्या वे सुनेंगे?



ठाकुर— नहीं सुनेंगे? अच्छा देख, मैं कह देता हूँ, देखना सुनते हैं या नहीं? 'मच्छर तुम लोग कुतु को काटना नहीं।' जा, इसके बाद यदि तेरे को मच्छर काटे तो मुझसे कहना।

## साधना में विविध अनुभूति का क्रम

2 अगस्त, शनिवार। भोजन के बाद हरिवंश पाठ करके हम सभी गुरुदेव के पास बैठे हैं। गुरुदेव अपने-आप धीरे-धीरे कहने लगे— "दर्शन का विषय जिस प्रकार क्रमशः थोड़ा-थोड़ा करके धीरे-धीरे स्पष्ट रूप से प्रकाश होता है, श्रवण भी ठीक उसी प्रकार ही हुआ करता है। श्रवण के आरम्भ में एक प्रकार का 'किच् किच्' शब्द कान के भीतर पहले-पहले सुन पाते हैं। वह शब्द होने पर यदि विरक्त होकर उसे अग्राह्य किया जाए, तब तो अनिष्ट हुआ करता है। नाम-जप करते-करते बड़ी निष्ठापूर्वक उस शब्द को सुनना पड़ता है; निष्ठा रहने से ही धीरे-धीरे सब प्रकार के शब्द सुन सकते हैं। फिर अन्यान्य शब्द के जैसा यह शब्द नहीं है, इसमें कुछ विशेषता रहेगी ही। वह आरम्भ से ही पता चल जाता है। निष्ठापूर्वक स्थिर चित्त से वह सब शब्द सुनने से धीरे-धीरे बातें भी सुन सकते हैं। तब बातचीत की जा सकती है, पूछने पर उत्तर मिलता है; किन्तु बातचीत न होने तक पुरा-पुरा विश्वास होता नहीं। विश्वास की दृढ़ता के साथ-साथ बात करने वाले के अंगादि का स्पर्श भी क्रमशः स्पष्ट रूप से हुआ करता है। यह स्पर्श पंचभौतिक स्पर्श नहीं है। यह अन्य प्रकार का स्पर्श है। ये सब जब होते हैं, तभी ठीक समझ सकते हैं; नियमानुसार साधना करते जाने से ये सब अवस्थाएँ सभी की होंगी। इच्छा करने से भी होंगी, नहीं करने से भी होंगी। ठीक समय होने पर ही होंगी।" इस प्रकार और भी कई बातें कहकर ठाकुर चुप हो गए। वे बातें मेरी कुछ भी समझ में नहीं आईं। ठाकुर से मैंने पूछा— ये सब दर्शन, स्पर्शन, श्रवणादि के लिए एवं अनेक प्रकार के अलौकिक ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए क्या अन्य प्रकार की कोई साधना करनी होती है?

ठाकुर इस प्रश्न के उत्तर में 'इस नाम में ही सब है' कहकर कुछ क्षण चुप रहे, फिर अपने-आप ही पुनः कहने लगे— "एकमात्र श्वास-प्रश्वास में नाम-जप का अभ्यस्त होने से ही सब होता है। 'शरीर से मैं पृथक् हूँ' इसका स्पष्ट ज्ञान न होने से वह सब अवस्था होती नहीं। 'शरीर से मैं पृथक् हूँ' समझने के लिए श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना पड़ता है। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना बहुत सहज नहीं है; तीन-चार लाख

नाम का जप करो या तीन-चार करोड़ नाम का जप करो, श्वास-प्रश्वास में लक्ष्य रखकर नाम-जप करने जैसा फल किसी प्रकार भी नहीं होता। इसकी उपयोगिता ही अन्य प्रकार की है। स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास में एक बार ठीक से नाम गुँथ जाने से आत्मदर्शन होता है। 'शरीर से आत्मा पृथक् है' जानकर थोड़ा स्थिर हो सकने से ही उस आत्मा में नाना प्रकार की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। तब वह आत्मा अनेक अलौकिक कार्य सहज में कर सकती है।"

ठाकुर की बात से मेरे बड़े भारी भ्रम का संशोधन हुआ। 21600 (इक्कीस हजार छः सौ) नाम गिनकर प्रतिदिन जप करना भी कुछ क्षण श्वास-प्रश्वास में नाम-जप के प्रयास के तुल्य नहीं है। अतएव भीतर-ही-भीतर लज्जित होकर मैंने फिर अपनी उस संख्या जप की बात नहीं बतलाई।

मैंने पूछा— आत्मा की इस प्रकार क्षमता उत्पन्न हो जाने पर किसी प्रकार के अलौकिक कार्य करने से क्या कुछ अनिष्ट होता है?

ठाकुर ने कहा— "बहुतों को देखा गया है कि उस प्रकार थोड़ा योगेश्वर्य मिलते-मिलते ही उसका प्रयोग करके वे बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट हो गए हैं। उस ऐश्वर्य के द्वारा अनेक प्रकार के सम्पद् वृद्धि, रोगारोग्य एवं इच्छानुसार और भी अनेक अलौकिक कार्य करने की क्षमता हो जाती है, सत्य है; लेकिन धर्म-प्राप्ति के पथ में वह भयंकर विघ्न और प्रलोभन है। उन सब ऐश्वर्य के प्राप्त होते ही शक्ति का प्रयोग नहीं करते। तभी धीरे-धीरे विभिन्न आश्चर्यजनक अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं। और शक्ति प्रयोग करने से थोड़े समय के भीतर ही उसका सर्वनाश हो जाता है; धर्म-कर्म तो चूल्हे में जाता है, वह शक्ति भी नष्ट हो जाती है; परन्तु वह ऐसा प्रलोभन है कि थोड़ा-कुछ मिलते ही शक्ति प्रयोग करने की इच्छा होती है। इस विषय में बहुत सावधान रहना पड़ता है।"

### लाल के सम्बन्ध में ठाकुर का अनुशासन

बातों-बातों में माता ठाकुरानी ने इस समय लाल की बात उठाकर कहा, 'लाल के भीतर बहुत-सी अद्भुत शक्तियाँ देखी है। उन्होंने बहुतों के अतीत जीवन के ऐसे सब गोपनीय विषय उन लोगों को कहा है, जिसे उन लोगों के सिवा संसार में और कोई भी नहीं जानता। बहुतों के भविष्य की बातें भी स्पष्ट कह देते हैं। साधारण बातों में भी लाल की ऐसी एक शक्ति है कि जो उसे सुनता है, मुग्ध हो जाता है। योगजीवन कमरे में बैठकर पढ़ाई-लिखाई करता था और लाल

गण्डारिया के जंगल से एक प्रकार की ध्वनि निकालते; उस ध्वनि की ऐसी आकर्षण शक्ति थी कि योगजीवन उसे सुनकर फिर घर पर रह नहीं पाता था। पढ़ना छोड़कर वह लाल के पास तुरन्त दौड़ पड़ता था। इन सब कारणों से ही योगजीवन परीक्षा पास न कर सका।' माता ठाकुरानी ने लाल के योगैश्वर्य के सम्बन्ध में और भी कई बातें कही। तब इस क्रम में मैंने भी भागलपुर में लाल के योगैश्वर्य प्रकट करने की बात कही। ठाकुर ने सारी बातें ध्यान से सुनकर कहा—  
**“बार-बार लाल को ये सब करने के लिए मना किया, किसी प्रकार से बात सुनता नहीं। इसके बाद धक्का खाकर सीखेगा।”**

मैंने यह बात सुनकर थोड़ा चकित होकर कहा, क्यों? कितने लोगों के जीवन का भार आपने ही तो लाल के ऊपर दिया है; लाल के मुँह से सुना है, उन लोगों का ही कल्याण करने के लिए वह यथासाध्य प्रयत्न करता है।

ठाकुर ने कहा— **“यह क्या? तुम क्या कह रहे हो? स्पष्ट रूप से कहो। लाल ने तुमसे क्या कहा था, ठीक वही कहो।”**

इस प्रकार ठाकुर से उस विषय में कहने का आदेश पाकर मैंने कहा— लाल ने मुझसे पहले भी एक बार कहा था, इस बार भागलपुर में भी कहा, 'गोसाँईजी वृद्ध हो गए हैं। इतने लोगों का बोझा वे अब कितना वहन करेंगे? इसलिए हम तीन लोगों के ऊपर सभी का भार बाँट दिए हैं; कुछ लोगों का तो श्यामाकान्त पण्डित के ऊपर, कुछ का बिहारी नाम के पश्चिम के एक संन्यासी गुरुभाई के ऊपर और कुछ मेरे ऊपर।' मैंने पूछा— मैं किसके भाग में हूँ? लाल ने उत्तर दिया— 'तुम मेरे भाग में हो।' ठाकुर ने सब बातें सुनकर कहा— **“अच्छा, तो इतना बढ़ गया? बहुत अधिक उछल-कूद करने लगा है। महापुरुषों की कृपा से साधारण एक सरसों का बिन्दु पाते ही अभिमान से आसमान पर उड़ने लगा है। शीघ्र ही उस कण को उठा लेने पर वह स्वयं क्या है, अच्छे-से समझेगा। ठहरो, घबराओ मत।**

यह कहकर ठाकुर आसन बैठे-बैठे ही एक बार थोड़ा दायें-बायें हिले, तभी मुझे लगा, 'आज प्रलय होगा, लाल का सर्वनाश हो गया, अब छुटकारा नहीं है।'

## साधना के प्रभाव से देहतत्त्व का ज्ञान

कुछ समय बाद बातों-बातों में ठाकुर से पूछा— देहतत्त्व का ज्ञान प्राप्त न रहने से कहाँ क्या रोग है, क्यों है, यह कैसे पता चलता है? फिर रोग से मुक्त होना किस प्रकार सम्भव है?

ठाकुर ने कहा— **“इस शरीर से आत्मा जो अलग है, इसका अच्छे-से**

ज्ञान होने पर स्थूल शरीर का कहाँ पर क्या है, सभी ठीक-ठीक दिखलाई पड़ेगा। तब शरीर के ऊपर और भीतर सभी जगह के चमड़े, मांस, हड्डी-मज्जा, नस-नाड़ी, शिरा-धमनी जो कुछ है, वह सब स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। तब शरीर के किस स्थान पर किस वस्तु का अभाव है, कहाँ किसकी अधिकता है, वह भी पता चल जाता है; पृथ्वी की किस वस्तु के साथ देह का क्या सम्बन्ध है, वह भी स्पष्ट समझा जा सकता है।”

## गेरुआ क्या है?

सतीश ने बातों-बातों में प्रश्न किया— ‘गेरुआ वस्त्र पहनने की क्या कोई अवस्था है, या धर्मार्थी लोग अपनी इच्छा से ही उसे पहन सकते हैं?’

ठाकुर ने कहा— “गेरुआ पहनने, भस्म लगाने, दण्ड, कमण्डलु और चिमटा आदि धारण करने की पृथक-पृथक विशेष अवस्थाएँ हैं। उस अवस्था की प्राप्ति के अनुसार ही इन सब चिह्नों को धारण करने का अधिकार होता है; अन्यथा विडम्बना है, अपराध होता है। आजकल इन सब विषयों का विचार न रहने से बड़ी हानि हो रही है। तुम लोगों के लिए उन सबका अभी कोई प्रयोजन नहीं है। अवस्था होने पर वह ग्रहण कर पाओगे। शास्त्र में है— भगवती के रजः से गेरुआ हुआ है। गेरुए वस्त्र को भगवत्-वस्त्र कहते हैं। वह भगवान् नारायण का वस्त्र है। देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों, योगी-महापुरुषों के लिए वह बड़े आदर एवं सम्मान की वस्तु है। उसे ग्रहण करके उचित रूप से उसकी मर्यादा की रक्षा न कर पाने से बहुत बड़ा अपराध होता है। गेरुए वस्त्र में किसी का किसी भी प्रकार से एक बिन्दु वीर्यपात होने से सभी देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों, सिद्ध महात्माओं का शाप लगता है; पहले इन सब विषयों पर दृष्टि थी, शासन था, वस्तु की भी ठीक मर्यादा थी। अब विदेशी राजा है, कौन शासन करेगा? तभी तो फेरीवाला भी गेरुआ वस्त्र पहनता है।”

## प्रतिदिन नये तत्त्व का प्रकाशः परतत्त्व

भोजन के बाद हरिवंश पाठ करके कुछ क्षण चुपचाप बैठा रहता हूँ; ठाकुर स्वयं कोई बात उठाते हैं, तभी साहस करके विभिन्न विषयों पर प्रश्न करता हूँ। जिस दिन किसी प्रसंग पर बातचीत होती है, उस दिन माता ठाकुरानी कुंज में

रहती हैं; नहीं तो श्रीधर के साथ कुतु को लेकर दर्शन के लिए चली जाती हैं। ठाकुर जिस दिन बाहर जाते हैं, हम सभी उनके साथ जाया करते हैं; फिर जिस दिन ठाकुर कुंज में रहते हैं, दर्शन के लिए कुंज के अन्य सभी लोगों के जाने पर भी मैं ठाकुर के ही पास बैठा रहता हूँ एवं अवसर मिलने से नाना विषयों पर प्रश्न करता हूँ। संध्या के समय ठाकुर किसी-किसी दिन आसन पर ही बैठे रहते और हम लोगों को विग्रह-दर्शन हेतु जाने के लिए कहा करते हैं; लेकिन स्वयं उस दिन प्रातः से संध्या तक एक बार के लिए भी आसन छोड़कर कहीं जाते नहीं। इसका क्या तात्पर्य है, जानने की इच्छा हुई। ठाकुर से पूछा— आप भी नियमित रूप से दर्शन के लिए क्यों नहीं जाते? थोड़ा चलने-फिरने से शरीर भी स्वस्थ रहता है।

ठाकुर ने कहा— **“श्रीवृन्दावन आने के बाद ही गुरुजी ने मुझसे कहा, ‘कम-से-कम एक वर्ष तक यहाँ तुमको आसन लगाना होगा। आसन पर प्रतिदिन तुम्हारे समक्ष नये-नये तत्त्व प्रकट होंगे।’ तब से प्रतिदिन ही दो-एक नये तत्त्व प्रत्यक्ष हो रहे हैं। जब तक कम-से-कम एक तत्त्व प्रकट नहीं होता, मैं आसन छोड़कर कहीं नहीं जाता। इसीलिए मैं प्रतिदिन दर्शन करने नहीं जा पाता। वह हो जाने पर ही मैं आसन छोड़ता हूँ, दर्शन के लिए भी जाता हूँ।”**

ठाकुर की बात सुनकर मैं बिल्कुल स्तब्ध हो गया। कुछ क्षण चकित होकर सोचने लगा, ‘ठाकुर ने अब यह किस तत्त्व की बात कही? तीव्र वैराग्य का अवलम्बन करके युग-युगान्तर तक लगातार कठोर साधन-भजन में रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा को विलीन कर-करके, प्राचीनकाल के ब्राह्मण लोग जिस एक तत्त्व को आयत्त करने से ऋषि-पद के योग्य हो जाते थे; कुछ घण्टे आसन पर बैठकर, क्षण-क्षण में हँसी-मजाक में समय बिताकर भी इस धर्म-विरोधी घोर कलिकाल में वही तत्त्व ठाकुर प्रत्येक दिन दो-एक सहज में प्राप्त कर रहे हैं। यह कितनी असम्भव बात है! मैं स्थिर न रह सका, ठाकुर से पुनः पूछा— तत्त्व किसे कहते हैं? तत्त्व कुल कितने हैं? किस प्रकार से साधना करने पर ये सब तत्त्व प्राप्त होते हैं। मेरा मुँह खुलते ही ठाकुर मेरा सारा भाव समझ गए, इसलिए मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए कहने लगे— **“स्वयं भगवान् ही तत्त्व हैं। भगवान् के भाव का, कार्य का और लीला का क्या कोई विराम है? तत्त्व अनन्त हैं। फिर इन तत्त्वों को क्या साधनादि द्वारा प्राप्त किया जाता है? लाखों जन्म कठोर साधन-भजन में देह पतन करके भी इनमें से एक तत्त्व को भी कोई जान नहीं पाता। फिर ये सब तो साधन-सापेक्ष नहीं, साधनातीत हैं; एकमात्र भगवान् की कृपा से ही ये सब तत्त्व प्राप्त होते हैं। साधना द्वारा इसे प्राप्त करना असम्भव है। उनकी कृपा से पलभर में ही सब हो सकता है। जीव मुक्त**

होकर एकमात्र भगवान् की कृपा से लीला तत्त्व में प्रवेश कर सकता है।  
यही परतत्त्व है।”

ठाकुर की ये सब बातें सुनकर मैं उसका अभिप्राय समझ गया। फिर कोई बात न करके नाम-जप करने लगा।

### नवीन तिलकः श्रीअद्वैत प्रभु द्वारा संस्कार

3 अगस्त, रविवार। श्रीवृन्दावन में इस बार ठाकुर को नये रूप में देख रहा हूँ। ठाकुर का अभिप्राय क्या है, पता नहीं; उद्देश्य क्या है, वह भी समझ नहीं आता। मुझे उनके कार्य-कलाप के सम्बन्ध में पूछने का अधिकार ही कहाँ है? स्वयं दया करके वे जब हम लोगों के साथ हिल-मिलकर बातचीत करते हैं, तभी सुयोग मिलने पर केवल दो-एक विषय में पूछकर ही सन्देह का समाधान कर लेता हूँ। इतने समय से ठाकुर को जैसा देखा, अब उनका वैसा रूप नहीं है। इस समय वे सहज भाव से मन्दिर जाकर मूर्ति को साष्टांग प्रणाम करते हैं; पाषाण-मूर्ति के सामने रखी खाद्य-सामग्री को प्रसाद मानकर खाते हैं; गले में विभिन्न प्रकार की मालाएँ हैं, फिर द्वादश अंगों में गोपी चन्दन द्वारा तिलक लगाया करते हैं। सीधे शब्दों में कहें तो अब उन्होंने वैष्णवों के समस्त आचरण का आश्रय ले लिया है। इस विषय में सारी बातें पूछने की इच्छा होती है; लेकिन साहस नहीं होता।

जो भी हो, आज भोजन के बाद ठाकुर से पूछा— श्रीवृन्दावन में वास करने से क्या इस प्रकार तिलक लगाना पड़ता है? आपको पहले कभी माला-तिलक धारण करते देखा नहीं। आपने कहा था, हमारा कोई सम्प्रदाय नहीं है, लेकिन तिलक तो वैष्णव लोगों के जैसा ही है। ठाकुर ने कहा— “वह ठीक है। मैं जब श्रीवृन्दावन में आया, तिलक धारण करने का आदेश हुआ। उस समय किस प्रकार तिलक लगाऊँगा, सोचने लगा। किसी सम्प्रदाय-विशेष का चिह्न नहीं लूँगा, यह निश्चय करके एक नये प्रकार का तिलक लगाया। मेरे उस नवीन तिलक को देखकर वैष्णव बाबाजी लोग उग्र आन्दोलन आरम्भ कर दिए। एक दिन गौर शिरोमणि जी ने आकर मुझसे कहा— ‘प्रभु, इस प्रकार का तिलक क्यों किए हैं, समझ नहीं पा रहा हूँ। ऐसा तिलक तो किसी सम्प्रदाय में देखा नहीं! दया करके इस तिलक का तात्पर्य मुझे बताइए।’ मैंने उनसे कहा, ‘हमारा कोई सम्प्रदाय नहीं है; इसलिए मोहम्मद का अर्धचन्द्र, यीशु ख्रीष्ट का क्रॉस एवं महादेव का त्रिशूल लेकर यह एक नये प्रकार का तिलक लगाता हूँ।’ शिरोमणि जी ने कहा— ‘आप सब कर सकते हैं; लेकिन आप जो करेंगे, उसका

अनुकरण हजारों लोग करके एक सम्प्रदाय गठित करेंगे। अतएव शास्त्र की व्यवस्था के अनुसार ही क्यों नहीं करते? नवीन सम्प्रदाय फिर क्यों खड़ा करोगे? हमारा विनयपूर्वक अनुरोध है, आप यह तिलक त्यागकर यथारीति तिलक धारण करें!' मैंने शिरोमणि जी की बात सुनकर कहा— 'इस विषय में जो उचित होगा, शीघ्र ही आपको पता चल जाएगा।' फिर एक दिन श्रीअद्वैत प्रभु ने इस प्रकार तिलक दिखाकर मुझसे कहा— 'तुम इस प्रकार तिलक करो।' अद्वैत प्रभु इसी प्रकार तिलक करते थे। उनके आदेश के अनुसार ही मैं इस प्रकार तिलक करता हूँ।"

### श्रीवृन्दावन में साम्प्रदायिक भाव

मैंने कहा, आप जब श्रीवृन्दावन पहुँचे, माला-तिलक न देखकर बाबाजी लोग गड़बड़ नहीं करते थे? इन लोगों का भाव देखकर लगता है, साम्प्रदायिक कट्टरता इनमें बहुत अधिक है। अन्य वेशधारी साधुओं को ये लोग स्वीकार नहीं करते, उन्हें साधु ही नहीं मानते। कोई माला-तिलक धारण न करे तो उन्हें अपवित्र समझते हैं। मैंने जितने दिनों तक मुण्डन कराकर चोटी नहीं रखी, और जब तक माता ठाकुरानी ने मेरे गले में कण्ठी नहीं पहनाई, उतने दिनों तक वैष्णव-बैरागी लोग मुझे प्रसन्न दृष्टि से नहीं देखते थे; अब मेरे इस मुण्डित मस्तक पर चोटी और गले में कण्ठी देखकर वे लोग कहते हैं, 'अहा, कैसा सुन्दर रूप है, अंग से ज्योति फूट रही है।' फिर मैं अपना रूप एक बार जब आईने में देखता हूँ, तो पलटकर फिर देखने की इच्छा नहीं होती; मुण्डित मस्तक पर चोटी इतनी भद्दी दिखती है।

ठाकुर मेरी बात सुनकर खूब हँसे; फिर कहने लगे— "वेश लिए बिना यहाँ रहना बड़ा कठिन हो जाता है। मेरे इस गेरुए को छुड़वाने के लिए उन लोगों ने कितना प्रयास किया! यहाँ तक कि गौर शिरोमणि जी के द्वारा भी कितना अनुरोध करवाया। एक दिन शिरोमणि जी के साथ भागवत सुनने गया था। सभी बैठकर भागवत सुन रहे हैं, एकजन ने नाली के गंदे पानी में कुछ गोबर घोलकर ऊपर से मेरे सिर पर गिरा दिया। पास में शिरोमणि जी बैठे थे, सारा पानी उनके ऊपर ही गिरा। वे सब समझ गए, फिर मुझसे बोले, 'देख लिया प्रभु, इन लोगों का कर्म? चलिए, अब इस स्थान पर नहीं रहना!' कहकर वे मुझे लेकर चले आए। वैष्णव वेश न देखकर यहाँ बाबाजी लोग ऐसा ही व्यवहार करते हैं।"

यह बात सुनकर सोचा, 'इतने दिन हो गए ठाकुर को यहाँ पर आए हुए; इस बीच न जाने और भी कितने अत्याचार इन लोगों ने उनके ऊपर किया है!'

बातों-बातों में ठाकुर के मुख से कभी-कभी ऐसी बातें अचानक निकल पड़ती हैं, इसी से एकाध घटना का पता चल जाता है, अन्यथा इन सब बातों को जानने का तो कोई उपाय नहीं है। जो भी हो, दामोदर पुजारी और श्रीधर आदि से पूछने पर हो सकता है कुछ-कुछ खबर मिल जाए, यह सोचकर मैंने कुछ समय बाद नीचे आकर उन लोगों से पूछा— ठाकुर जब श्रीवृन्दावन में आए, तब यहाँ के लोगों ने ठाकुर को नीचा दिखाने के लिए क्या किसी प्रकार का प्रयास किया था? उन्होंने मुझसे जो सब बातें कही, सुनकर मैं चकित रह गया। उनमें से केवल एक ही विषय को यहाँ लिखकर रख रहा हूँ, घटना इस प्रकार है—

### दर्शन में विरोध करने वाले प्रभुसन्तान को उत्कट शिक्षा

श्रीवृन्दावन पहुँचकर ठाकुर ब्रजवासी दामोदर पुजारी के कुंज में ठहरे। कुछ दिन बाद उन्होंने कहा— **“कल प्रातः गोविन्दजी का दर्शन करने जाऊँगा।”** ठाकुर के ऐसा कहते ही सभी जगह यह बात फैल गई। श्रीवृन्दावन में बड़ा कोलाहल मच गया! बिजली की गति से यह संवाद प्रभुपाद के दरबार में पहुँचा। सबसे प्रभावशाली सम्मानित वैष्णव नेता एक प्रभुसन्तान उत्तेजित होकर कह उठे, ‘यह क्या? ऐसे ही मन्दिर में जाएगा? आकर हम लोगों का दर्शन किया नहीं, अनुमति ली नहीं। उसको तो जानते हैं। इतने सहज में ही वह मन्दिर जाएगा? अच्छा, देखा जाएगा।’ यह कहकर उन्होंने तीन-चार प्रभुसन्तानों के साथ समस्त वैष्णव समाज को बुलवाकर एक बहुत बड़ी सभा का आयोजन किया। प्रभुपाद ने विरक्ति होते हुए सबसे कहा, ‘अद्वैत परिवार के कुल में कलंक लगाने वाला जाति-नाशक म्लेच्छाचारी एक गोसाँई इस समय श्रीवृन्दावन में आया है। सनातन धर्म-विरोधी ब्राह्मधर्म का प्रचार करके हजारों लोगों को उसने धर्मभ्रष्ट किया है। दीर्घकाल अनाचार में बिताकर अब गेरुआ पहनकर संन्यासी के वेश में वह वृन्दावन में उपस्थित है। हमसे भेंट किए बिना ही अनुमति की उपेक्षा करके वह कल गोविन्दजी के दर्शन हेतु मन्दिर जाने का साहस कर रहा है। अब उसको मन्दिर में प्रवेश करने देना है या नहीं?’ प्रभुपाद का प्रश्न सुनकर वैष्णव बाबाजी लोग तुरन्त चीत्कार उठे और सभी ने उत्तेजित होकर कहा, ‘यह कभी नहीं होगा। हम रोकेंगे।’ इस निर्णय से सन्तुष्ट न होकर प्रभुपाद ने कहा, ‘केवल रोकना नहीं; मन्दिर में घुसने से द्वार पर ही उसको विशेष रूप से अपमानित करके भगा देना।’ गोविन्दजी के पुजारी को भी यह आदेश दिया गया। दो-चार अत्यन्त उदासीन वैष्णवों के अतिरिक्त सभी इस कार्य में खूब उत्साह प्रकटकर अपने-अपने कुंज में चले गए।



रात्रि भोजन के बाद प्रभुसन्तान गहरी नींद में थे, अचानक उत्पात हुआ। उन्होंने स्वप्न देखा— एक भयानक जंगली वाराह ने गर्जन करते-करते दौड़ते हुए आकर प्रभुसन्तान पर तीव्र गति से आक्रमण किया। धक्के खा-खाकर प्रभुपाद की नींद टूट गई; हाय-हाय करते हुए वे जाग उठे। फिर कुछ क्षण बैठकर हाथ-मुँह रगड़कर पुनः शयन किए एवं नींद लग गई। कुछ क्षण के भीतर पुनः वही जंगली सूअर ने भयंकर गर्जन करते हुए प्रभुजी के ऊपर टूट पड़ा एवं धक्के मार-मारकर उनको बेचैन कर डाला। प्रभु तब 'हाय-हाय' करके चित्कारते हुए जाग उठे। कुछ क्षण विचलित अवस्था में रहकर फिर सो गए। इस बार फिर वैसी नींद नहीं रही। थोड़ी झपकी आते ही प्रभुपाद ने देखा— स्वयं बलदेवजी वाराह मूर्ति धारण करके भयानक गर्जन से चारों दिशा को कम्पित करते हुए भयंकर दौँट दिखाकर अत्यन्त तीव्र गति से उनको लक्ष्य करके अग्रसर हो रहे हैं। क्षणभर में वे प्रभुजी के ऊपर टूट पड़े; बार-बार घसीटते और कुचलते हुए प्रभुपाद के सर्वांग को दबाकर, मुख के अग्रभाग से छाती को मसलकर कहने लगे— 'तेरा इतना साहस! गोसाँई को मन्दिर जाने से रोकेगा? जानता नहीं वे कौन हैं? उनको सामान्य समझता है? आज तेरे को खतम करूँगा।' प्रभुजी की तन्द्रा दूर हो गई; काँपते हुए चैतन्य अवस्था में वे वाराहदेव का बारम्बार गर्जन सुनने लगे। कड़े दबाव से उनकी श्वास रुद्ध होने लगी, करवट बदलने का भी सामर्थ्य नहीं रहा। फिर वे चीत्कारते हुए उठ गए एवं धीरे-धीरे श्वास लेकर क्रमशः स्वस्थ हुए। तब उन्होंने सोचा, 'अब क्या करूँ? इस अपराध से कैसे बचूँ?' श्रीवृन्दावन में श्री गौर शिरोमणि जी को सभी सिद्ध महापुरुष मानकर उन पर विश्वास करते हैं। प्रभुसन्तान तुरन्त रात्रि में ही उनके पास जा पहुँचे; उनसे बिना कुछ छिपाए समस्त विवरण विस्तार से कहकर शरीर के विभिन्न स्थानों पर वाराह के प्रहार का चिह्न दिखलाते हुए उन्होंने कहा, 'अब हमारा क्या कर्त्तव्य है? कृपा करके कहिए।' शिरोमणि जी ने कहा, 'प्रभु, आपने भयंकर दुःसाहस किया था। इस प्रकार का संकल्प करना बड़ा अपराध है। प्रातः होते ही आप जाकर गोस्वामी प्रभु से क्षमा माँगिए एवं सम्मान के साथ आदरपूर्वक उन्हें गोविन्दजी के मन्दिर में ले जाएँ!' अगले दिन प्रातःकाल प्रभुसन्तान ने वही किया। श्रीगोविन्दजी का दर्शन करके ठाकुर भावावेश में अचेत हो गए; तब ठाकुर की वह अवस्था देखकर विद्रोही लोग बहुत लज्जित होकर पश्चात्ताप करने लगे। फिर सभी लोग बड़े आनन्द के साथ ठाकुर को लेकर हमारे कुंज में आए। ऐसा लगता है, इस प्रकार कोई असाधारण घटना न होने से इतने कम समय में इस स्थान पर ठाकुर का इस प्रकार गौरव और ऐसी प्रतिष्ठा असम्भव थी।

## साधक का सुरापान क्या है?

आज ठाकुर अपराह्न के समय आसन से उठे नहीं। ठाकुर के पास बैठकर हम लोग विभिन्न विषयों पर प्रश्न करने लगे। मैंने पूछा— हम लोगों के लिए तो नशा करना बिल्कुल ही निषिद्ध किया गया है, परन्तु साधु-संन्यासी लोग तो खूब नशा करते हैं। शास्त्र में क्या मादक पदार्थ का सेवन निषिद्ध है?

ठाकुर ने कहा— “मादक पदार्थ का सेवन सम्पूर्ण रूप से निषिद्ध है; शास्त्र में धर्मार्थियों के लिए मादक पदार्थ के सेवन की व्यवस्था कहीं नहीं है। जो लोग सदा पहाड़ों में घूमा करते हैं, उन स्थानों पर ही रहकर साधनादि करते हैं, उन्हें बहुत शारीरिक कष्ट सहना पड़ता है। विभिन्न स्थानों पर सर्दी-गर्मी आदि में शरीर को ठीक रखने हेतु उनके लिए मादक पदार्थ का सेवन आवश्यक होता है; परन्तु वह केवल शरीर की रक्षा के लिए ही है, उससे साधना में कोई सहायता नहीं मिलती; वरन् बहुत अनिष्ट ही होता है, चित्त विचलित होता है। योग-शास्त्र एवं आयुर्वेद में मादक पदार्थ के प्रयोग को बहुत बड़ा दोष बतलाया गया है। केवल शरीर रक्षा के लिए औषधि के रूप में लोग उसका सेवन करेंगे, औषधि का प्रयोजन पूर्ण होते ही फिर छोड़ देंगे— यही व्यवस्था है।”

मैंने कहा— क्यों? देखते तो हैं, तान्त्रिक साधक खूब शराब पिया करते हैं। शराब न पीने से मानो साधना ही नहीं होती है। वीराचारी लोग तो बहुत शराब पीते हैं, मांस खाते हैं, ये तो सभी जानते हैं।

ठाकुर ने कहा— “शराब पीकर साधना करने की व्यवस्था वीराचारियों के लिए भी नहीं है। फिर भी स्वयं की परीक्षा करने के लिए वीर लोग उसका उपयोग कर सकते हैं, इतनी ही बात है। तन्त्र में जिस अवस्था को ‘वीर’ कहते हैं, वह तो बहुत सहज नहीं है।”

मैंने पूछा— किस अवस्था में तान्त्रिक साधक ‘वीर’ होते हैं?

ठाकुर ने कहा— “वीर सहज में नहीं होते; समस्त पशुभाव विनष्ट होने से ही वीर होते हैं। काम-क्रोधादि समस्त रिपु जब बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं, तभी वीराचारी हो सकते हैं।”

मैंने कहा— शास्त्र में सुरापान की व्यवस्था नहीं है, आपने कहा; परन्तु तान्त्रिक लोग तो सुरापान का माहात्म्य दिखाकर कहते हैं— ‘पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा जावत्पतति भूतले। उत्थाय च पुनः पीत्वा, पुनर्जन्म न विद्यते ॥’

ठाकुर ने कहा— “जिस सुरापान की यह व्यवस्था है, वह बाहर की सुरा नहीं है। ये सब मादक नहीं हैं। लोग इस बात को समझे बिना

गड़बड़ करते हैं। भक्ति के द्वारा इस देह से ही एक प्रकार की सुरा उत्पन्न होती है; उसे पीने से भयंकर नशा होता है। उसे अमृत कहते हैं; उसे पीने से फिर जन्म नहीं होता।”

मैंने कहा— भक्ति से देह के भीतर किस प्रकार सुरा उत्पन्न होती है? उसको पीएँगे भी कैसे?

ठाकुर ने कहा— “देखो, जब हम लोगों को क्रोध आता है, तब मस्तिष्क के किसी एक विशेष स्थान पर एक प्रकार के प्रभाव से उस स्थान के रक्त में कुछ अन्य प्रकार का परिवर्तन होता है। वह रक्त तब गरम होकर अस्वाभाविक रूप से पूरे शरीर में फैल जाता है। काम से भी वैसा ही होता है। इस प्रकार सत्-असत् सभी भाव का मस्तिष्क के विशेष-विशेष स्थान पर एक-एक प्रकार की अनुभूति से रक्तादि में परिवर्तन होता है। वही शिरा-धमनी से होकर शरीर में सर्वत्र फैल जाता है। भाव, भक्ति, आनन्द से भी रक्त में इस प्रकार का परिवर्तन होता है! भक्ति से मस्तिष्क के रक्त की जो अवस्था होती है, बहुत अधिक होने से वह क्रमशः भाव के द्वारा गरम होकर एक प्रकार का रस बन जाता है। वह रस धीरे-धीरे तालू से चूकर जीभ पर गिरता है, वही रस अमृत है। उसकी दो-तीन बूँद ही पीने से इतना नशा होता है कि पाँच-सात दिन सहज में बिता दिया जाता है, भोजन की भी आवश्यकता नहीं होती। उसको ही सुरा कहा गया है; वही पीने की व्यवस्था है। उस सुरा की मादकता इतनी अधिक होती है कि जिन्होंने नहीं पिया है, बताने से वे किसी प्रकार भी समझ नहीं पाएँगे। उसको पीते ही मनुष्य अचेत हो जाता है— शरीर बिल्कुल अचल हो जाता है; लेकिन भीतर का ज्ञान कम नहीं होता, जैसा है, वैसा ही रहता है; केवल बाह्यज्ञान नहीं रहता।”

मैंने कहा— जिस अमृत की बात आपने कही है, वह पीने में कैसा लगता है? वह रक्त के किसी एक प्रकार के परिवर्तन से उसका ही टपका हुआ रस है, तब उसे पीने से क्या कोई अनिष्ट नहीं होता?

ठाकुर ने कहा— “प्रत्येक बार उसका स्वाद भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। भक्ति के सब भावों के साथ उसका योग है। जिस भाव से भक्ति होती है, स्वाद भी उसी प्रकार का हुआ करता है— कभी नमकीन, कभी मीठा, तो कभी खट्टा-मीठा, फिर कभी तीखा; इस प्रकार विभिन्न स्वाद मिलता है। भक्ति का जिस समय जैसा भाव, उस समय वैसा स्वाद। मैंने तो देखा है, उसको पीने से कोई अनिष्ट नहीं होता; वरन् शरीर और भी स्वस्थ रहता है। उसको पीने से लम्बे समय तक भोजन

न करने पर भी किसी प्रकार की दुर्बलता नहीं लगती; शरीर खूब बलिष्ठ और स्वस्थ हो जाता है। उससे शरीर का बहुत कल्याण होने के कारण ही शास्त्र में उसे 'अमृत' कहा है। वह वास्तव में अमृत है।"

मैंने कहा— जिस भक्ति से वह अमृत उत्पन्न होता है, वह भक्ति कैसे प्राप्त होती है? हम लोग वह अमृत प्राप्त कर नहीं सकते?

ठाकुर ने कहा— "इस अमृत को प्राप्त करने के लिए श्वास-प्रश्वास में खूब नाम-जप करो। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप कर पाने से ही देखना धीरे-धीरे सभी प्राप्त होगा। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना ही सबसे श्रेष्ठ उपाय है।"

## नाम-जप से ठाकुर की शुष्कता और ज्वाला परमहंसजी की सान्त्वना

ठाकुर की बात सुनकर कहा— चेष्टा तो कम नहीं करता; लेकिन श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना असम्भव लगता है। नाम-जप करने से यदि आनन्द मिले, तब तो श्वास-प्रश्वास में प्रयास किया जा सकता है। नाम-जप जितने दिन शुष्क लकड़ी के समान नीरस रहता है, तब तक चेष्टा करने का धैर्य रहेगा कैसे? नाम-जप करने से क्या उपकार हो रहा है, वह भी तो समझ नहीं आता।

ठाकुर कहने लगे— "उपकार क्या हो रहा है, वह अभी नहीं समझोगे। केवल नाम-जप करते जाओ। धीरे-धीरे सब समझोगे। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना बहुत ही कठिन है, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु इस कारण छोड़ मत देना। पहले-पहले नाम बहुत ही नीरस लगता है। मुझे जब गुरुदेव ने श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करने के लिए कहा, कुछ दिन प्रयास करने के बाद ही मुझे बहुत विरक्ति होने लगी। क्योंकि कुछ समझे बिना नीरस नाम का जप फिर कितने समय तक किया जाएगा? कई बार नाम-जप करते-करते इतना नीरस लगता था कि व्यर्थ ही जप कर रहा हूँ सोचकर छोड़ देने की इच्छा होती थी। तब एक दिन परमहंसजी ने दर्शन दिया; मैंने कहा— व्यर्थ में इस प्रकार नाम-जप अब नहीं कर सकता। नीरस नाम जपने से अब क्या होगा? कुछ भी तो समझ नहीं रहा हूँ। तब उन्होंने थोड़ा हँसते हुए मुझसे कहा— 'केवल मेरा अनुरोध समझकर नाम-जप करते जाओ। नीरस लगता है लगने दो, उससे क्या होता है? विरक्ति लगने पर भी उससे कोई हानि नहीं है। नाम-जप करते रहो, धीरे-धीरे सब अनुभव होगा।'

मैंने परमहंसजी की बात के अनुसार फिर नाम-जप करना आरम्भ किया। गया के आकाशगंगा में, बराबर पहाड़ में और विन्ध्याचल में खूब नाम-जप करके छः मास बिताया, तब थोड़ा-थोड़ा अनुभव होने लगा। वहाँ मेरी विभिन्न प्रकार की अवस्था होने लगी। तब सो रहा हूँ या जाग रहा हूँ, इस विषय में भी समय-समय पर संशय होता था, तब संशय दूर करने के लिए कभी शरीर में काँटा चुभाकर देखा; कितना कुछ किया! फिर जब दरभंगा आया, गुरुदेव ने एक दिन दर्शन दिया। उनको मैंने अपनी सभी अवस्था खुलकर बतलाई; तब उन्होंने मुझसे इतना ही कहा— 'हठयोग प्रदीपिका' एवं 'विचारसागर' ये दो ग्रन्थ लेकर एक बार पढ़ो। मैंने पूछा— कहाँ मिलेंगे? उन्होंने एक दुकान का उल्लेख करके कहा— 'दरभंगा में केवल उस दुकान में ये ग्रन्थ हैं, पाँच रुपये लेगा। जाओ, ले आओ।' गुरुजी के कथनानुसार उस दुकान में जाकर देखा— केवल वही दो पुस्तकें ही उस दुकान में हैं। मूल्य भी पाँच रुपये लिया। मैंने दोनों पुस्तकें पढ़ी। देखा उन दोनों ग्रन्थ में जितनी अवस्थाओं की बातें लिखी हुई हैं, वे सभी मुझे प्राप्त हो गई हैं। वे सब अवस्थाएँ जब मुझे प्राप्त हुईं, सोचा था, मेरी बुद्धि नष्ट हो गई है। ग्रन्थ पूरा पढ़ते ही गुरुदेव ने फिर दर्शन दिया। तब उनसे कहा— ये दोनों पुस्तक पढ़ने के लिए आपने मुझे पहले क्यों नहीं कहा; फिर इतना काण्ड नहीं करता। गुरुजी ने कहा— 'नहीं, पहले देने से ठीक नहीं होता। तुम बड़े कष्टर लड़के हो, वह तो मैं जानता ही हूँ। दोनों ग्रन्थ पहले पढ़ा लेने से तुम सोचते— उसको पढ़ने के संस्कार से तुम्हारा माथा गड़बड़ हो गया है। इन सब अवस्थाओं पर तुम्हें यथार्थ विश्वास नहीं होता। अभी तुम अपनी अवस्था स्वयं अनुभव कर रहे हो। हजारों वर्ष पहले ऋषि-मुनि जो सब शास्त्र लिख गए हैं, उससे उन अवस्थाओं की पुष्टि होती है; अब मैं भी कहता हूँ, साधना द्वारा तुम्हें जो सब अवस्थाएँ प्राप्त हुई हैं, सभी सत्य है। फिर उस विषय में तुम्हें अब कोई संशय नहीं होगा।' अवस्था प्राप्त करके ही उसकी सत्यता के प्रमाण के लिए शास्त्र देखना ठीक है। उससे शास्त्र में भी ठीक विश्वास होता है।' इतना कहकर ठाकुर थोड़ा रुक गए; फिर पुनः कहने लगे— "अनेक लोग मुझसे विभिन्न विषयों पर प्रश्न करते हैं; लेकिन उसका उत्तर देने में मुझे अच्छा नहीं लगता। एकमात्र श्वास-प्रश्वास में नाम-जप कर पाने से धीरे-धीरे सब अवस्थाएँ प्रकट होती रहेंगी। तब उसके प्रमाण के लिए शास्त्र देख लेना चाहिए। शास्त्र ही यथार्थ अवस्था का प्रमाण देगा। जो कुछ प्रत्यक्ष करोगे,

ठोक-बजाकर देख लेना। तुम लोग तो थोड़ा-कुछ प्रत्यक्ष होने से ही विश्वास कर लेते हो; परन्तु मेरे साथ वैसा नहीं है। मैं जब तक समस्त इन्द्रियों द्वारा अच्छे-से ठोक-बजाकर समझ नहीं लेता कि सत्य है, तब तक उसे सत्य मानकर ग्रहण नहीं करता। वास्तव में, सब इन्द्रियों द्वारा ठोक-बजाकर जिसको सत्य मानते हैं, उसी पर विश्वास किया जाता है। किसी विषय को केवल देखकर, सुनकर अथवा स्पर्श करके तुरन्त सत्य मानकर ग्रहण नहीं करना; समस्त ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय द्वारा ठीक से ठोक-बजाकर सत्य को समझ लेने के बाद पुनः शास्त्र देखो। उसमें यदि प्रमाण मिले, तभी निःशंक हो सकोगे; अन्यथा सच नहीं होता।”

मैंने कहा— सुना है, सभी देवी-देवता, विशेषतः ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि पंच-देवताओं को सन्तुष्ट किए बिना मुक्ति नहीं मिलती; तो क्या उन सब लोगों की पूजा करनी होगी?

ठाकुर ने कहा— “सभी का बहुत सम्मान करना; अनादर, अमर्यादा किसी की भी नहीं करना। उनकी पूजा न करने से भी चलेगा। पूजा द्वारा केवल उनका ही लोक प्राप्त होता है, मुक्ति नहीं होती।”

मैंने फिर कहा, पूजा द्वारा उनको सन्तुष्ट न किया जाए, तो रास्ते में वे लोग किसी प्रकार का विघ्न तो उत्पन्न नहीं करेंगे?

ठाकुर ने कहा— “एकमात्र भगवान् की पूजा से ही सब होता है। जैसे वृक्ष की जड़ में पानी देने से शाखा-प्रशाखा, फूल-पत्ते सभी में वह पानी जाता है, उसी प्रकार एकमात्र भगवान् की पूजा करने से सभी को उससे सन्तोष होता है, आनन्द होता है।”

## हरिमोहन और मेरे वृन्दावन छोड़ने के सम्बन्ध में ठाकुर का कथन

4-5 अगस्त, सोमवार-मंगलवार। कुछ दिनों से मेरे सिर-दर्द का रोग बढ़ गया। ब्रह्मचर्य ग्रहण करने के बाद रात्रि का भोजन छोड़ दिया था। लगता है, उसी से इस रोग की पुनः उत्पत्ति हुई है। ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमानुसार गुरु के प्रसाद के सिवा अन्य कुछ भी दूसरी बार ग्रहण नहीं करते। लगता है, इसी कारण आजकल कुछ दिनों से ठाकुर प्रतिदिन मुझे रात्रि में दूध-रोटी का प्रसाद देते हैं। ठाकुर के आहार की मात्रा निर्दिष्ट है; मुझे प्रसाद देना है, इसके लिए वे परिमाण से अधिक कभी ग्रहण नहीं करते, अपने आहार के ही अंश से दिया करते हैं। कदाचित् ऐसी ही व्यवस्था है। अपने इस रोग के सम्बन्ध में ठाकुर को कुछ भी पता चलने नहीं दिया, क्योंकि उनको पता चलने से हो सकता है वे मुझे बड़े भैया

के पास जाने के लिए कहें।

ठाकुर की अनुमति पाकर श्री योगजीवन नौकरी की प्रत्याशा से भागलपुर गए हैं। श्री मथुर बाबू ने उन्हें भरोसा देकर चिट्ठी लिखी थी। स्वामीजी (हरिमोहन) भागलपुर में बहुत दिन थे। वे भी अब शीघ्र ही वहाँ जाने के लिए व्यग्र हो रहे हैं। सतीश को भी ठाकुर बार-बार मातृ-सेवा के लिए गाँव जाने को कहते हैं, लेकिन सतीश किसी प्रकार से ठाकुर का संग छोड़कर न जाने की जिद कर रहे हैं। ठाकुर के साथ परम आनन्द से दिन बिता रहा हूँ, परन्तु मस्तिष्क पीड़ा की तीव्रता से बीच-बीच में बहुत अवसन्न हो जाता हूँ।

आज नित्यकर्म समाप्त करके ठाकुर के पास जाकर बैठते ही ठाकुर ने मेरी ओर देखकर कहा— “देख रहा हूँ, तुम्हारा शरीर बहुत दुर्बल हो गया है; आधा सेर दूध तुम्हें पीना ही होगा। नहीं तो खूब अस्वस्थ हो जाओगे। फिर रात में नियमानुसार रोटी खाओ। ब्रह्मचर्य के सभी नियम ठीक-ठीक मानकर चलना पहले-पहल सहज नहीं है; धीरे-धीरे अभ्यास करना पड़ता है। शरीर के लिए जो आवश्यक है, वह नहीं करने से कैसे होगा? शरीर ठीक नहीं रहने से कुछ भी नहीं कर पाओगे। मस्तिष्क का रोग बड़ा खराब है। मस्तिष्क से ही सब काज-कर्म होते हैं। वह खराब होने से जीवन ही व्यर्थ हो जाता है। वरन् तुम कुछ समय के लिए अपने भैया के पास जा सकते हो। फैजाबाद बहुत अच्छा स्थान है। मस्तिष्क की अस्वस्थता भी दूर होगी, फिर साधना में भी कोई हानि नहीं होगी। भैया के संग से तुम्हारा उपकार ही होगा। शरीर थोड़ा स्वस्थ होने पर फिर चले आना।”

ठाकुर की बात सुनकर समझ गया, शीघ्र ही मुझे फैजाबाद जाना होगा। स्वामीजी (हरिमोहन) कुछ स्वस्थ होकर मथुरा से यहाँ आ गए हैं। रोग की यन्त्रणा से अत्यन्त दुःखी होकर उन्होंने मुझसे कहा— ‘भाई, भागलपुर में अच्छा था, क्यों मेरी ऐसी दुर्मति हुई, यहाँ आ गया? देह का यह क्लेश तो अब सहन नहीं होता। किसी प्रकार से थोड़ा स्वस्थ और सबल होने पर मैं पुनः भागलपुर जाऊँगा। धर्म-कर्म तो सभी जगह हो सकता है, आत्मीयजनों के पास रहना सुरक्षित भी है।’ बातों-बातों में आज स्वामीजी का अनुतापपूर्ण कथन मैंने ठाकुर से कहा। सुनकर ठाकुर कहने लगे— “तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुए बिना कर्म समाप्त नहीं होता। बलपूर्वक क्या कभी कर्म क्षय किया जाता है? हरिमोहन को मैंने बार-बार पहले ये सब कर्म समाप्त कर लेने के लिए कहा था। अब देखो, संन्यास लेकर उन्होंने पछतावा तक कर लिया है। इस अनुताप से उसका सब कुछ तो नष्ट हो गया। अब नियम के अनुसार कर्म समाप्त किए बिना

हरिमोहन किसी प्रकार से स्थिर नहीं हो पाएँगे। कुछ भी नहीं होगा।”

स्वामीजी ने भी ठाकुर की ये सब बातें सुनकर शीघ्र ही यह स्थान छोड़ने का निश्चय कर लिया।

## वैराग्य, वासना और वैध कर्म

मैंने ठाकुर से पूछा— कर्म समाप्त न करने से लोगों की मुक्ति नहीं होती आपने कहा है; लेकिन ऐसा क्या कोई उपाय नहीं है, जिसका अवलम्बन करने से मनुष्य कर्म क्षय करके मुक्त हो सके?

ठाकुर ने कहा— “हाँ, है क्यों नहीं? तीव्र वैराग्य द्वारा भी मुक्त हो सकते हैं; लेकिन वैसा वैराग्य है कहाँ? जब मन को विषय से हटाकर सम्पूर्ण रूप से भीतर की ओर आकर्षित कर सको और प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में नाम-जप कर सको, तभी आशा की जा सकती है। एक भी श्वास अथवा प्रश्वास व्यर्थ होने से यह नहीं होगा; क्योंकि उस छिद्र को पाते ही कितने शत्रु भीतर प्रवेश कर सकते हैं! इस निष्काम मुक्ति के पथ में कितने मनुष्य, गन्धर्व, देवतादि नाना प्रकार से विघ्न उत्पन्न करते हैं; इस पथ में सभी कठोर परीक्षा लेते हैं। वासनाहीन होकर तीव्र साधना किए बिना इस पथ पर चलना सम्भव नहीं है। इसीलिए वैध कर्म की व्यवस्था है। वैध कर्म द्वारा भोग समाप्त कर लेना ही सहज होता है।”

मैंने कहा— जिस कर्म को समाप्त करने की बात आपने कही है, वह कर्म किस प्रकार का है? नौकरी करके संसार-गृहस्थी चलाना ही क्या कर्म है?

ठाकुर ने कहा— “कर्म का अर्थ गृहस्थ होना या नौकरी करना नहीं है। जिसकी जिस विषय में आसक्ति है, उसका कर्म उसी को लेकर है।”

मैंने पूछा— वैध भोग की बात जो कही है, वह किस प्रकार का है? शास्त्र के अनुसार भोग करने से ही तो वह वैध भोग है?

ठाकुर ने कहा— “वैध भोग क्या है, उसे समझना बड़ा कठिन है। शास्त्र के अनुसार भोग तो ठीक है; लेकिन शास्त्र में भोग काटने के लिए प्रकृति की भिन्नता के अनुसार भिन्न-भिन्न कर्म की व्यवस्था है। जिसकी जैसी प्रकृति है, उसके लिए उसी प्रकार के कर्म की व्यवस्था है। इस प्रकार व्यवस्था के अनुसार कर्म का भोग ही वैध भोग है। शास्त्र देखकर प्रकृति के अनुरूप व्यवस्था ठीक कर लेना बहुत कठिन काम है। नियम से प्रकृति के अनुरूप कर्म करने से धीरे-धीरे भोग कट जाता है।”

मैं— शास्त्रोक्त लक्षण द्वारा क्या प्रकृति को पहचाना नहीं जा सकता?



ठाकुर— प्रकृति को जानना क्या इतना सहज है? शास्त्र पढ़कर अथवा अन्य किसी चेष्टा द्वारा उसका कुछ पता नहीं चलता।

मैं— तो फिर अन्दाज से किस प्रकार कर्म करूँगा?

ठाकुर— अपनी प्रकृति स्वयं कभी कोई समझ नहीं पाता। इसीलिए सद्गुरु का आश्रय लेना होता है; सद्गुरु जिसकी जैसी प्रकृति स्पष्ट प्रत्यक्ष करते हैं, उस प्रकृति के अनुसार कर्म की व्यवस्था कर देते हैं। बिना विचार किए उनके आदेशानुसार कर्म करते जाने से सहज में कर्म समाप्त हो जाता है। इसके सिवा कोई उपाय नहीं है।

मैं— अभी तक मेरा मानना था कि नौकरी करना, गृहस्थ होना ही कर्म है।

ठाकुर ने कहा— “वासना में ही कर्म है; वासना की निवृत्ति ही कर्म का उद्देश्य है। वैध भोग द्वारा ही वासना समाप्त करनी पड़ती है। जिसकी जिस ओर वासना है, उसका कर्म भी उसी ओर है। केवल गृहस्थी करना अथवा नौकरी करना कर्म नहीं है।”

मैंने पूछा— धर्म-प्राप्ति के लिए घर-बार, माता-पिता को छोड़कर जो लोग आते हैं, वह धर्म-प्राप्ति भी तो उसकी वासना है। अतएव वही तो उसका कर्म है।

ठाकुर ने कहा— “वह तो है ही, फिर भी यदि केवल धर्म की ओर वासना रहे, तब तो वह निर्विघ्न उसको कर सकेगा। और यदि अन्य ओर भी वासना रहती है, तो स्थिर होकर धर्मानुष्ठान नहीं कर सकेगा। जिस परिमाण में अन्य ओर वासना रहेगी, उसी परिमाण में उसको उद्विग्न होना होगा और भुगतना होगा। इसीलिए अन्य वासना को समाप्त करके आना पड़ता है।”

मैं— कर्म जिससे समाप्त हो जाए, सद्गुरु तो वही करने के लिए कहते हैं; किन्तु उस प्रकार करने से कर्म समाप्त हुआ या नहीं कैसे समझूँगा?

ठाकुर ने कहा— “जब देखोगे किसी ओर भी कोई वासना नहीं है, विषय के सम्पर्क से भी सब इन्द्रियाँ सम्पूर्ण अनासक्त हैं, निवृत्त हैं, तभी समझना ये सब कर्म समाप्त हो गए हैं।”

## गोसाँईजी प्रदत्त उपवीत की शक्ति

आज मध्याह्न में सतीश ने मुझे एकान्त में ले जाकर कहा— ‘भाई, बतलाओ तो क्या करूँ? मेरी दुर्दशा दिनो-दिन बढ़ती ही जा रही है। प्रायः गोसाँईजी मुझे घर जाकर माँ की सेवा करने के लिए कहते हैं— मेरी तो बिल्कुल ही वैसी इच्छा

नहीं होती। कर्म में यदि मातृ-सेवा है, तो क्या गोसाँईजी उसको काट नहीं सकते?’ मैंने कहा— थोड़ा भोगे बिना सहज में ये कर्म काटा जा सकता तो फिर क्या वे काट नहीं देते? ठाकुर ने जो कहा है, बिना विचार किए वैसा करना तो अच्छा है। सतीश ने कहा— ‘भाई, वह तो नहीं कर पाऊँगा। वैसी बात फिर मत कहना। गोसाँईजी इच्छा करने से सब कुछ कर सकते हैं। केवल व्यर्थ में हम लोग को भुगताकर मार रहे हैं। मैं उनकी अद्भुत शक्ति देखकर चकित हो गया। जानते तो हो मैं कट्टर ब्रह्मसमाजी था। सहज में कुछ भी विश्वास नहीं करता था; लेकिन गोसाँईजी की अद्भुत शक्ति देखकर तो अविश्वास करने का कोई उपाय नहीं है। कुछ दिन पहले की एक घटना सुनो, समझ जाओगे।’ उसके बाद सतीश मुझसे इस प्रकार कहने लगे— ‘भाई, जनेऊ त्यागकर ब्राह्मधर्म में दीक्षा ली थी। वह पूरी घटना तो जानते ही हो। कुछ दिन पहले पिता की मृत्यु हो गई। माँ ने मुझे घर आने के लिए संवाद भेजा; लेकिन पिता की मृत्यु का संवाद सुनते ही न जाने मुझे क्या हो गया। सब छोड़-छाड़कर तुरन्त पैदल श्रीवृन्दावन के लिए निकल पड़ा। रास्ते में कितनी अवस्थाओं में पड़ा, कितना दुःख भुगतना पड़ा, कह नहीं सकता। बहुत कष्ट के बाद श्रीवृन्दावन आया। तब प्रतिदिन गोसाँईजी के साथ मेरा झगड़ा होता था। यहाँ आते ही गोसाँईजी ने मुझसे कहा— **‘तुम्हारे पिता की प्रेतात्मा सब समय तुम्हारे ऊपर रहती है, जाकर शास्त्र के अनुसार श्राद्धादि करो। उससे उनका बड़ा कल्याण होगा, तुम्हारा भी उपकार होगा।’** मैंने गोसाँईजी से कहा— जनेऊ त्यागकर मैं ब्राह्म हुआ था। शास्त्र के अनुसार श्राद्ध कैसे करूँगा? गोसाँईजी ने कहा— **‘जनेऊ पुनः ग्रहण करो, तब फिर हो जाएगा।’** मैंने कहा— यदि ग्रहण ही करना होता, तो फिर त्याग क्यों किया था? जनेऊ का यदि वैसा कोई गुण रहता, तो क्या उसका त्याग करता— अथवा त्याग कर पाता? गोसाँईजी ने मेरी यह बात सुनकर बड़े तेज स्वर में कहा— **‘अच्छा, जनेऊ का गुण नहीं है! उस प्रकार से जनेऊ मिला नहीं है, तभी तो; उस प्रकार से ब्राह्मण जनेऊ देता तो सामर्थ्य था जो तुम त्याग करते? जनेऊ का गुण देखोगे? अच्छा मैं जनेऊ देता हूँ, तुम त्याग करो तो।’** यह कहकर कुछ क्षण बाद गोसाँईजी ने मेरे गले में जनेऊ पहनाकर कहा— **‘सतीश, इस जनेऊ को अब तुम फेंको तो।’** भाई, गोसाँईजी के जनेऊ देते ही तुरन्त उसे फेंक दूँगा, मन में पहले से सोच रखा था— जिद भी मेरी बहुत थी। गोसाँईजी ने जब वैसा कहकर मुझे जनेऊ दिया, मैं उसको उसी क्षण फेंकने के लिए जैसे ही जनेऊ को स्पर्श किया, मेरी न जाने कैसी अवस्था हो गई, सारा शरीर बारम्बार सिहरने लगा, भीतर से वेग के साथ गायत्री-मन्त्र उठने लगा, भीतर में एक प्रकार के अपूर्व आनन्द की स्फूर्ति हुई। मेरे सारे अंग अवसन्न हो गए,

तब मैं रोने लगा, बारम्बार गोसाँईजी को प्रणाम करने लगा; इसीलिए कहता हूँ भाई, मैंने तो कई बार देखा है, गोसाँईजी सब कुछ कर सकते हैं। फिर हमें क्यों व्यर्थ में भुगता रहे हैं?" सतीश की बात सुनकर मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ। ठाकुर से ब्रह्मचर्य मिलने के बाद से अपने स्वयं के ही जीवन में जो सब अद्भुत घटनाएँ अनुभव कर रहा हूँ, उसका स्मरण करके सोचा— 'ये फिर है ही क्या?' अपनी अद्भुत अनुभूतियों की बात को गुप्त रखकर सतीश से कहा— यह सब देखकर ही तो ठाकुर की किसी बात को अस्वीकार करने का साहस नहीं होता।

सतीश ने अपने रिपु की उत्तेजना के सम्बन्ध में जिन सब शोचनीय दुर्दशाओं की बात कही, उसे सुनकर आश्चर्य हुआ। मैं उसकी दुरावस्था का विवरण सुनकर दुःखित होकर चुपचाप बैठा रहा। कुछ समय बाद मैं ठाकुर के पास गया। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने कहा— **"सतीश अपनी जिन सब अवस्थाओं की बात तुमसे कह रहे थे, उससे समझा जाता है, यहाँ अब उनका रहना ठीक नहीं है। उनसे कह दो, अन्यत्र जाकर रहें।"**

मैंने ठाकुर के कहे अनुसार जाकर सतीश से सब कहा। सतीश ने मुझसे विरक्त होकर धमकाते हुए कहा— 'जा, जा, बेटा; गोसाँईजी मुझसे नहीं कह सकते?' तब मैंने ठाकुर से वह बात कही तो ठाकुर ने सतीश को बुलाकर कहा— **"सतीश तुम्हारे भीतर की जैसी अवस्था है, स्त्री लोगों से दूर रहना ही अच्छा है। यहाँ जब स्त्रियाँ रहती हैं, तब तुम अन्यत्र जाकर रहो। भोजनादि यहाँ कर लिया करो, रहने का बन्दोबस्त अन्य कहीं कर लो।"**

ठाकुर की बात सुनकर सतीश एकदम उछल पड़े और बड़े तेज स्वर में कहने लगे— 'क्यों, मैं क्यों जाऊँ? स्त्रियाँ सब यहाँ से चली जाएँ। उन लोगों को अन्यत्र जाने के लिए क्यों नहीं कहते? संन्यासी के आश्रम में स्त्रियाँ क्यों रहेंगी? मैं कभी यहाँ से नहीं जाऊँगा।' सतीश यह बात कहकर ठाकुर के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना उसी समय नीचे चले गए। माता ठाकुरानी ने कहा— 'सतीश की माँ की जो भयंकर अवस्था है, कहा नहीं जाता। समय-समय पर उनकी ज्वाला की आँच मेरी छाती में लगती है। उसी से मैं बेचैन हो पड़ती हूँ।' ठाकुर ने कहा— **"पिता का श्राद्ध किए बिना सतीश इस प्रकार आ गए हैं, इसी कारण विभिन्न प्रकार के कष्ट भोग रहे हैं।"**

## श्राद्ध से प्रेतात्मा की यन्त्रणा की शान्ति

तब मैंने पूछा, 'श्राद्ध से क्या वास्तव में प्रेतात्मा का क्लेश दूर होता है?' ठाकुर ने यहाँ पर कुछ दिन पहले हुई एक घटना का उल्लेख करते हुए कहा—

“एक दिन मैं यमुना के किनारे-किनारे चलकर जैसे ही कालीदह के पास पहुँचा, एक प्रेत मेरे सामने गिरकर भयंकर छटपटाने लगे। मैंने उनसे पूछा— वैसा क्यों कर रहे हो? प्रेत ने कहा— ‘प्रभु, रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए, अब यह क्लेश सहन नहीं कर पा रहा हूँ। सैकड़ों-हजारों बिच्छू मुझे सब समय डंक मार रहे हैं। यन्त्रणा से छटपटाकर रात-दिन मैं दौड़-धूप करता हूँ। क्षणभर के लिए भी मुझे छुटकारा नहीं मिल रहा है। आप मेरी रक्षा कीजिए।’ मैंने उनसे कहा— आपके किस पाप का यह दण्ड है? प्रेत ने चीखकर रोते हुए कहा— ‘प्रभु, यहाँ मैं . . . मन्दिर में पुजारी था। ठाकुर सेवा के लिए जो अर्थादि मिलता, सेवा में न लगाकर उसे मैं भोग-विलास और बदमाशी में उड़ाता था। यही मेरा सबसे बड़ा अपराध है।’ मैंने उनसे पूछा— आपके इस भोग की शान्ति कैसे होगी? प्रेतात्मा ने कहा— ‘मेरा श्राद्ध नहीं हुआ है; श्राद्ध होने से ही इस क्लेश की शान्ति होगी। आप दया करके मेरे श्राद्ध की व्यवस्था कर दीजिए।’ मैंने कहा— किस प्रकार व्यवस्था करूँगा? प्रेत ने कहा— ‘अपने श्राद्ध के लिए डेढ़ हजार रुपये अपने भतीजे के हाथ में दिया था; लेकिन उसने अभी तक मेरा श्राद्ध नहीं किया। आप दया करके उस रुपये को लेकर कुछ अंश ठाकुर की सेवा में दे दीजिए; बचे रुपयों द्वारा मेरे कल्याण हेतु श्राद्ध करके महोत्सव करने से मुझे इस यन्त्रणा से छुटकारा मिलेगा।’ प्रेत की बात सुनकर मैं उस मन्दिर के वर्तमान पुजारी के पास जाकर सब बतलाया। फिर पूरी घटना उस प्रेत के भतीजे को भी विस्तारपूर्वक बतलाई गई। वे सोच रहे थे, उस रुपये की अब कोई खबर नहीं लेगा। जो भी हो, उसने पूरे रुपये देकर विधिपूर्वक श्राद्धादि किया। महोत्सवादि भी हुआ। फिर उस प्रेत की वह यन्त्रणा दूर हो गई। यहाँ कुछ दिन पहले ही यह घटना हुई है।”

## चीरघाट में नौका-लीला

संध्या के कुछ पहले हम लोग ठाकुर के साथ बाहर निकले। यमुना के किनारे-किनारे चलकर चीरघाट पहुँचे। वहाँ ठाकुर एक वृक्ष के नीचे बैठकर दूसरे छोर के बेलबाग की ओर देखने लगे, थोड़े समय के बाद ही वे समाधिस्थ हो गए। कुछ क्षण तक स्थिर भाव से नाम-जप करके संध्या के बाद हम लोग कुंज में लौटे। कुतु तुरन्त एक लोटा पानी लाकर ठाकुर के चरण धोने के लिए सीढ़ी के किनारे खड़ी हो गई। ठाकुर ने परिहास करके कुतु से कहा— “कुतु, आज बिल्लियों का कितना ही गू रौंदते हुए आया हूँ। पैरों में सब गू सना हुआ है।” कुतु

‘ठीक है, ठीक है’ कहकर जैसे ही पैरों को पकड़ने गई, ठाकुर ने दोनों पैर हटाते हुए कहा— **“अरे, रुक न, पैर में सब घृण्य गू लगा हुआ है।”** कुतु ने कहा— ‘ठीक है न, उससे मुझे थोड़ी-भी घृणा नहीं। मैं रगड़कर अच्छे-से धो देती हूँ।’ ठाकुर ने कहा— **“अरे तेरे हाथ में गू लगेगा।”** कुतु ने थोड़ा हँसकर कहा— ‘ये क्या कहते हो, तुम्हारे पैरों में जो लगा है, वह फिर गू कैसा?’ ठाकुर ने फिर कुछ कहा नहीं। मैं कुतु का यह भाव देखकर चकित रह गया। ‘अहा! ठाकुर के श्रीपादपद्म में जो लगा है, वह फिर क्या गू है? उससे फिर घृणा क्यों?’ ठाकुर के प्रति कहाँ तक श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न होने से इस प्रकार का भाव स्वाभाविक होता है, मैं उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। धन्य है कुतु!

हम सभी बरामदे में आकर ठाकुर के पास बैठे हैं, कुतु ने ठाकुर से कहा— “बाबा, यमुना के किनारे में जब हम सभी बैठे थे, तब तुम समाधि अवस्था में **‘डूबोगे नहीं, डूबोगे नहीं’** कहकर खूब हँसे क्यों थे? वह बात तुमने किससे कही थी?”

ठाकुर ने कहा— **“और किससे कहूँगा?”** कुतु ने कहा— ‘खुलकर क्यों नहीं कहते?’ ठाकुर ने कहा— **अरे यमुना के किनारे में बैठते ही कृष्ण नौका लेकर आए, मुझसे कहे— ‘उठ! एक बार यमुना में नौका-विहार करें।’** कृष्ण के कहने पर नौका पर चढ़ गया। कृष्ण नौका के एक सिरे पर थे। यमुना के बीच में नौका ले जाकर उन्होंने उस सिरे को पानी के भीतर दबा दिया। तब नौका मानो डूबने लगी। नौका में जो लोग थे, सभी एकदम चिल्लाने लगे। मैंने देखा, कृष्ण नौका को डुबाने ही वाले हैं। तब मन में सोचा, कृष्ण केवल डरा रहे हैं। यह नौका कभी डूबेगी नहीं। नौका के डूबने से तो केवल हम लोग नहीं डूबेंगे, कृष्ण जब नौका में हैं, उस सिरे पर नौका में पानी चढ़ने पर पहले कृष्ण ही डूबेंगे। वही सबसे कहा था, **‘डरो मत, डूबोगे नहीं, डूबोगे नहीं; ये कृष्ण की चालाकी है!’**

कुतु— तुम कृष्ण के साथ गए, हम लोगों को क्यों नहीं ले गए?

ठाकुर— **अरे, वह तो बहुत छोटी नौका थी; फिर उसमें क्या अधिक लोग आ पाते?**

माता ठाकुरानी ने कहा— ‘अपना खेल कम-से-कम देखने देते। आपने वह भी तो नहीं किया।’

ठाकुर ने कहा— **“उससे फिर क्या लाभ होता? एक चित्र देखने के जैसा देखना, उसके सिवा कुछ नहीं है।”**

माता ठाकुरानी ने कहा— ‘तो भी हानि क्या थी? नहीं से तो काना अच्छा।’

माता ठाकुरानी, कुतु एवं ठाकुर श्रीकृष्ण-लीला के सम्बन्ध में और भी कई

बातें करने लगे; किन्तु मैं उसको कुछ समझ नहीं पाया।

कुतु ने ठाकुर से कहा— 'बाबा, जब गेण्डारिया में थी, तब तुमने मुझे चिट्ठी क्यों नहीं लिखी?'

ठाकुर ने कहा— **"तेरे को क्या चिट्ठी लिखता? तू तो सब समय मुझे देख पाती थी।"**

कुतु ने कहा— 'देख लेती थी, इसलिए तुमको क्या चिट्ठी भी नहीं लिखना चाहिए?'

ठाकुर ने कहा— **"देख लेने, बात सुन लेने के बाद भी चिट्ठी की आवश्यकता है?"**

कुतु ने कहा— 'देख तो लेती थी; लेकिन बातें तो सदा सुन नहीं पाती थी।'

ठाकुर ने कहा— **"सब समय बातें सुनना भी क्या अच्छा लगता है?"**

मैंने थोड़ा अवसर पाकर कुतु से पूछा— कुतु! आजकल तुम्हें मच्छर काटते नहीं?

कुतु ने कहा— 'काटेंगे क्यों? बाबा ने मच्छर को जो मना कर दिया है।'

बहुत समय तक इन लोगों की इस प्रकार बातचीत के बाद हम लोग शयन करने चले गए।

## माता ठाकुरानी को ठाकुर के साथ रखने की बात

6 अगस्त, बुधवार। कल सतीश ने क्रोधवश ठाकुर को जो सब बातें कही थीं, उससे चिन्ता हुई, ऐसा लगता है ठाकुर फिर माता ठाकुरानी को अन्यत्र जाकर रहने के लिए कहेंगे। ठाकुर ने तो कहा था कि साथ में माता ठाकुरानी के रहने से आश्रम की मर्यादा का उल्लंघन होता है। माता ठाकुरानी को साथ में रखे हैं। यह ठाकुर की अपनी इच्छा है या परमहंसजी का आदेश, उसे समझ नहीं पा रहा हूँ। इस विषय में पूछना आरम्भ करते ही ठाकुर मन्द-मन्द मुस्कराकर कहने लगे—

**"कुछ समय पहले एक दिन गुरुदेव मुझे सूक्ष्म शरीर से ले जाकर पहाड़ों में घूमने-फिरने लगे। फिर मुझे लेकर मन्दार पर्वत में पहुँचे। वहाँ उन्होंने कृपा करके मुझे ऊर्ध्वरेता कर दिया। बहुत समय से ऊर्ध्वरेता होने की मेरी एक इच्छा थी। मेरी वह अवस्था होने पर मैंने उनके लिए विशेष रूप से कहा, दया करके उनको भी उन्होंने वह अवस्था दे दी। फिर एक दिन गुरुदेव ने आकर मुझसे कहा, 'तुम तो सम्पूर्ण निरापद् हो गए हो। तुम पहाड़-जंगल में रहो या घर-गृहस्थी में ही रहो, सभी जगह**

तुम्हारी अवस्था एक ही प्रकार है। उनको तुम यहीं रखो; अच्छा होगा।' गुरुदेव के आदेशानुसार ही उन्हें फिर लाया गया है, अन्यथा मैं तो उत्तरकुरु ही जाऊँगा, सोचा था।"

ठाकुर की बात सुनकर बड़ा लज्जित हुआ। सोचने लगा, 'हाय रे! क्या दुर्दशा है। ठाकुर के कार्य में भी मेरी फिर प्रश्न करने की प्रवृत्ति हुई।' जो भी हो, कुछ क्षण बाद ही पूछा— क्या उत्तरकुरु जाना सम्भव है?

ठाकुर ने कहा— "जा क्यों नहीं सकते? किन्तु बड़ा कष्टदायक है।"

मैंने कहा— सुना है, मानससरोवर और कैलास में कोई जा नहीं सकता?

ठाकुर ने कहा— "जा क्यों नहीं सकता? हठयोग का अच्छा अभ्यास रहने से जा सकता है। नहीं तो जाना असम्भव होता है। उस दिन जो परमहंस यहाँ आए थे, वे कैलास से ही आए थे।"

## कैलास यात्रा का विवरण

मैंने ठाकुर से पूछा— उस साधु के साथ क्या पहले से आपका परिचय था? वे किस प्रकार गए थे— अकेले या साथ में कोई और भी थे?

ठाकुर कहने लगे— "कुछ वर्ष पूर्व उस परमहंस के साथ भेंट हुई थी। एक हठयोगी साधु, ये परमहंस और मैंने कैलास जाने के संकल्प से यात्रा आरम्भ की। पहाड़ी रास्तों पर बहुत दूर चलते-चलते एक बहुत बड़े पर्वत के समीप पहुँचे। एक व्यक्ति ने आकर हमें जाने से रोकते हुए कहा— 'उस पहाड़ पर जाने का हुकुम नहीं है।' उनसे पूछा गया, क्यों? उन्होंने कहा, 'उस पहाड़ पर चढ़ते ही मनुष्य पत्थर हो जाता है।' उनकी बात पर सन्देह करने से उन्होंने हमें बहुत दूर में पहाड़ के ऊपर तीन मनुष्यों को दिखलाते हुए कहा— 'वह देखो, वे पत्थर हो गए हैं।' उस पहाड़ पर चढ़ने के रास्ते में पहाड़ के ही किनारे एक बड़े पत्थर पर बड़े-बड़े अक्षरों से खुदा हुआ है— 'अत्र अग्रे न गच्छन्ति।' (यहाँ से आगे नहीं जाना।) पहाड़ की वैसी दशा देखकर युधिष्ठिर स्वर्ग जाते समय उस प्रकार की बात लिख गए थे, ऐसा न हो कि कोई उस पथ से चलकर संकट में पड़ जाए। हमने वह सब देखकर उस ओर से जाने का संकल्प त्याग दिया। हठयोग का मेरा अभ्यास नहीं है, मार्ग में और भी कितने प्रकार के विघ्न रह सकते हैं, सोचकर मैं लौट आया; परन्तु वे दोनों संन्यासी लौटे नहीं। उन लोगों ने कहा— 'अग्नि का अभाव हम लोगों को होगा नहीं, साथ में 'चकमक' पत्थर है। रास्ते में यदि पानी

मिले, तो फिर हम लोगों की क्रिया चलेगी; क्रिया के चलने से हम लोगों के शरीर को कुछ नहीं होगा।' यह बात कहकर वे लोग अन्य पथ से थोड़ा घूमते हुए चले गए। इस बार श्रीवृन्दावन आने से उसी परमहंस के साथ मेरी भेंट हुई। उन्होंने रास्ते का सारा विवरण मुझसे कहा। सुना— वे लोग पहाड़ी रास्ते से बहुत दिन तक चलकर मानससरोवर पहुँचे। कैलास जाने के लिए मानससरोवर होकर ही जाना पड़ता है। कैलास के सभी यात्री एक निर्दिष्ट दिन तक वहाँ प्रतीक्षा करते हैं। उस निर्दिष्ट दिन में मानससरोवर के बीच से महादेव का रथ निकलता है। जिन लोगों को उस रथ का चूड़ा भी दिख जाता है, वे लोग भी कैलास यात्रा करते हैं, अन्य सब रह जाते हैं। यदि कोई रथ अथवा चूड़ा का दर्शन न पाकर भी कैलास जाते हैं, तो कैलास जाकर उनके भाग्य में महादेव का दर्शन नहीं रहता। कैलास के यात्रियों के लिए महादेव-दर्शन की वही परीक्षा है। हठयोगी और परमहंस ने मानससरोवर जाकर देखा, निर्दिष्ट दिन आने में समय है तो उन्होंने मानससरोवर की परिक्रमा की। परिक्रमा में उनको 17 दिन लगे। निर्दिष्ट दिन आने पर सरोवर के चारों ओर हजारों साधु-महात्माओं का 'हर हर, बम बम' शब्द उठने लगा; फूल, विल्वपत्र, धूप-धूना, चन्दन आदि लेकर सब सरोवर में महादेव की पूजा-आरती करने लगे। उस समय मानससरोवर का जल चक्कर लगाता हुआ खूब घूमने लगा। महादेव की स्तुति करते-करते सभी सरोवर की ओर ताकते रहे। यथासमय घूर्णित जल के बीच से स्वर्णरथ का चूड़ा निकला। परमहंस तो उसका दर्शन पाकर कैलास की ओर चल पड़े; परन्तु हठयोगी साधु को चूड़ा का दर्शन नहीं हुआ, इस कारण वहाँ से लौट आए।"

"परमहंस अन्य कुछ महात्माओं के साथ जाकर ठीक समय पर कैलास पहुँच गए। कैलास पर्वत के एक सौ आठ शिखर एक के बाद एक शृंखलाबद्ध ऊँचे हैं। प्रत्येक शिखर ही शिवलिंग के आकार के हैं। उन सब शिखरों को भी शिवलिंग कहते हैं। उन सब शिवलिंग की परिक्रमा करके कैलास में चढ़ने का नियम है। एक-एक शिखर की परिक्रमा में लगभग एक-एक दिन लगते हैं। सुना है, एक सौ आठ शिखर की परिक्रमा में उन लोगों को ठीक एक सौ आठ दिन लगे थे। ठीक शिवचतुर्दशी के दिन कैलास के ऊपर मन्दिर के समीप वे लोग पहुँच गए। यथासमय रात्रि में अपने-आप मन्दिर का दरवाजा खुल गया। तब सभी ने मन्दिर के भीतर प्रत्यक्ष रूप से साक्षात् महादेव और



भगवती का दर्शन पाया। यह दर्शन अधिक समय के लिए नहीं होता, केवल तीन-चार मिनट ही होता है। परमहंस के साथ भेंट होने पर अनेक बातें हुई। तीन-चार वर्ष के बाद इस बार उनके साथ भेंट हुई।”

## तिब्बत में बंगाली बाबू

ठाकुर की ये सब बातें सुनकर पूछा— सुना है, तिब्बत देश में भी बहुत अच्छे-अच्छे बौद्ध लामा योगी हैं। उन सब स्थानों पर हम जा नहीं सकते?

ठाकुर ने कहा— “पहले तो इस देश के साधु लोग वहाँ जा सकते थे। अब वहाँ जाने का कोई उपाय नहीं है। एक बंगाली बाबू के जाने के बाद से वहाँ पर बड़ी कठिनाई हुई थी। वहाँ कानून निकल गया। अब तिब्बत में अन्य किसी को घुसने का हुकुम नहीं है।”

पूछा— बंगाली के जाने से क्या अनिष्ट हुआ था?

ठाकुर ने कहा— “कुछ दिनों पहले छद्म वेश में एक बंगाली बाबू तिब्बत जाकर उस देश की भाषा सीखने लगे और गुप्त रूप से उस देश का नक्शा अंकित करने लगे। फिर अन्त में पकड़े जाने पर वे अपने देश लौट नहीं पाएँगे, राजा का ऐसा आदेश हुआ। बंगाली बाबू ने राजा के पण्डित की शरण ली एवं जिससे अपने देश लौट पाएँ, ऐसी व्यवस्था कर देने के लिए उनसे प्रार्थना की। विपत्ति में पड़े शरणागत का परित्याग नहीं करना चाहिए सोचकर पण्डितजी ने उनको आश्रय दिया। फिर पण्डितजी के कथनानुसार उन्होंने शपथ ली कि देश में जाकर वह भाषा वे अन्य किसी को नहीं सिखाएँगे और तिब्बत के रास्ते आदि की जानकारी भी किसी को नहीं देंगे। राजपण्डित बड़े धार्मिक व्यक्ति थे। उन्होंने उस बात पर विश्वास करके, उस बंगाली बाबू को कन्धे पर उठाकर गहन रात्रि के समय पहाड़ी रास्ते से लगभग चार-पाँच कोस चलकर एक निरापद स्थान पर पहुँचा दिया। बाबू ने कोलकाता आते ही सब प्रकट कर दिया एवं तिब्बती भाषा भी सीखाने लगे। इस बात का क्रमशः तिब्बत में प्रचार होने से वहाँ के राजा ने उस पण्डित को भयानक दण्ड दिया। एक चमड़े के भीतर उनको भरकर चारों ओर से सिलाई करके नदी में डुबवा दिया। एक लामा-गुरु ने कुछ दिन पूर्व मुझे ये सब बातें बतलाई। उन्होंने यह भी कहा— ‘राजा यदि हमारे जैसे दस हजार लोगों का सिर लेकर भी योगीश्रेष्ठ पण्डितजी को छोड़ देते, तो देश के सभी लोग उससे खुश होते। गुरुजी सभी विषयों में सर्वश्रेष्ठ थे,

राजा भी उनका बड़ा सम्मान एवं पूजा करते थे; लेकिन इस प्रकार कठोर शासन नहीं होने से देश की रक्षा करना कठिन होगा, यह सोचकर उन्होंने देश के प्रधान व्यक्ति को इस प्रकार मृत्यु-दण्ड दिया। वह लामा-साधु बारम्बार 'बेईमान बंगाली, बेईमान बंगाली' कहने लगा। फिर बंगाली लोगों के ऊपर तिब्बती लोगों को अब विश्वास नहीं रहा—वे सभी अब 'बेईमान बंगाली' ही कहते हैं।”

## माता ठाकुरानी का योगैश्वर्य और आकांक्षा

श्रीवृन्दावन में आकर माता ठाकुरानी के असाधारण कार्यों को देखकर आश्चर्य हो रहा है। ये सब घटनाएँ किस प्रकार घट रही हैं, कुछ भी समझ नहीं पा रहा हूँ। माता ठाकुरानी ने आकर हम लोगों के आहारादि का समस्त भार स्वयं ग्रहण कर लिया है। हम इतने लोगों को जब जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, वह न बतलाने पर भी, माता ठाकुरानी स्वयं उसे समझकर जुगाड़ कर देती हैं। रुपया-पैसा पहले जैसा आता था, अब भी ठीक उसी प्रकार आ रहा है; फिर भी हम लोगों को किसी वस्तु का अभाव नहीं है। भण्डार-घर सर्वदा ही वस्तुओं से भरा रहता है। प्रतिदिन हम नौ-दस लोग दोनों समय भोजन किया करते हैं, उसके अतिरिक्त कुंज में निमन्त्रणादि का कार्य भी दो-तीन दिन के अन्तर में चलता है—माता ठाकुरानी एक छोटे 'पतीले' में केवल एक बार चावल पकाती हैं; उस पात्र में एक सेर से अधिक चावल समाता नहीं। दाल, तरकारी आदि पाँच-छः प्रकार के व्यंजन एक छोटी कढ़ाही में बना लिया करती हैं। पात्र छोटा होने पर भी एक ही वस्तु को दुबारा बनाना, माता ठाकुरानी का नियम नहीं है। कभी-कभी जब हम 15-20 लोग भोजन के लिए पहुँच जाते हैं एवं अतिरिक्त लोगों का भोजन के लिए निमन्त्रण होता है, तब भी माताजी नियमित परिमाण से अधिक रसोई नहीं बनातीं। रसोई हो जाने पर दाऊजी को भोग लगाती हैं; भोग लग जाने के बाद सारा प्रसाद रसोईघर में रखा जाता है। रसोईघर में ही हम लोगों के भोजन करते हैं। आश्चर्य का विषय यह है कि केवल एक छोटे पतीले के प्रसाद एवं निर्दिष्ट परिमाण के व्यंजनादि द्वारा हम जितने भी लोग उपस्थित क्यों न रहें, माता ठाकुरानी अपने हाथ से परिवेषण करके सभी को तृप्तिपूर्वक भरपेट भोजन करा दिया करती हैं। सबका भोजन हो जाने पर माताजी एवं कुतु प्रसाद पाती हैं। अतिरिक्त भात एवं तरकारी आदि का जुगाड़ कहाँ से किस प्रकार होता है, समझ में नहीं आता। यह आश्चर्यजनक घटना प्रतिदिन ही यहाँ होती है। दाल, तरकारी आदि सभी व्यंजन का स्वाद भी एक नये प्रकार का देखता हूँ; इस प्रकार का स्वादिष्ट व्यंजन जीवन में और कभी कहीं खाया हूँ, ऐसा स्मरण में नहीं आता।

कुतुबुड़ी भोग की रसोई के समय माता ठाकुरानी की सहायता करती हैं। उस समय हम लोगों को उस ओर जाने का हुकुम नहीं है। रसोई का सारा जुगाड़ करके भात और पाँच-सात प्रकार के व्यंजन बना लेने में माता ठाकुरानी को दो-तीन घण्टे से अधिक समय किसी दिन भी नहीं लगता। किस कौशल से माता ठाकुरानी यह सब कार्य शृंखलाबद्ध रूप से जो पूर्ण किया करती हैं, विभिन्न प्रकार से जाँच-पड़ताल करके भी उसको कुछ समझ नहीं पाया। एक दिन मध्याह्न में भोजन के बाद हरिवंश का पाठ करके माता ठाकुरानी के कमरे में जाकर बैठ गया। माता ठाकुरानी ने मुझसे कहा— 'कुलदा, लगता है, शीघ्र ही तुम्हें गाँव जाना होगा। गाँव जाकर माँ की अच्छे-से सेवा करना।' माता ठाकुरानी की बात सुनकर मैं चौंक उठा। पूछा— 'मुझे गाँव जाना होगा, क्या आप यह स्पष्ट देखकर कह रही हैं?' माता ठाकुरानी ने कहा— 'क्यों? गाँव जाने की तुम्हारी इच्छा नहीं होती? गाँव जाने से तुम्हारा भला होगा।' मैंने कहा— 'माँ, आपके विषय में तो मैं कुछ नहीं जानता। अपनी अवस्था की दो-एक घटना मुझे बताइए न। आप कृपण के समान सब छिपाकर क्यों रखती हैं? माताजी ने कहा— 'तुमको एक बात कहती हूँ, यदि धर्म-जगत् में बड़े व्यक्ति बनना चाहते हो, धनी होना चाहते हो, तो कृपण बनो। अपनी कोई भी अवस्था किसी को मत बतलाना, बतलाने से फिर वह रहती नहीं।'

मैंने पूछा— भविष्य की सब घटनाएँ क्या आपके सामने प्रकट होती हैं?

माता ठाकुरानी— होंगी क्यों नहीं? फिर सभी क्या प्रकट होती हैं? दूर की विशेष-विशेष घटनाओं का पता चल जाता है; और आने वाले पाँच-सात दिनों की घटनाएँ सदा ही प्रकाशित रहती हैं।

मैं— साधना के समय आपको दर्शनादि नहीं होते? कभी समाधि होती है?

माता ठाकुरानी— साधन-भजन करती कहाँ हूँ? दिन का समय तो सेवा के काम-काज में बीत जाता है। मध्याह्न में समय मिलने पर थोड़ा विश्राम करती हूँ। संध्या का समय भी ठाकुर-दर्शन में ही निकल जाता है, केवल रात्रि में बैठती हूँ। तब दर्शन भी होता है। कभी-कभी इच्छा होती है, समाधि लेकर पड़ी रहूँ, फिर वह इच्छा होती नहीं; समाधि की अपेक्षा इस प्रकार से सेवा का कार्य करके दिन बिता देना ही अच्छा है।

इस प्रकार कई बातें कहने के बाद माताजी ने मुझसे अपने-आप ही कहा— 'भविष्य में किसकी क्या दशा होगी, वह तो इस समय कहा नहीं जा सकता। इसलिए तुमको कुछ बातें कह रही हूँ, ध्यान रखना। माँ के लिए मुझे बड़ा कष्ट होता है। माँ बड़ी दुःखी हैं। वे सदैव मेरे ही भरोसे रही हैं। कितना कष्ट पाई हैं। एक दिन के लिए भी वे सुखी नहीं हो सकीं। भविष्य में माँ के भाग्य में क्या है,

कह नहीं सकते। माँ को देखना; वृद्धावस्था में किसी के लिए भार स्वरूप न हो। माँ यदि किसी तीर्थ में जाकर रहना चाहे तो चार-पाँच रुपये मासिक की व्यवस्था कर देना और उनको खूब सान्त्वना देना।’

मैंने कहा— नानीजी के लिए आप चिन्ता न करें। किसी समय भी उन्हें कष्ट नहीं होगा। अन्ततः भिक्षा करके मैं नानीजी का अभाव दूर करूँगा।

माता ठाकुरानी ने फिर कहा— ‘तुम्हें और एक काम करना होगा। शान्तिसुधा गर्भवती है। मैं उसको छोड़कर आ गई हूँ। माँ के साथ उसका वैसा प्रेमभाव नहीं है। शान्ति का दिमाग भी स्वस्थ नहीं है। गर्भावस्था में यदि सदा मानसिक कष्ट पाए तो गर्भस्थ सन्तान का अनिष्ट होगा। तुम शान्ति को मेरी ओर से एक पत्र लिख दो। मेरा जो कुछ है, सभी शान्ति का है। गेण्डारिया-आश्रम शान्ति का ही है, जिससे शान्ति वहीं पर निश्चिन्त होकर रहे।’

माता ठाकुरानी के आदेशानुसार उनके नाम से मैंने तुरन्त श्रीमती शान्तिसुधा को पत्र लिखा। उन्होंने उस पर हस्ताक्षर कर दिया। माता ठाकुरानी की ये सब बातें सुनकर मुझे नाना प्रकार की दुश्चिन्ता होने लगी। ठाकुर ने कहा था कि माताजी को अब गेण्डारिया नहीं लौटाया जा सकता। उस बात का भी मुझे इस समय स्मरण हुआ। सोचा, यदि माता ठाकुरानी शीघ्र ही देह त्याग करेंगी, तो मैं उनकी कोई सेवा कर ही नहीं पाया।

मैंने माताजी से पूछा— माँ, आपकी बातें सुनकर मुझे नाना प्रकार की आशंका होती है। आपके मन में किसी प्रकार की कुछ आकांक्षा है या नहीं, जानने की इच्छा है।

माताजी ने कहा— ‘कुतु का विवाह हिन्दू समाज में हो और योगजीवन समाज में सम्मिलित हो, मेरी यही दो आकांक्षाएँ हैं। फिर ‘गोस्वामीजी महाराज’ महाभारत पढ़ना चाह रहे थे, उनको एक महाभारत देने की इच्छा होती है। कुतु बच्ची है, ब्रजमाइयों के समान उसके पैरों में एक जोड़ा पायल देने से अच्छा होता। मेरी और कोई वासना नहीं है।’

माता ठाकुरानी कुतु के विवाह के लिए थोड़ा व्याकुल हैं, उनकी बातों से लगता है। उन्होंने इस सम्बन्ध में मुझसे और भी कई बातें कही।

## स्वप्न में भूत का उपद्रव

7 अगस्त, गुरुवार। आज अवसर पाकर रात के एक भयानक स्वप्न का वृत्तान्त ठाकुर से बतलाया। ‘रात्रि में लगभग ढाई बजे देखा, मैं आसान पर बैठकर नाम-जप कर रहा हूँ, अचानक एक विशाल आकृति का भूत आकर मेरे सामने

उपस्थित हुआ। विभिन्न प्रकार से डराकर मुझे साधना से विरत करने का प्रयास करने लगा। मैं डर के कारण बीच-बीच में काँपने लगा; लेकिन नाम-जप छोड़ते ही विपत्ति में फँसना पड़ेगा सोचकर बड़ी दृढ़ता के साथ नाम-जप करने लगा। तब वह भूत एक विशाल खड्ग हाथ में लेकर मुझे काट डालने का भय दिखाने लगा एवं बोला— 'वह नाम लेगा, वह साधना करेगा तो तेरे को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा। शीघ्र उस साधना को छोड़ दे।' मैं भूत का वह विशाल आकार और भयंकर आक्रोश देखकर बहुत घबरा गया। तब अचानक मुझे स्मरण हुआ, गुरुदेव ने कहा है— **'स्थिर भाव से साधना करने, नाम-जप करने से फिर कोई थोड़ा भी प्रहार नहीं कर सकता।'** यह बात स्मरण होते ही भूत की ओर दृष्टि रखकर मैं नाम-जप करने लगा। तब भूत मेरी ओर बढ़ न सका। 'नाम जपना छोड़, नाम जपना छोड़' कहकर चीखने लगा। फिर छटपटाते हुए एकदम से भागकर अदृश्य हो गया। मैं भी नाम-जप करते-करते जाग उठा। स्वप्न का विवरण सुनकर ठाकुर ने कहा— **"ये क्या, यह तो कुछ भी नहीं है! जिस पथ पर चले हो— कितने बाघ, साँप, कितने भूत-प्रेत, कितने देवी-देवता आकर बाधा देंगे। सभी साधना छुड़ाने की चेष्टा करेंगे। बहुत सावधान रहना, कभी किसी प्रकार भी नाम-जप छोड़ना नहीं। नाम-जप करने से ही वे सब उत्पात दूर होंगे। नाम-जप छोड़ने के लिए अनेक लोग कहेंगे।"**

### प्रकृति का रोग: कर्म ही धर्म है

मैंने पूछा— हरिवंश-पाठ शेष हो जाने के बाद अब और कौन-कौन सा ग्रन्थ पढ़ूँगा?

ठाकुर ने कहा— **"महाभारत आरम्भ से अन्त तक अच्छे-से पढ़ो। उद्योगपर्व, शान्तिपर्व एवं अश्वमेधपर्व को बड़े ध्यान से पढ़ना। भागवत का एकादश और द्वादश स्कन्ध एवं तृतीय स्कन्ध पढ़ो। ये सब पढ़ने के बाद रामायण और योगवाशिष्ठ पढ़ सकते हो। अन्य कोई पुराणादि का पाठ अभी मत करना। इन कुछ ग्रन्थों को पढ़ लेना ही पर्याप्त है।"**

मैंने कहा— जिसकी कभी कल्पना नहीं की थी, ऐसी श्रेष्ठ अवस्था में आपने मुझे रखा है। काम-क्रोधादि के नाम की गन्ध भी मेरे भीतर है, पता नहीं चलता; परन्तु आपका साथ छूटने पर कितने प्रकार की परीक्षा-प्रलोभन में पड़ सकता हूँ! तब मेरे ब्रह्मचर्य की किस प्रकार रक्षा होगी?

ठाकुर ने कहा— **"परीक्षा-प्रलोभन में भले ही पड़ो। उसके लिए तुम्हें**

चिन्ता क्यों है? जहाँ भी रहो, ब्रह्मचर्य के नियम का प्रतिपालन करके चलने का प्रयास करो। उससे ही सब ठीक होने लगेगा। काम, क्रोध ये सब तो मनुष्य की प्रकृति नहीं है— ये सब मनुष्य की प्रकृति का रोग है। रोग होने से जिस प्रकार औषधि का सेवन आवश्यक है, उसी प्रकार इन सब उत्पातों के प्रतिकार के लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक है। शरीर के रस से ही ये सब नाना प्रकार के विकारों की उत्पत्ति होती है। इसलिए शरीर के रस को घटा लेना चाहिए। रस को कम करने के लिए आहार के सम्बन्ध में बहुत सावधान रहना पड़ता है। इन सब विषयों में जितना हो सकता है प्रयास करो, क्रमशः सब ठीक होने लगेगा।”

इसके बाद ठाकुर से धर्म-कर्म, पाप-पुण्य एवं वैराग्य के सम्बन्ध में पूछा। उसके उत्तर में ठाकुर ने संक्षेप में कहा— “जो सब कर्म धर्म-प्राप्ति के अनुकूल है, उसे ही करना चाहिए। धर्म के प्रतिकूल कर्म ही पाप है। मनुष्य चाहे तो दो दिन की साधना से ही हो सकता है पाप को दूर कर भी ले; मनुष्य में पाप छोड़ने की क्षमता है, किन्तु कर्म छोड़ने की क्षमता नहीं है। कर्म करके ही कर्म क्षय करना पड़ता है। कर्म किए बिना किसी का भी उद्धार नहीं होता। कर्म धर्म के बाहर का विषय नहीं है, कर्म ही धर्म है। धर्म-कर्म की अतीत अवस्था बहुत दूर की बात है। वैराग्य का अर्थ यह नहीं है कि काम-काज छोड़ दिया, भिक्षा द्वारा जीवन निर्वाह कर लिया। सभी विषयों से इन सब इन्द्रियों का सम्पूर्ण रूप से निवृत्त होना ही वैराग्य है। विषयों में अनासक्ति होने से ही समझो कि वैराग्य हुआ है। कर्म किए बिना वैराग्य नहीं होता। तुम लोग निश्चित रूप से जान लो; जितना ही क्यों न करो, कर्म जिसका जितना है, आज हो, कल हो चाहे दो दिन बाद हो, एक दिन करना ही होगा। उसको किए बिना किसी प्रकार से छुटकारा नहीं मिलेगा। एकमात्र भगवान् की कृपा से ही क्षणभर के भीतर सब समाप्त हो सकता है, अन्यथा बलपूर्वक कर्म त्यागने का सामर्थ्य किसका है?”

## मातृ-सेवा एवं भ्रातृ-सेवा का आदेश

ठाकुर की बातें सुनकर मैं भयभीत हो गया। कितने कर्म का बोझ मेरे भाग्य में है, कुछ भी तो नहीं जानता। शीघ्र ही उन सबको दूर किए बिना किसी भी प्रकार से स्थिर नहीं हो पाऊँगा; निश्चिन्त होकर साधन-भजन, भगवान् का नाम कुछ कर नहीं पाऊँगा। गुरुदेव तो मेरा सब जानते ही हैं। मेरा क्या-क्या कर्म है,

उनसे ही स्पष्ट रूप से पूछकर उसे समाप्त कर डालूँगा। ऐसा मन में सोचकर मैंने ठाकुर से कहा— मेरा जो कर्म है, मैं तो वह जानता नहीं। आप मुझे स्पष्ट रूप से बता दीजिए, मैं बड़े उत्साह के साथ वही करूँगा। सतीश को मातृ-सेवा करने के लिए प्रतिदिन तो कहते हैं; स्वामीजी को भी कर्म करने हेतु कितना कहते हैं, लेकिन उन लोगों की वैसी मति नहीं होती। इस प्रकार की दुर्मति बाद में मेरी भी तो हो सकती है। इसलिए आप स्पष्ट रूप से बता दीजिए, मुझे क्या करना होगा?

ठाकुर ने कहा— **“तुम्हारा कर्म मातृ-सेवा ही है। उसे कर लेने से सब ठीक हो जाएगा। नियम के अनुसार ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हुए अभी जाकर माँ की सेवा करो। उससे ही सब ठीक होगा। कुछ समय माँ की सेवा करने से ही समझ पाओगे कि उससे कितना उपकार होता है? तुम्हें नौकरी करके अर्थोपार्जन की चेष्टा या गृहस्थी नहीं करनी होगी। माता की सेवा कर लोगे, उससे ही तुम्हारा सब कर्म कट जाएगा।”**

मैंने कहा— मेरी सेवा से माँ सन्तुष्ट होकर, यदि मुझे धर्म-प्राप्ति के लिए आशीर्वाद देकर छोड़ देती हैं, तब फिर आपके साथ रह पाऊँगा तो?

ठाकुर ने कहा— **“सेवा से सन्तुष्ट होकर माँ तुम्हें छोड़ देती हैं, तो उनकी अनुमति लेकर सहज में हमारे साथ रहना। वह सब हो जाएगा। अभी जाकर खूब भक्ति के साथ माँ की सेवा करो।”**

ठीक इसी समय दस रुपये के एक मनी-आर्डर पर मेरे हस्ताक्षर करवाने के लिए पोस्टमैन मुझे पुकारने लगा। हस्ताक्षर करके मैंने दस रुपये ले लिए। देखा, फैजाबाद से बड़े भैया ने ये रुपये भेजे हैं। अचानक वे इस समय मुझे रुपये क्यों भेजे, समझ में नहीं आया। ठाकुर से यह बात कहते ही उन्होंने कहा— **“अभी तुम यहाँ से अपने भैया के पास चले जाओ। कुछ दिन वहाँ उनकी सेवा करो। सन्तुष्ट होकर वे अनुमति दें, तो घर जाकर माँ की सेवा करना। सेवा द्वारा सब गुरुजनों को सन्तुष्ट करके उनकी अनुमति और आशीर्वाद लेकर फिर धर्म के पथ पर चलना चाहिए। ऐसा होने से सहज में इस पथ पर चल सकते हैं। गुरुजन और आत्मीयजन में यदि एक व्यक्ति भी विरोधी हो, तो धर्म पथ में अनेक विघ्न आते हैं।”**

इन सब बातों के बाद ठाकुर ने मुझे कांगाल फकीर के ‘ब्रह्माण्डवेद’ का पाठ करने के लिए कहा। ठाकुर की दीक्षा और हम लोगों की साधना में शक्ति-संचार का प्रसंग इस पत्रिका के विभिन्न स्थानों पर कांगाल ने कुछ-कुछ लिखा है। ठाकुर के कहने पर मैं उसे पढ़कर सुनाने लगा।

## कांगाल के ब्रह्माण्डवेद में ठाकुर की दीक्षा और शक्ति-संचार की कथा

कांगाल का ब्रह्माण्डवेद, प्रथम भाग, पृष्ठ— 392। “23 जनवरी, सन् 1885 ई. को प्रातःकाल पण्डित विजयकृष्ण महोदय ने जिस समय कोलकाता के साधारण ब्राह्म-समाज की वेदी का कार्य सम्पादन किया, उस समय ऐसा एक दृश्य प्रकाशित हुआ था; तब अनेक लोग ‘माँ माँ’ करते हुए उच्च स्वर में रो पड़े थे। इस दृश्य में मोहम्मद नानक देव का हाथ पकड़कर, फिर नानक अन्य भक्तों के साथ गले मिलकर ‘एकमेवाद्वितीयम्’ का कीर्तन करते हुए भावावेश में नाचे थे। महात्मा राजा राममोहन राय भी वहाँ उपस्थित थे। उसके अगले वर्ष 23 जनवरी, 1886 ई. को प्रातः विजयकृष्ण महोदय ढाका के साधारण ब्राह्म-समाज की वेदी में उपासना कर रहे थे, तब उसी प्रकार का एक आध्यात्मिक दृश्य प्रकाशित हुआ। सन् 1886 ई. के अप्रैल महीने में रंगपुर काकिनिया के जमींदार कुमार महिमरंजन राय ने जिस समय वहाँ ब्राह्म-मन्दिर की प्रतिष्ठा की एवं जिस दिन विजयकृष्ण गोस्वामीजी ने प्रातः वेदी का कार्य सम्पादन किया, उस दिन भी उस प्रकार का एक दृश्य पुनः प्रकाशित हुआ था; लेकिन वह पहले के समान स्पष्ट नहीं दिखा।”

कांगाल का ब्रह्माण्डवेद, द्वितीय भाग, पृष्ठ— 243। “असाम्प्रदायिक धार्मिक-प्रवर श्रीमत् विजयकृष्ण गोस्वामी ने कहा कि वे किसी समय पर्वतवासी कुछ योगियों के साथ भेंट करने गए थे। उनके पथ-प्रदर्शक एक मद्रासी व्यक्ति साथ में थे। पर्वत के निकट पहुँचते ही, ललाट आदि स्थानों में सिन्दुर लगाए हुए एक भीषणमूर्ति भैरव ने उन लोगों को आगे आने से रोकने के लिए पत्थर फेंकना आरम्भ किया। भैरव के इस व्यवहार से मद्रासी तो जातीय तेज से गरम हो उठे। गोस्वामीजी ने उनको रोककर कहा, ‘गरम होने से काम नहीं होगा। मैं इसका उपाय करता हूँ।’ उसके बाद भैरव के थोड़ा अन्यमनस्क होने से गोस्वामीजी शीघ्रता से जाकर उनके दोनों पैर पकड़ लिए। भैरव ने हँसते हुए कहा, ‘तुम लोग समझ रहे हो मैं बड़ा पाखण्डी और निर्दयी हूँ, वास्तव में वैसा नहीं है। इस पर्वत में जो कुछ एक योगी रहते हैं, वे लोग सिद्ध-पुरुष हैं। मैं उन लोगों की सेवा के लिए नियुक्त हूँ। विषयी लोग विषय का शुभ-अशुभ जानने के लिए उन्हें सदैव विरक्त करते हैं। इससे साधना में विघ्न पड़ता है। इस कारण वे लोग अब सुरंग के पथ से पर्वत के भीतरी भाग में चले गए हैं। धर्म-जिज्ञासुओं के लिए वहाँ जाना निषिद्ध नहीं है। कौन धर्म-जिज्ञासु हैं और कौन विषयी, मैं पत्थर फेंक-फेंककर उनकी परीक्षा लिया करता हूँ। विषयी होने से भयभीत होकर चले जाएँगे और यथार्थ धर्म-जिज्ञासु होने से तुम लोगों के समान उद्देश्य को नहीं छोड़ेंगे। यदि इच्छा हो तो मेरे साथ चलो,



योगीजनों को देख सकोगे; लेकिन वहाँ पानी नहीं है, यहीं पर कुछ खाकर झरने से पानी पी लो।' यह कहकर उस भैरव ने नर-कपाल में नर-मांस लाकर उन लोगों को खाने के लिए दिया। 'मैं किसी प्रकार का मांस नहीं खाता' कहकर गोस्वामीजी ने उसे छोड़ दिया। इससे भैरव ने विरक्त होकर उन लोगों के प्रति घृणा का भाव दिखलाया; किन्तु मार्ग-दर्शक बनकर उन्हें योगियों के पास ले गया। गोस्वामीजी सुरंग के मार्ग में लेटकर कोहनी के बल चलते हुए बड़े कष्ट से योगियों के पास पहुँचे और उन लोगों को प्रणाम करके उन्होंने देखा, वह स्थान बिना छत का एक दरवाजे वाले कोठे की भाँति है; अर्थात् चारों ओर दीवाल के समान चट्टानें हैं, बीच का स्थान अति सुन्दर स्वच्छ एवं वृक्ष-लता से सुशोभित है। उन योगियों में से एक ने गोस्वामीजी से पूछे बिना ही भैरव को डाँटते हुए कहा— 'तुमने अघोरपन्थी का पथ अवलम्बन किया है, अतएव नर-मांस तुम्हारा खाद्य है; लेकिन अन्य पथावलम्बियों का जो खाद्य नहीं है, उनको तुमने वह क्यों दिया? इससे तुम्हारी विचित्र निर्लज्जता दिखाई पड़ती है। तुम क्या सोचते हो, अघोरपन्थी न होने से कोई सिद्ध नहीं हो सकता? यह तुम्हारी बहुत बड़ी भूल है। पथ कुछ नहीं है, केवल उपाय है। सिद्धि प्राप्त करना अलग बात है। हम जो चार लोग यहाँ पर हैं, सभी ने क्या एक ही पथ का अवलम्बन करके साधना की थी? कोई वैष्णव, कोई अन्य प्रणाली का अवलम्बन करके साधना करने में प्रवृत्त हुए थे। अब सभी का पथ और उद्देश्य एक है। अतः इस समय अन्य कोई प्रणाली नहीं है।' गोस्वामीजी ने योगियों से जो कुछ पूछने का विचार किया था, भैरव को दी गई चेतावनी के रूप में ही योगीवर ने उस प्रश्न का उत्तर दे दिया। योगी लोग जो बाहरी दोनों नेत्र की भाँति ललाट के भीतर तृतीय नेत्र से सभी जान सकते हैं, देख पाते हैं, यह घटना उस बात की पुष्टि करती है। उसके बाद योगियों ने गोस्वामीजी के साथ जिस प्रकार की बातचीत की, उसमें उन्होंने पृथ्वी के भिन्न-भिन्न देशों की भिन्न-भिन्न घटनाएँ कही। गोस्वामीजी को संवाद-पत्र पढ़कर जो ज्ञात हुआ था एवं लोक-परम्परा से उन्होंने जो सुना था, उसके साथ उन समस्त बातों का मेल देखकर गोस्वामीजी चकित हो गए। घने वनाच्छादित पहाड़ी क्षेत्र में संवाद-पत्र तो दूर रहा, सांसारिक लोगों का भी आवागमन नहीं है। विशेषकर, पृथ्वी के सब देशों का इतिहास और वर्तमान घटनाओं का संवाद, पाठक जिससे अवगत नहीं हैं, योगीगण उसे जानते हैं, यह जो दिव्य-दृष्टि का फल है, उसे कौन अस्वीकार कर सकता है?"

ठाकुर से पूछा— भैरव जब पत्थर फेंकने लगे, आप लोगों ने क्या किया? वह क्या आप लोगों के शरीर में लगा था?

ठाकुर— भैरव भयंकर चिल्लाकर गाली देते-देते पत्थर फेंकने लगे,

तब साथ के ब्रह्मसमाजी मित्र तो दौड़कर भाग गए। पत्थर मेरे शरीर पर पड़ने लगे। पैर में एक ही स्थान पर दो पत्थर पड़ने से चोट लगकर झर-झर रक्त बहने लगा। मैं पैर को झटकारकर उसी स्थान से हाथ जोड़कर भैरव की ओर एकटक देखता रहा। भैरव तब चकित होकर मेरी ओर देखते रहे। उसी अवसर में दौड़कर मैं उनके पैरों पर गिर पड़ा। तब वे आदरपूर्वक मुझे पकड़कर पहाड़ के एक निर्जन स्थान पर ले गए। वहाँ पर भैरव ने मुझे एक जले हुए हाथ की हथेली लाकर खाने के लिए देते हुए कहा, 'महाप्रसाद पाइए'। हाथ की हथेली उन लोगों के लिए बड़े सम्मान का आहार है। मैं मांस नहीं खाता कहकर उसका परित्याग कर दिया तो वे बड़े दुःखी हुए। फिर मुझे महापुरुषों के पास ले गए। देखा, एक कमरे के चार कोने में चार महात्मा समाधि लगाकर बैठे हैं। उनमें से एकजन पहले आचारी थे, एकजन अघोरी, एकजन कापाली और एकजन नानकपन्थी थे। इस प्रकार परस्पर विरुद्ध पथावलम्बी थे। गया के गम्भीरनाथजी भी उनमें से एक थे। वे सभी एक ही स्थान पर शान्तिपूर्वक परमानन्द से हैं। उन लोगों के साथ अनेक विषयों में बातचीत हुई।

मैं ठाकुर के कहने पर ब्रह्माण्डवेद तृतीय भाग के 178 पृष्ठ में ठाकुर की दीक्षा के विषय में कांगाल का लेख पढ़ने लगा।

कांगाल का ब्रह्माण्डवेद, तृतीय भाग, पृष्ठ— 178। "बहुतों को स्मरण होगा, एक बार खूब चर्चा उठी थी कि असाम्प्रदायिक धार्मिक-प्रवर श्रीमान् पण्डित विजयकृष्ण गोस्वामी संसार-धर्म का त्याग करके संन्यासी हो गए हैं। यह कोलाहल बिल्कुल निराधार नहीं है। गोस्वामीजी ने दार्जिलिंग के वनाच्छादित प्रान्त में षट्चक्रभेदी किसी योगी का साधन देखकर एवं उनके पास बैठकर उनके नर्मदा के किनारे अवस्थित गुरुदेव के दर्शन करने हेतु अपने आत्मीयजनों से विदा माँग ली थी। घटनावश वे वहाँ न जाकर गयाधाम में स्थित ब्रह्मयोनि पर्वत पर पहुँचे एवं वहाँ के वैष्णव महन्त से उन्होंने साधन की शिक्षा लेनी चाही। इस समय उन्होंने विलास-वेश त्यागकर संन्यासी वेश में वहाँ के आश्रम के महन्त परमहंस से लगभग नौ महीने तक अनुष्ठान के साथ ज्ञान, योग, भक्ति और कर्म की पद्धति सीखी थी। इतना करके भी अपने साधन के धन को हृदयमन्दिर में न देख पाने से इस प्रकार व्याकुल हो गए थे कि वे एक निर्जन वन में अचेत अवस्था में कुछ दिन पड़े रहे। उसके बाद लगातार स्पर्श के अनुभव से जागने पर उन्होंने देखा, एक परमहंस की गोद में लेटे हैं। प्रकृतिस्थ होने पर गोद से उतरकर उस अपरिचित परमहंस को प्रणाम करके उनके चरणों में गिर पड़े एवं प्रार्थना की, 'आप मुझे अपने आश्रम

में ले चलिए, मैं जिससे साधन के धन को हृदय में देख सकूँ, वैसा उपदेश दीजिए; मैं अब गृहस्थाश्रम में लौटूँगा नहीं।' परमहंसप्रवर ने कहा— 'वत्स! शान्त होकर हमारी बात सुनो, तुम्हारे स्त्री, पुत्र, कन्या एवं अनाथ सास तुम्हारे आश्रित हैं; उन लोगों का त्याग करने से तुम दोषी होगे और कुछ भी साधन नहीं कर पाओगे।' गोस्वामीजी के स्त्री-पुत्र आदि हैं, सम्पूर्ण अपरिचित बहुत दूर स्थित निर्जन पर्वतवासी उसे किस प्रकार जान गए! गोस्वामीजी इस कारण आश्चर्यमय दृष्टि से उनके मुख की ओर देखते रह गए। फिर पुनः एक अन्य बात सुनकर और भी चकित हो गए, जब परमहंस ने हास्यपूर्वक कहा, 'वत्स! तुम कुछ लोगों ने मिलकर एक घर को 'उजाड़' दिया है; घर को पुनः आच्छादित कर सके, ऐसा एक भी व्यक्ति तुम लोगों के बीच नहीं देख पा रहा हूँ। जैसा उजाड़े हो, वैसे ही छाने का उपाय करो; अन्यथा ईश्वर के समक्ष अपराधी होगे।' गोस्वामीजी ने परमहंसजी के रहस्यमय उपदेश का तात्पर्य समझकर, उनके चरण पकड़कर कातर स्वर में कहा, 'भगवान्! मुझमें थोड़ा भी वह सामर्थ्य नहीं है। योग्यता प्राप्त करने के लिए ही इतने दिन आश्रम में वास किया और अब आपका अनुगामी होना चाहता हूँ।' परमहंसदेव ने कहा, 'मैं मानससरोवरवासी योगी हूँ, तुम्हारे वैराग्य के बारे में जानकर तिब्बत छोड़कर इस गयाधाम में आया हूँ, अब डर नहीं है। मैं जो उपदेश दे रहा हूँ, उसके कार्य में परिणत होने से घर जैसा था, नये आच्छादन से फिर वैसा ही हो जाएगा।' उन्होंने यह बात कहकर ज्ञान, योग और भक्ति साधना के लिए उपयोगी सहज प्राणायाम सिखला दिया एवं कहा, 'मैं आज से तुम्हारी साधना में सहायक हो गया हूँ। जो किसी भी देश में किसी भी साधन पद्धति का अवलम्बन करके साधना करते हैं, मैं उन लोगों की सहायता किया करता हूँ।' इस प्रकार के विविध वार्तालाप के बाद गोस्वामीजी समझ गए, वे सामान्य परमहंस नहीं हैं। उनका जो शरीर दिख रहा है, वह भी जड़मय देह नहीं है। परमहंसप्रवर ने सूक्ष्म शरीर में आकर उन पर कृपा की है। अतएव उनके शिक्षा-साधन को आदरपूर्वक धारणकर अपने विरही पुत्रादि के साथ कोलकाता पहुँचकर कार्यक्षेत्र में लग गए।"

"हम लोगों ने देखा है, विजयकृष्ण गोस्वामीजी जिस पद्धति से प्राणायाम की शिक्षा देकर साधन प्रदान कर रहे हैं, उसमें ज्ञान-साधना के साथ योग और भक्ति-साधना संयुक्त है। अतएव उक्त साधन-प्रणाली श्रीचैतन्यदेव द्वारा चलाई हुई साधन-प्रणाली के सम्पूर्ण अनुरूप है एवं बहुत ही सहज है और विषयी लोगों के समय के अनुसार आवश्यक है। जो लोग ब्रह्माण्डवेद में प्रदर्शित साधन-प्रणाली को कठिन समझते हैं, वे लोग गोस्वामीजी की प्रणाली का अवलम्बन करके साधना करने से सहज में कृतार्थ हो सकते हैं। हमने उक्त प्रणाली का अवलम्बन करने वाले तीन-चार लोगों को कृतार्थ होते देखा है एवं गोस्वामीजी को उपदेश देने

वाले परमहंसप्रवर जो साधनार्थी के सहायक हुआ करते हैं, उसे निःसन्देह रूप से केवल समझा ही नहीं हैं, वरन् कभी-कभी प्रत्यक्ष भी किया है।”

## नाना स्थानों से ठाकुर को मन्त्र प्राप्त : नाना प्रकार की साधना परमहंसजी से दीक्षा : तैलंग स्वामी की कथा

ब्रह्माण्डवेद पाठ के बाद ठाकुर से पूछा— आपकी दीक्षा के सम्बन्ध में कांगाल जिस प्रकार लिखे हैं, वह क्या ठीक है?

ठाकुर ने कहा— **“बहुत-कुछ वैसा ही है। फिर कहीं-कहीं गड़बड़ भी है।”**

इसके बाद सतीश, श्रीधर एवं मैंने ठाकुर के साथ बातों-बातों में उनके मन्त्र प्राप्ति और साधनादि के विषय में बहुत-सी बातें पूछी। उत्तर में ठाकुर ने जिस प्रकार कहा, यथासाध्य लिखकर रख रहा हूँ—

ठाकुर कहने लगे— **“बचपन में माताजी के साथ मुझे शिष्यों के घर जाना पड़ता था। हमारी कुल-प्रथा के अनुसार तब माताजी ने ही मुझे मन्त्र दिया था। उपनयन के बाद मैं खूब निष्ठापूर्वक प्रतिदिन संध्या आदि नित्यकर्म किया करता था। कुछ दिनों के बाद पाठशाला में संस्कृत पढ़कर वेदान्त की आलोचना से मैं अद्वैत मत को मानने लगा। मैंने तभी जनेऊ का त्याग कर दिया। चारों ओर हलचल मच गई। माताजी तो आत्महत्या करने के लिए तत्पर हो गई। क्या करता? माँ की बात मानकर फिर जनेऊ धारण किया। तब तक मैं ब्राह्म-समाज में नहीं गया था। उसके बाद ब्राह्म-समाज में प्रवेश करने से लगा कि उपवीत जातिभेद का चिह्न है, उसे धारण करना बहुत बड़ा अपराध है। तब पुनः जनेऊ त्याग दिया। माताजी को बता दिया— यदि वे इस बार मुझे जनेऊ ग्रहण करने के लिए जिद करेंगी तो मैं आत्महत्या करूँगा। माताजी ने फिर कुछ नहीं कहा। ब्राह्म-समाज में प्रवेश करके रीति के अनुसार उपासनादि करने लगा और विविध स्थानों में ब्राह्मधर्म का प्रचार करने लगा। तब मुझे पूरा विश्वास था, जो मेरा व्याख्यान सुनेगा, वही ब्राह्मधर्म ग्रहण करेगा।”**

“एक बार जब मैं 13 नम्बर, मिर्जापुर स्ट्रीट (कोलकाता) में था, एक दिन गहन रात्रि में बैठकर उपासना कर रहा था; थोड़ी झपकी लग गई। अचानक दरवाजा खटखटाने का शब्द हुआ। तुरन्त द्वार खोला तो देखा, महाप्रभु का पूरा दल है; कमरा भर गया; बिजली जैसा प्रकाश है।

अद्वैत प्रभु ने मुझसे कहा— 'मैं तुम्हारा पूर्वज हूँ, अद्वैत आचार्य। ये नित्यानन्द प्रभु हैं और ये महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य। प्रणाम करो। ये तुम्हें मन्त्र देंगे; स्नान करके आओ।' मैंने तीनों प्रभु को प्रणाम करके बैठने के लिए आसन दिया। फिर छोटे कुँए पर जाकर स्नान करके आ गया। महाप्रभु ने मुझे नाम (मन्त्र) दिया। मैं अचेत हो गया। प्रातःकाल नींद से उठने पर पूरी घटना का स्पष्ट स्मरण होने लगा। सोचा— लगता है, स्वप्न देखा था; किन्तु कमरे में आसन बिछे हुए और कुँए के किनारे भीगे कपड़े देखकर वह संशय दूर हुआ। तब सोचा— मैं कैसा ब्राह्म हूँ, वही परीक्षा लेने के लिए कुछ 'स्परिट' आई थीं। तब तो जानता नहीं था, महाप्रभु स्वयं भगवान् हैं। इसलिए वह 'नाम' दबा ही रह गया।"

"ब्राह्मधर्म की पद्धति के अनुसार उपासना करने से मेरे भीतर विभिन्न प्रकार की अवस्थाएँ प्रकट होने लगीं। अप्राकृत सब दर्शन, श्रवणादि होने लगे, परन्तु कुछ भी स्थायी नहीं रहता था। होता था, फिर चला जाता था, ऐसी अवस्था थी। सत्य वस्तु प्रकट होकर फिर चली क्यों जाती है, मुझे यह संशय होने लगा। तब सत्य वस्तु की खोज के लिए बाहर निकला। बहुत घूमा; कहाँ क्या है, देखने के लिए कबीरपन्थी, दाउदपन्थी, गोरखपन्थी, सुन्दरपन्थी, बाउल, दरवेशादि सब सम्प्रदायों के भीतर प्रवेश किया। एक-एक करके उनकी प्रणाली के अनुसार साधना करके, किस सम्प्रदाय में कहाँ तक क्या है, देख लिया; परन्तु किसी प्रकार भी मेरी आकांक्षा पूर्ण नहीं हुई। मैं जो चाहता था, वह कहीं नहीं मिला।"

मैंने पूछा— आपने क्या बाउल सम्प्रदाय के भीतर भी साधना की थी? उनकी साधना किस प्रकार है?

ठाकुर— वह एक भयानक घटना है। मैं तो संकट में पड़ गया था। बाउल सम्प्रदाय में कई जगह बहुत ही निकृष्ट काम होते हैं। वह फिर मुँह से कहा नहीं जाता। बाउल लोगों के बीच अच्छे-अच्छे लोग भी हैं। वे सभी चन्द्रसिद्धि करते हैं। शुक्र चाँद, शनि चाँद, गरल चाँद, उन्माद चाँद, ये चार चाँद सिद्ध हो जाने से ही वे समझते हैं, सब हो गया। शरीर का रक्त, मवाद, मल, मूत्र कुछ भी वे फेंकते नहीं, सब खाते हैं। एक दिन एक बाउल को खूनी आँव (मल) खाते देखकर मैंने बहुत अप्रसन्नता प्रकट की। अखाड़े के महन्त ने सुनकर मुझे धमकाते हुए कहा, 'तुम्हें उन्माद चाँद, गरल चाँद सिद्ध करने हेतु मल-मूत्र खाना होगा।'

मैंने कहा, वह मैं नहीं कर सकूँगा। मल-मूत्र खाकर जो धर्म प्राप्त होता है, वह मुझे नहीं चाहिए। महन्त ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा, 'इतने दिन तक तुम हमारे सम्प्रदाय में रहकर हमारा सब जान लिए हो और अब कहते हो साधन नहीं करोगे! तुमको वह सब साधन करना ही होगा।' मैंने कहा, वह कभी नहीं करूँगा! महन्त सुनकर गाली देते-देते मुझे मारने आए; शिष्य लोग भी 'मारो, मारो' कहते हुए आ गए। तब मैंने खूब धमकाते हुए कहा, 'अच्छा, इतना साहस, मारोगे? जानते हो मैं कौन हूँ? मैं शान्तिपुर के अद्वैतवंश का गोस्वामी, मुझसे कहते हो मल-मूत्र खाने?' मेरी धमकी से सभी चौंक गए। महन्त भयभीत होकर, प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा, 'प्रभु! आप गोस्वामी सन्तान हैं, अद्वैत प्रभु के वंशज! मैं जानता नहीं था। मुझसे बड़ा अपराध हुआ है, दया करके क्षमा कीजिए।' मैं तुरन्त वहाँ से चला आया। ऊर्ध्वरेता होना ही उन लोगों के साधन का लक्ष्य है। वैसे लोग भी बाउलों के बीच हैं।

प्रश्न— ब्रह्मोपासना करने से ही जब धीरे-धीरे आपकी सब अवस्थाएँ प्रकट हो रही थीं, तब फिर गुरु की आवश्यकता क्यों समझी?

ठाकुर— प्रकट होने से क्या होगा? स्थायी तो होती नहीं थीं। एक दिन मछुआबाजार स्ट्रीट (कोलकाता) में एक महापुरुष का दर्शन हुआ। उनको अपनी सारी अवस्था खुलकर बतलाने पर उन्होंने कहा, 'अनेक अवस्थाएँ प्राप्त हो सकती हैं, उससे क्या होता है? रहती तो हैं नहीं। शास्त्रानुसार गुरु से दीक्षा लिए बिना कोई भी अवस्था टिकेगी नहीं।' वे एक दिन अचानक ब्राह्म-समाज में आकर उपासना में सम्मिलित हुए। फिर जाते समय कह गए, 'घर तो अच्छा बना है, किन्तु अलग खूँटे पर है, नींव नहीं है— खड़ा कैसे होगा? गुरु नहीं है; यह कभी टिकेगा नहीं।' मैंने इस महापुरुष के सामने दीक्षा के लिए प्रार्थना की थी। उन्होंने पीठ थपकी मारकर आशीर्वाद देते हुए कहा, 'बच्चा, घबराओ मत। गुरु तुम्हारा है, बखत् में मिल जाएगा।' मैं स्थिर न रह सका; विन्ध्याचल में, तिब्बत में, हिमालय में, अनेक स्थानों और पहाड़ों पर गुरु की खोज की। गुरु कहीं नहीं मिले। सभी महापुरुषों ने एक ही बात कही 'गुरु तुम्हारे निश्चित हैं, समय पर मिलेंगे।' अन्त में गया में आकाशगंगा पहाड़ पर रघुवर बाबाजी के आश्रम में कुछ दिन रहा। एक दिन उस पहाड़ के ऊपर निर्जन में अकेला बैठा था, गुरु नहीं मिला सोचकर निराशा से मन में कष्ट होने के कारण मूर्च्छित हो गया। चेतना लौटने के बाद देखा, एक महापुरुष की गोद में सिर रखकर लेटा हूँ। वे बड़े स्नेह के साथ

मेरे शरीर पर हाथ फेर रहे हैं। मैंने तुरन्त उठकर उनके चरणों में गिरकर प्रणाम करके पूछा, 'आप कौन हैं? यहाँ कब आए?' उन्होंने कहा, 'मैं परमहंस हूँ, मानससरोवर में रहता हूँ। तुम्हारे इस क्लेश की दशा को देखकर तुम्हें दीक्षा देने अभी तुरन्त यहाँ आया हूँ।' मैंने पूछा, 'मानससरोवर से आप इतने शीघ्र किस प्रकार आए?' परमहंसजी ने कहा, 'योगी वैसा कर सकते हैं। योगी लोग देह के पंचभूत को पंचभूत में मिलाकर केवल चैतन्य का अवलम्बन करके जहाँ इच्छा हो, जा सकते हैं; फिर इच्छाशक्ति द्वारा उस पंचभूत को आकर्षित करके पुनः स्थूल देह धारण कर लेते हैं। योगियों में ऐसी क्षमता है। मेरा जो यह स्थूल शरीर देख रहे हो, यह वैसा ही है।' इस प्रकार अनेक बातें होने के बाद उन्होंने मुझे दीक्षा दी।

मैंने पूछा— दीक्षा लेने के बाद क्या किए?

ठाकुर— दीक्षा ग्रहण करते ही मेरा बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। चेतना लौटने पर चारों ओर देखा, परमहंसजी नहीं हैं। मुझे भयंकर नशा हुआ था। ठीक से आँखें खोल नहीं पाया। ऊँघती हुई अवस्था में ही किसी प्रकार उतरकर बाबाजी के आश्रम में आया। गुफा के किनारे बेल पेड़ के नीचे एक बड़ी चट्टान पर बैठ गया। 11 दिन 11 रातें एक ही अवस्था में बीत गईं। उस समय बाबाजी ने यत्नपूर्वक मेरी देह की रक्षा की थी। वे मुझे बहुत चाहते थे।

प्रश्न— तैलंग स्वामी ने भी तो आपको दीक्षा दी थी?

ठाकुर— तैलंग स्वामी ने भी मुझे मन्त्र दिया था। यह बहुत पहले की बात है। एक बार काशी में एक महीने रहा था। केदार घाट के पास होमियोपैथी डॉक्टर लोकनाथ बाबू के निवास पर ठहरा था। उन्होंने अपने निवास में रहने के लिए मुझसे बहुत आग्रह किया। मैंने कहा, आप लोगों को बहुत असुविधा होगी। मैं रात-दिन घूमता फिरूँगा; प्रयोजन के अनुसार निवास में आऊँगा। दिन में, रात में कभी एक निर्दिष्ट समय पर भोजन नहीं कर पाऊँगा। फिर मुझे एक कमरे की भी आवश्यकता होगी; उसमें अन्य लोगों के रहने से नहीं चलेगा। लोकनाथ बाबू सब बातों में सहमत होकर अपने निवास पर ही रहने के लिए जिद करने लगे। मुझको निर्जन कमरा दिया। मैं रात-दिन इच्छानुसार घूमता-फिरता था; प्रयोजन के अनुसार निवास पर आता था। अधिकांश समय तैलंग स्वामी के पास रहता था। पहले-पहले कुछ दिन उन्होंने मेरी बड़ी परीक्षा ली। शरीर पर कुत्ते की बिष्ठा, मैला, कीचड़ मलकर रहते, पास जाने पर वही

फेंकते थे। बाद में 'छोड़ेगा नहीं' देखकर बड़ा आदर करते थे, जाते ही अपने पास बैठने के लिए कहते। समय अधिक होने से, 'भूख लगी है या नहीं' संकेत द्वारा पूछते; पास में जो लोग रहते थे, उनसे कुछ खाने की वस्तु लाने के लिए कहते। एक को खाना लाने के लिए इंगित करते ही पाँच-छः लोग दौड़ पड़ते थे। अधिक मात्रा में खाद्य-सामग्री आ जाती थी; अपनी आवश्यकता के अनुसार निकालकर अन्य सब स्वामीजी से खाने के लिए कहता। वे भी मुझसे संकेत द्वारा खाना मुँह में डाल देने को कहते थे। मैं उनके मुँह में कौर दे देता। वे अच्छा खा सकते थे। शरीर अच्छा सबल और स्वस्थ पहलवानों के जैसा था। कभी-कभी वे केदार घाट जाकर गंगा में डुबकी लगाते, फिर सीधे मणिकर्णिका में निकलकर तैरते थे। मैं उस समय गंगा के किनारे-किनारे दौड़ता था।

एक दिन देखा, वे काली मन्दिर में जाकर काली के सामने खड़े होकर मूत्र त्याग कर रहे हैं और उस मूत्र को चुल्लू में ले-लेकर 'गंगोदकम्, गंगोदकम्' कहते हुए काली के ऊपर छिड़क रहे हैं। मैंने पूछा, यह क्या कर रहे हैं? उन्होंने कहा, 'पूजा।' मैंने फिर पूछा, इस पूजा की दक्षिणा क्या है? उत्तर दिए, 'यमालय।' रात्रि में भी कई बार तैलंग स्वामी के पास रहता था। वे मुझे कई प्रकार के अद्भुत योगैश्वर्य दिखलाते थे। एक दिन कहा, आप मुझे इतना दिखला रहे हैं, परन्तु मुझे थोड़ा भी विश्वास नहीं होता। कृपा करके मुझे आशीर्वाद दीजिए, जिससे विश्वास हो। उन्होंने मुझे स्नान करके आने को कहा। रात्रि के लगभग एक बजे हैं, कड़कती ठण्ड है; मैं तो टाल-मटोल करने लगा! उन्होंने तुरन्त गर्दन पकड़कर मुझे अधर में उठा लिया और झप से गंगा में डुबाकर निकाल लिया। फिर मेरे सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा, 'विश्वास बन जाए।' आश्चर्य है! उस दिन से फिर सत्य विषय पर मुझे संशय नहीं होता। उन्होंने मुझे मन्त्र देना चाहा। मैंने कहा, मैं आपके पास से मन्त्र कैसे लूँगा? आप साकार उपासक हैं, देखता हूँ, आप सौ बेलपत्ता और गंगाजल शिव के ऊपर चढ़ाते हैं, शिव-पूजा करते हैं; फिर मैं निराकार ब्रह्मोपासक हूँ, मैं आपको गुरु नहीं बनाऊँगा। उन्होंने सावलम्ब और निरवलम्ब उपासना के सम्बन्ध में अनेक उपदेश दिया। फिर कहा, 'नल राजा को जिस प्रकार सर्प ने डस लिया था, मैं भी उसी प्रकार तुमको थोड़ा स्पर्श कर दे रहा हूँ। इसका गूढ़ तात्पर्य है। मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ; तुम्हारे गुरु निर्दिष्ट हैं, वे ही तुम्हें यथासमय दीक्षा देंगे।' यह कहकर उन्होंने मेरे कान में तीन मन्त्र दिया।



एक तो राधाकृष्ण के युगल उपासना का मन्त्र है। यह मन्त्र पहले मुझे मेरी माताजी ने भी दिया था। दूसरा, सर्वदा जप करने के लिए भगवान् का नाम है और एक का संकट में पड़ने पर जप करने को कहा। परमहंसजी से दीक्षा प्राप्ति के बाद जब तैलंग स्वामी से मेरी भेंट हुई, तब लगभग 20 वर्ष पहले की घटना के सम्बन्ध में हाथ की हथेली पर लिखकर उन्होंने पूछा, 'याद है?'

मैंने पूछा— तैलंग स्वामी क्या मौनी थे?

ठाकुर— हाँ; बातें नहीं करते थे, संकेत द्वारा सब बतलाते, कभी-कभी लिख भी देते थे। रात्रि में कई बार वे मेरे साथ बातें किया करते थे। तब उन्होंने अजगर-व्रत नहीं लिया था। अन्त में अजगर-व्रत लेकर सब छोड़ दिया। किसी प्रकार का संकेत भी नहीं करते थे। एक स्थान पर ही बैठे रहते थे। शरीर स्थूल हो गया था; वात हो गया। ऊपर से उन्हें जीवन्त शिव समझकर सब उनके सिर पर दूध, गंगाजल ढालने लगे। भोर 4 बजे से लेकर दिन के 12 बजे तक पौष-माघ की ठण्ड में भी इस जल ढालने के क्रम में विराम नहीं था। देह का धर्म है— अन्त में घाव होकर शरीर गल गया। एक प्रकार से निर्विकार अवस्था में रहकर उन्होंने देह त्याग दी। गंगा में उनको जल-समाधि दी गई।

### महादेव का शिरोवस्त्र: यह साधन वैदिक है

इस बार श्रीवृन्दावन में आकर ठाकुर के सिर का बाल लगभग छः-सात इंच लम्बा देख रहा हूँ। इतने बड़े बाल ठाकुर के सिर पर और कभी नहीं देखा। यमुना में स्नान करके सिर के बालों को प्रतिदिन एक ही प्रकार से एक गेरुए कपड़े की पट्टी से बाँधकर रखते हैं। कपाल के ऊपर के सारे बाल दोनों कनपटी के पास से तालू तक लपेटकर पट्टी को सिर के दोनों ओर ले जाते हैं; फिर कानों के ऊपर की दोनों समान लटों को उस पट्टी से लपेटकर पीछे की ओर के नीचे वाले बालों को एकत्र करके बाँध लेते हैं। ब्रह्मतालू के दोनों पार्श्व के अलग बाल पीछे की ओर के अवशिष्ट बालों के साथ अपने-आप लिपट जाते हैं। उससे ठाकुर के मस्तक पर कुल पाँच जटाएँ बन गई हैं।

गेरुए कपड़े की पट्टी को बहुत फटा-पुराना देखकर मैंने कहा— इस गेरुए कपड़े को फेंककर एक नया गेरुआ कपड़ा ले नहीं लेना चाहिए?

ठाकुर ने कहा— 'राम, राम! वैसा नहीं होता। यह साधारण कपड़ा नहीं है, महादेव के सिर का वस्त्र है। उन्होंने मेरे सिर पर बाँध दिया था।'

मैंने पूछा— कब, कहाँ पर बाँधे थे?

ठाकुर ने कहा— “श्रीवृन्दावन आते समय काशी में विश्वेश्वर के दर्शन करने गया था, वहाँ मन्दिर पर मेरे सिर में यह वस्त्र लपेट दिए।”

मैंने पूछा— महादेव ही क्या इस साधन-मार्ग के प्रवर्तक हैं?

ठाकुर ने कहा— “महादेव इस साधन के प्रवर्तक नहीं हैं; वे भी यह साधन करके सिद्ध हुए हैं। वेद में इस साधन के विषय में उल्लेख है। अनेक योगी, ऋषि इसका अवलम्बन करके सिद्ध हुए थे। इस साधन को कुछ समय नियमानुसार किया जा सके तो इसका लाभ पता चलता है। वीर्यधारण के साथ यह प्राणायाम और कुम्भक छः महीने करने से अन्यान्य सब प्रकार के प्राणायाम का फल प्राप्त किया जा सकता है। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप कर पाने से फिर कुछ करने की आवश्यकता नहीं होती। उससे प्राणायाम, कुम्भकादि सब हो जाता है। अलग से प्रयास नहीं करना पड़ता। इस पथ के समान सहज पथ और नहीं है। केवल श्वास-प्रश्वास में नाम-जप कर पाने से ही सब अवस्था प्राप्त होती है; फिर कुछ करना नहीं पड़ता!”

मैंने कहा— प्राणायाम की प्रणाली कई प्रकार की हैं, ऐसा सुना है। हमारे इस प्राणायाम के विषय में क्या किसी शास्त्र में उल्लेख है?

ठाकुर— शास्त्र में आठ प्रकार के प्राणायाम की प्रणाली बतलाई गई है; क्योंकि प्रथम शिक्षार्थियों के लिए वही आवश्यक है। हमारे इस प्राणायाम के विषय में बहुत संक्षेप में केवल किसी-किसी तापनीय में, उपनिषद् में उल्लेख है। इसे सिद्धगुरु से सीखें, शास्त्र में इस प्रकार का संकेत दिया गया है। चिरकाल से ही यह सिद्ध महर्षि लोगों के बीच बड़े गुप्त रूप से चला आ रहा है। शास्त्र देखकर इसका अभ्यास करने से अचानक मृत्यु भी हो सकती है। देखा-देखी इस प्राणायाम को करने की चेष्टा करके अनेक ही लोग कठिन रोग की पीड़ा से आक्रान्त हुए हैं। इस कारण एवं अन्य कई कारणों से यह चिरकाल से बहुत गोपनीय है। विश्वस्त पात्र देखकर ही सिद्ध महापुरुष यह प्राणायाम दिया करते हैं। अन्यान्य कुम्भक, प्राणायाम आदि से जो सब फल प्राप्त होते हैं, इस प्राणायाम का ठीक नियमानुसार अल्पकाल अभ्यास करने से ही वे सब फल प्राप्त हुआ करते हैं।

मैं— हम लोग का यह साधन तान्त्रिक है या वैदिक? किन-किन ऋषियों ने इस साधन का सर्वप्रथम अवलम्बन किया था?

ठाकुर— यह साधन आधुनिक नहीं, बहुत प्राचीन वैदिक साधन है। पहले महादेव, दत्तात्रेय आदि योगीश्वर यह साधन करके सिद्ध हुए थे।

मैं— साधन के समय जो विविध प्रकार की ज्योति, आकृति अथवा छाया का दर्शन होता है, वह सब क्या है? उस समय क्या करना चाहिए?

ठाकुर— जो कुछ दर्शन होता है, उसका बहुत आदर करना चाहिए, अनादर नहीं करते। दर्शन होने से सभी का खूब भक्तिपूर्वक सम्मान और पूजन करना चाहिए।

मैं— साधन करते-करते जो सब अवस्था प्राप्त होती है, किसी प्रकार के अपराध से उससे पतित होने पर पुनः साधन करके वह सब क्या प्राप्त की जा सकती है?

ठाकुर— हाँ, अवश्य, अवश्य; ठीक रीति के अनुसार साधना करने से वह पुनः प्राप्त होती है।

मैं— मेरा कौन-सा विशेष कल्याण करने के लिए मुझे श्रीवृन्दावन लाए हैं?

ठाकुर— विशेष क्या कल्याण हुआ है, वह क्या अभी सहज में समझ आता है? बाद में सब समझोगे।

## माता ठाकुरानी की पति-पूजा: वाराह का दाँत

सुना है, पिछले वर्ष ठाकुर चार-पाँच महीने कोलकाता में रहकर एक दिन अचानक शान्तिपुर चले गए। फिर किसी कारण से माता ठाकुरानी के साथ झगड़ा करके तुरन्त ही श्रीवृन्दावन के लिए निकल पड़े। रास्ते में काशीधाम में रुककर लगभग महीने-भर से अधिक समय तक वहाँ रहे। इस समय मेरी अनुपस्थिति में कोलकाता, शान्तिपुर और काशी में जो सब घटनाएँ हुई थीं, उसमें से कुछ एक श्री कुंजबिहारी गुह ठाकुरता की डायरी से एवं श्रीधर, माता ठाकुरानी व सतीश आदि के मुख से निःशंक रूप से ज्ञात होने पर लिखकर रख रहा हूँ—

जुलाई, सन् 1889 ई. में कोलकाता के सुकिया स्ट्रीट में 50/1 नं. का मकान ठाकुर के रहने के उद्देश्य से चार महीने के लिए किराए पर लिया गया। वहाँ वे शिष्यों के साथ सपरिवार आकर रहने लगे। इस मकान में माता ठाकुरानी प्रतिदिन निर्जन में ठाकुर की चरण पूजा करती थीं। दूब, चन्दन, फूल, तुलसी इत्यादि पूजा का सामान लेकर ठाकुर के आसन-गृह में प्रवेश करतीं। ठाकुर को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके उनके समीप बैठकर बड़ी लगन से उनके चरणों में तुलसी, चन्दनादि अर्पण करतीं। फिर उनके मस्तक में फूल, तुलसी प्रदान कर चन्दन का

टीका लगा देतीं। उसके बाद ठाकुर के मुख में कुछ मिठाई देकर उन्हें साष्टांग प्रणाम करतीं। ठाकुर भी उसी समय माता ठाकुरानी के मस्तक में चन्दन का टीका लगाकर, उनके सिर पर हाथ रखकर स्थिर भाव से कुछ समय ध्यानस्थ रहते। यह पूजा किए बिना माता ठाकुरानी कभी जल ग्रहण नहीं करतीं। पूजा आरम्भ करने के प्रथम दिन नानीजी ने दरवाजे की दरार से देखा, माता ठाकुरानी ठाकुर को साष्टांग प्रणाम करके पड़ी हैं। फिर ठाकुर अपने आसन पर बैठे-बैठे माता ठाकुरानी के सिर पर दोनों पैर रखकर स्थिर हैं। दोनों को बाह्य-चेतना नहीं थी।

इस मकान में ही वे अपने जन्मदिन झूलन-पूर्णिमा तिथि पर पहने हुए वस्त्र परित्याग करके डोर-कौपीन और बहिर्वास धारण कर धोती की लाँग से मुक्त हुए। अपने हाथ से चिट्ठी-पत्र लिखना इसी समय से बन्द हो गया। इस मकान में विभिन्न स्थानों के बहुत-से सम्मानित परिवारों और देश के उच्च शिक्षित माननीय सज्जनों ने अलौकिक रूप से ठाकुर से दीक्षा प्राप्त की।

इस मकान में रहते समय एक दिन भाव में उन्मत्त श्रीधर सूर्योदय के पहले स्नान करके वाराहरूपी भगवान् का दर्शन पाकर गंगा के किनारे-किनारे दौड़-धूप करने लगे। प्रातः से संध्या तक बिना कुछ खाए काशीपुर, वाराहनगर आदि स्थानों में दौड़-धूप करके संध्या के पूर्व नदी के किनारे एक पशु की हड्डी पड़ी हुई देखी। श्रीधर उसको तुरन्त उठाकर एकदम से दौड़ते हुए ठाकुर के पास आए। पसीने से लथपथ श्रीधर ने ठाकुर को साष्टांग प्रणाम करके हड्डी उनके सामने रखकर कहा, यह लो अपना दाँत। ठाकुर उसे हाथ में लेकर भावावेश में अभिभूत हो गए।

## देह की अनाहत ध्वनि

इस मकान में माता ठाकुरानी ठाकुर के पास बैठकर प्रायः रातभर उनको हवा करती थीं। कभी-कभी पैर दबाते-दबाते भाव-विभोर होकर ठाकुर के चरण-तल में पड़ी रहतीं। एक दिन माता ठाकुरानी ने बातों-बातों में वृन्दावन बाबू से कहा कि रात्रि में समय-समय पर गोस्वामीजी के शरीर से एक प्रकार की मधुर ध्वनि निकलती है। वह इतनी मधुर होती है कि सुनते-सुनते वे मुग्ध हो जाती हैं। यह बात सुनकर उस ध्वनि को सुनने का वृन्दावन बाबू को बड़ा कौतुहल हुआ। उन्होंने अवसर देखकर गहन रात्रि के समय ठाकुर के आसन-गृह में प्रवेश किया। ठाकुर तब ध्यानस्थ थे। वृन्दावन बाबू ठाकुर के चरण स्पर्श करके प्रणाम करने के बाद ध्वनि सुनने के लिए कान लगाए रहे। कुछ क्षण बाद ही ठाकुर ने सिर उठाकर कहा— **“क्या बात है वृन्दावन?”** वृन्दावन बाबू ने कहा— ‘महाराज! सुना था, आपके शरीर से एक प्रकार की ध्वनि निकलती है, वही सुनने के लिए

आया हूँ।' ठाकुर ने पूछा— **“अच्छा, सुन लिया तो?”** वृन्दावन बाबू ने कहा—  
'हाँ, यह ध्वनि सुनकर आश्चर्य हुआ। लगता है, ऐसी सुमधुर मनोहर ध्वनि जगत्  
में और नहीं है। यह किसकी ध्वनि है?'

ठाकुर ने कहा— **“इसे अनाहत ध्वनि कहते हैं। साधक लोगों के  
शरीर से यह ध्वनि उठती है। यह इतनी मधुर होती है कि साँप सुन  
ले तो सीधे साधक के शरीर पर चढ़ जाएगा।”**

इस समय पूर्व बंगाल के कोई विशिष्ट सज्जन ठाकुर से दीक्षा की प्रार्थना  
का संवाद देकर कोलकाता आने के लिए व्याकुल हैं। इस पर ठाकुर ने कहा—  
**“वे कोलकाता आ सकते हैं, किन्तु हमारे यहाँ उनका कोई काम नहीं है।”**  
कोई-कोई गुरुभाई उन सज्जन के विविध सदगुणों की बातें उठाकर ठाकुर से  
उनकी दीक्षा की आकांक्षा प्रकट करने लगे। ठाकुर ने थोड़ा मुस्कुराते हुए उन  
लोगों से कहा— **“जिनको साधन मिलने का है, उनको ठीक मिलेगा ही।  
ऐसा कोई यदि मेरे पास न आए, तो मैं उनके पास जाकर दीक्षा दूँगा।  
वे यदि मुझे बाँस लेकर भगाए, मार खाकर उनको दीक्षा देकर आऊँगा।”**

## **सूक्ष्म शरीर और परलोक के सम्बन्ध में श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर की कथा**

ठाकुर एक दिन श्री देवेन्द्रनाथ सामन्त, कुंजबिहारी गुह आदि गुरुभाइयों  
को लेकर आचार्य श्री नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के साथ महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के  
दर्शन करने गए। महर्षि ने उन्हें बड़े आदरपूर्वक पास में बैठाया एवं शिष्यों की  
कुशल-क्षेम पूछी। फिर कथावार्ता में उन्होंने कहा, 'बचपन से मुझे जानने की बड़ी  
इच्छा होती थी कि गरीब लोग किस प्रकार रहते हैं, उत्सवादि में क्या करते हैं।  
उसके लिए कई बार गुप्त रूप से भिन्न-भिन्न वेश में उनके घर जाता करता था।  
उन लोगों के अनजाने में सब देखकर आ जाता था। अब भगवान् दया करके मुझे  
साथ लेकर विभिन्न जगह घुमाते हैं। अभी तुम लोगों के आने के पहले ही उनके  
साथ कई जगह घूमकर आया हूँ। उनकी अपार दया है।'

बातों-बातों में ठाकुर ने पूछा— **“मृत्यु के बाद मनुष्य कहाँ जाता है?”**  
महर्षि ने कहा— 'क्यों? जो सब ग्रह-नक्षत्र देखते हो, उसमें जाता है।' परलोक के  
सम्बन्ध में इसी प्रकार की अनेक बातों के पश्चात् महर्षि को प्रणाम करके ठाकुर  
संध्या के बाद निवास-स्थान पर आ गए।

## जातिभेद के सम्बन्ध में ठाकुर का उपदेश

हमारे गुरुभाई श्री राखालचन्द्र राय बरीशाल जाकर वहाँ के गुरुभाइयों के पास प्रचार करने लगे कि 'जातिभेद भीतर में रहने से हम लोगों में से किसी की इस साधन में थोड़ी-भी उन्नति नहीं होगी', ठाकुर ने इस प्रकार कहा है; इस बात को लेकर बरीशाल के गुरुभाइयों के बीच नाना प्रकार की आलोचना होने लगी। श्री शिवचन्द्र गुह ने इस विषय में स्पष्ट जानने के लिए कुंज बाबू को पत्र लिखा। कुंज बाबू ने ठाकुर को जब वह पत्र सुनाया तो ठाकुर ने तुरन्त उनके ही द्वारा निम्नलिखित पत्र शिव बाबू के पास भिजवाया—

पत्र की नकल—

26 सितम्बर, 1889 ई.

50/1, सुकिया स्ट्रीट, कोलकाता।

परम पूज्य श्री शिवचन्द्र गुह,

श्रीचरण कमलेषु,

जातिभेद के सम्बन्ध में बरीशाल में इस समय जो गड़बड़ी हुई है, उसके सम्बन्ध में परम पूज्य श्रीयुक्तेश्वर गोस्वामीजी से पूछने पर उन्होंने मुझसे तुरन्त जो लिखने को कहा, उसे उनके सम्मुख ही लिख रहा हूँ— "सत्त्व, रजः, तमः ये तीन गुण हैं; ये तीन ही वास्तविक जातियाँ हैं। इन तीनों गुणों का त्याग किए बिना जाति का परित्याग नहीं किया जा सकता। एक बात मैं कहा जाए तो अभिमान ही जाति है। इस अभिमान का त्याग किए बिना जाति का परित्याग नहीं होता। जिस किसी के भी हाथ का भोजन कर लेने से ही जातिभेद नहीं जाता। इस प्रकार का आचरण जातिभेद परित्याग का उपाय नहीं है। अभिमान त्याग करो, समदर्शी बनो, जातिभेद अपने-आप चला जाएगा। जो जिस सम्प्रदाय में हैं, वे उसी सम्प्रदाय की आचार पद्धति के अनुसार चलें। अवस्था हुए बिना देखा-देखी कोई कार्य नहीं करें। साधना के उद्देश्य से जीवन गठन होने पर जैसा जीवन होगा, बाहर वैसा ही प्रकट होगा। भीतर और बाहर एक होना ही यथार्थ जीवन है। अतएव विपक्ष में न जाकर साधना की ओर अग्रसर हों। इति—

सेवकाधम

श्री कुंजबिहारी गुह।

श्री कुंजबिहारी ने लिखा है— 'सुकिया स्ट्रीट, ठाकुर के निवास-स्थान पर एक दिन मध्याह्न के समय वहाँ के सारे गुरुभाइयों को और विलायत से लौटे श्री द्विजदास दत्त आदि को भोजन का निमन्त्रण दिया गया। हम सभी एक साथ नीचे वाले कमरे के बरामदे में भोजन करने बैठे। इसी बीच जातिभेद की बात उठी;

ठाकुर ने कहा— “गुरु के घर पर एक पंक्ति में बैठकर भोजन करने में दोष नहीं है। मैं यदि तुम लोगों के गाँव में जाऊँ, तब इस प्रकार नहीं करना। सभी को सामाजिक नियम के अनुसार चलना होगा।”

## ठाकुर का स्टार-थियेटर दर्शन

एक दिन ‘स्टार-थियेटर’ के श्री गिरीशचन्द्र घोष ने ‘चैतन्यलीला’ देखने के लिए शिष्यों सहित ठाकुर को निमन्त्रण दिया। संध्या के बाद ठाकुर सबको लेकर यथासमय नाट्यशाला में पहुँचे। उसके बाद थियेटर के अध्यक्ष श्री अमृतलाल बसु ने बड़े आदरपूर्वक उन लोगों की अगवानी करके सबको रंगमंच के सामने बैठाया। ठाकुर अभिनय देखते-देखते भावावेश में अभिभूत हो गए।

केशव कुरु करुणा दीने कुंज काननचारी ।  
माधव-मनोमोहन, मोहन मुरलीधारी ।  
हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल मन आमार ।  
ब्रजकिशोर कालियहर कातर भयभंजन;  
नयन बाँका बाँका शिखिपाखा,  
राधिका-हृदि-रंजन,  
गोवर्धन-धारण, वन-कुसुम-भूषण,  
दामोदर कंस दर्पहारी  
श्याम रास-रस-विहारी  
हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल मन आमार ।

(बंगला शब्दार्थ— बाँका— तिरछा, शिखिपाखा— मयूरपंख, आमार— मेरा।)

यह गान आरम्भ होते ही ठाकुर भाव संवरण न कर पाने से एकदम उछल पड़े। ‘जय शचीनन्दन, जय शचीनन्दन’ कहते-कहते उद्दाम नृत्य करने लगे। तब भाव-विभोर गुरुभाई भी सुधबुध खो बैठे। वे लोग बारम्बार हरिध्वनि करके ठाकुर के चारों ओर नृत्य करने लगे। ‘गड़बड़ हो रहा है, गड़बड़ हो रहा है; रुक जाओ, रुक जाओ’ इत्यादि शब्द जगह-जगह से उठने लगे। इसी समय अमृतलाल बसु जी रंगमंच पर उपस्थित होकर, आज नाटक कराने का मेरा उद्देश्य सार्थक हो गया, आज मैं धन्य हो गया— ऐसी कई बातें वे बार-बार कहने लगे। फिर ताली बजाते हुए ‘हरिबोल हरिबोल’ कहकर वे अभिनेत्रियों को उत्साहित करने लगे। तुरन्त फिर गान आरम्भ हो गया—

चन्द्रकिरण अंगे, नम वामनरूपीधारी ।  
गोपीगण-मनोमोहन, मंजु-कुंजचारी ॥

जय राधे, श्रीराधे ।  
ब्रजबालकसंग, मदन-मानभंग ।  
दैत्यछलन नारायण, सुरगण-भयहारी,  
ब्रजविहारी गोपनारी-मान-भिखारी ।  
जय राधे, श्री राधे ॥

इस समय भावावेश से परिपूर्ण नृत्य-गीत से दर्शक मण्डली का चित्त भी अभिभूत हो गया। देखते-देखते नाट्य-मन्दिर में बड़ा कोलाहल मच गया। हरिमोहन स्वामीजी भावावेश में दोनों हाथ ऊपर करके नृत्य करने लगे। भक्तप्रवर श्रीधर क्षणभर के लिए ठाकुर की ओर एकटक देखकर काँपते हुए बेहोश हो गए। फिर चेतना लौटने पर उच्च स्वर में हरिबोल कहते-कहते उन्होंने नाना प्रकार से नृत्य करने के साथ सभी को मतवाला कर दिया। ठाकुर की बाहु संचानलपूर्वक मधुर हरिध्वनि की तड़ित् झंकार से सभी का अन्तःकरण काँप उठा। नाटक का अभिनय स्थगित रखकर इस प्रकार बहुत समय तक कीर्तन का उत्सव हुआ। उसके बाद सभी अत्यन्त प्रसन्न मन से अपने घर लौट गए।

## वेश्या द्वारा समाज का परिणाम

कोलकाता की कोई एक प्रसिद्ध अभिनेत्री, वेश्या थी। उनकी एक कन्या थी, वह बेथुन स्कूल में पढ़ती थी। ब्राह्म-समाज के किसी एक व्यक्ति के साथ उसके विवाह का प्रस्ताव हुआ। ठाकुर ने वह सुनकर कहा—

**“वेश्या की लड़की को समाज में लेना कभी भी उचित नहीं है। इससे समाज कलुषित होगा। यद्यपि पहले खूब भली एवं सच्चरित्र लगे, किन्तु समय में भीतर का बीज अंकुरित होने से सब प्रगट हो जाता है।”**

ठाकुर इस विषय को समझाने के लिए ‘नारद-पंचरात्र’ से वेश्या की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक बातें कही।

## रोग अपने-आप हटता है, अविश्वासी के लिए उपाय क्या है?

गुरुभाई श्री श्रीशचन्द्र मुखोपाध्याय दीर्घकाल दुःसह रोग भोगकर मरणासन्न अवस्था में पड़े हैं। बहुतों ने उनके जीवन की आशा छोड़ दी। एक बार रात्रि में मृत्यु के सारे लक्षण प्रगट हो गए। श्रीश ने व्याकुल होकर साथियों से कहा—‘अभी मेरी मृत्यु हो जाएगी। इस समय एक बार दया करके तुम लोग ठाकुर को लाकर दिखला दो।’ श्री कुंजबिहारी गुह तुरन्त रात्रि में 2 बजे ही ठाकुर के पास दौड़े। ठाकुर ने श्रीश का कथन और उसकी दशा के सम्बन्ध में सुनकर कहा— **“जाकर**



उनसे कहो, कोई डर नहीं है। अस्वस्थता दूर हो जाएगी। घबराएँ नहीं।”

कुछ ही दिन बाद श्रीश की अस्वस्थता दूर हो गई। तब एक दिन ठाकुर गंगास्नान करके आते समय श्रीश को देखने उनके घर पहुँच गए। वहाँ कुंज बाबू को ज्वर से पीड़ित देखकर उन्होंने पूछा— **“तुम्हारी चिकित्सा अभी कौन कर रहा है?”** कुंज बाबू ने एक विद्वान् चिकित्सक का नाम कहा। ठाकुर ने कहा— **“डॉक्टर का सामर्थ्य नहीं है, जो तुम्हारा रोग दूर कर दे। जब दूर होगा, अपने-आप ही होगा। देखा तो, श्रीश का रोग कौन दूर कर पाया?”**

कुंज बाबू ने कहा— ‘आपने ही तो कहा था कि औषधि के सेवन से बहुत-से कर्म-भोग कट जाते हैं।’

ठाकुर ने कहा— **“हाँ, वह ठीक है।”**

श्रीचरण चक्रवर्ती ने कहा— ‘मेरा अविश्वास तो किसी प्रकार से जाता नहीं— क्या करूँ?’

ठाकुर— **जिन्होंने साधन प्राप्त किया है, उन सबने भीतर कुछ-न-कुछ विश्वास की वस्तु प्राप्त की है। अविश्वास के समय उसका स्मरण करने से और उसको पकड़े रहने से विशेष उपकार होता है।**

फिर कहा— **“अविश्वास क्या, प्रलोभन के समय भी यदि पाँच-छः बार नाम-जप किया जा सके तो भी बचाव है; किन्तु कैसा दुर्भाग्य है, वह भी कोई कर नहीं पाता।”**

पीड़ित कुंज बाबू ने कहा— ‘मैं नाम-जप कर ही नहीं पाता।’

ठाकुर ने कहा— **“नाम-जप करने की इच्छा होने से हो जाता है।”**

बातों-बातों में ठाकुर ने कहा— **हमारा जो योग है, वह नाम का योग है। गम्भीरनाथ बाबा से श्वास-प्रश्वास में नाम-जप की बात सुनी थी। 20 वर्ष बाद उस बात का अर्थ समझा। माँझी और साधारण लोगों के मुख से भी तो कितनी बार सुना है—**

**मन पगला रे हर दम में गुरुजी का नाम लेओ।**

**दम दम में लेओ रे नाम कामाई नहीं दो।**

एकजन ने पूछा— **हरिदास ठाकुर एक दिन में किस प्रकार तीन लाख नाम जपते थे?**

ठाकुर ने कहा— **“एक लाख उच्च स्वर में, एक लाख मन-ही-मन में और एक लाख उनकी आत्मा में अपने-आप होता था।”**

कुंज बाबू ने लिखा है, इस मकान में रहते समय अत्यन्त अर्थाभाव था। बिछौने के अभाव से माता ठाकुरानी एक फटी हुई चटाई के ऊपर हाथ का ही तकिया लगाकर शयन करती थीं। ठाकुर के व्यवहार के लिए बहुत कम मूल्य का केवल एक देशी कम्बल था। वे शयन के समय ग्रन्थ के ऊपर एक बहिर्वास बिछाकर उस पर ही सिर रखते थे। कुंज बाबू एक दिन ठाकुर के व्यवहार के लिए एक तकिया बनवाकर ले लाए। उस पर वृन्दावन बाबू ने ठाकुर के सामने ही कुंज बाबू से उपहास करके कहा, 'वे संन्यास लिए हैं, तुम उनके लिए तकिया लाए हो? अच्छा, एक गद्दा और एक छाता क्यों नहीं ले आए?' कुंज बाबू चुप रहकर दुःखी मन से सोचने लगे— 'इस बात के बाद लगता है, ठाकुर अब इस तकिये का उपयोग नहीं करेंगे।' किन्तु कुंज बाबू का अत्यन्त आग्रह समझकर दयालु ठाकुर प्रतिदिन ही शयन के समय उसे लेते थे।

जो मकान किराए पर लिए थे, वह चार महीने के लिए लिया गया था। निर्दिष्ट समय पूरा होते देखकर ठाकुर ने कम किराए का एक मकान देखने के लिए सबको कहा। खोज करने के बाद गुरुभाइयों ने आकर बतलाया कि कम किराए के मकान का जुगाड़ नहीं हो रहा है, तब ठाकुर ने कहा— **“एक खपरैल वाला मकान होने से भी काम हो जाएगा।”** मणि बाबू ने किराए का मकान देखने का भार ग्रहण किया।

अगले दिन प्रातः लगभग 8 बजे ठाकुर केवल श्रीधर को लेकर अचानक मकान से बाहर निकल पड़े। 10 बजे मकान में खबर आई— वे शान्तिपुर चले गए। इस संवाद से सभी बहुत दुःखी हो गए। किसी से बिना कुछ कहे, अचानक इस प्रकार ठाकुर के जाने से सब लोग भिन्न-भिन्न कारण का अनुमान लगाने लगे। अगले दिन गुरुभाई श्री पशुपतिनाथ मुखोपाध्याय जी की सहायता से बाजार का 80 रुपये का ऋण परिशोध हुआ। माता ठाकुरानी भी उसी समय नानीजी और कुतु को लेकर योगजीवन एवं कुंज बाबू के साथ शान्तिपुर के लिए निकल पड़ीं। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, दादी माँ तीव्र उन्माद रोग से भयंकर सनक गई हैं। ठाकुर को देखकर वे समय-समय पर थोड़ा शान्त रहती हैं।

दादी माँ का भयंकर पागलपन थोड़ा कम होने पर भी समय-समय पर वे शयन-कक्ष में मल-मूत्र त्यागकर उसे सब दीवाल और फर्श पर छिड़क देती हैं। प्रातः माता ठाकुरानी उसे स्वच्छ करती हैं। नानीजी को यह बिल्कुल सहन नहीं होता। वे इस बात को लेकर कई बार दादी माँ के साथ झगड़ा करतीं। एक दिन प्रातः इन सब अनाचार, अत्याचार को लेकर दोनों के बीच भयंकर झगड़ा हो गया। तब ठाकुर ने दो तल्ले पर अपने रहने के कमरे में दादी माँ को ले जाना चाहा। दादी माँ की सेवा-शुश्रूषा, मल-मूत्र की सफाई इत्यादि सब स्वयं किया करेंगे,

कहने लगे। अकारण इस दुर्भोग को अपने सिर पर क्यों लेते हैं, यह कहकर माता ठाकुरानी ठाकुर की बात पर आपत्ति करने लगीं। नानीजी भी उसमें सम्मिलित होकर भयंकर झगड़ा करने लगीं। इस समय एकाएक आसन से उठकर ठाकुर ने माता ठाकुरानी से कहा— **“मैं अभी काशी चला, किराए के लिए आठ रुपये दो।”**

एकाएक ठाकुर को काशी जाने के लिए उद्यत देखकर माता ठाकुरानी डर गई एवं उनके संकल्प में बाधा देने के अभिप्राय से रुपये देने में टालमटोल करके कहने लगीं— ‘तो फिर मुझे भी साथ में लो।’ ठाकुर तब भयंकर क्रुद्ध हुए एवं माता ठाकुरानी को धमकाते हुए डण्डे से ‘पोर्टमेंट’ के ऊपर बारम्बार आघात करने लगे। माता ठाकुरानी ने तुरन्त बॉक्स की चाबी ठाकुर के सामने फेंककर कहा— ‘बॉक्स तोड़ो नहीं, ये लो चाबी।’ ठाकुर ने बॉक्स खोलकर आठ रुपये गिनकर ले लिया। फिर माता ठाकुरानी के पास चाबी फेंककर तुरन्त अकेले ही राणाघाट की ओर निकल पड़े। वहाँ पहुँचकर नदी पार करते समय उन्होंने माझी के हाथ में एक रुपया देकर कहा— **“कुछ समय बाद यहाँ एक बाबाजी मुझे ढूँढने आएँगे, उनको ये रुपया देकर कहना, मैं काशी जा रहा हूँ— वे जिससे काशी आकर मेरे साथ भेंट कर लें!”**

ठाकुर जब घर से निकल रहे थे, श्रीधर तब किसी कारण से बाहर गए थे। घर आकर श्रीधर ने जैसे ही सुना, ठाकुर काशी चले गए हैं, वे तुरन्त उसी अवस्था में ही पागल के समान दौड़कर राणाघाट की ओर गए। नदी के किनारे पहुँचकर, पार करने के लिए घाट पर पहुँचते ही माझी ने उनको देखकर कहा— ‘कुछ क्षण पहले एक साधु यहाँ से स्टेशन गए। वे काशी जाएँगे। मेरे हाथ में एक रुपया देकर उन्होंने कहा, कुछ समय में यहाँ एक बाबाजी मेरी खोज में आएँगे, उनको ये रुपया देकर कहना, मैं काशी जा रहा हूँ; वे भी काशी पहुँचकर मेरे साथ भेंट करें।’

श्रीधर ने माझी से कहा— ‘हाँ, वे मेरे गुरु हैं, मैं उन्हीं की खोज में आया हूँ।’ माझी ने तुरन्त श्रीधर के हाथ में रुपया दे दिया। तब श्रीधर नदी पार करके शीघ्र ही राणाघाट स्टेशन पहुँचकर देखे— यात्रियों से भरी एक ट्रेन स्टेशन पर है। इधर-उधर ताकते-ताकते ठाकुर को गाड़ी के भीतर देख लिए। ठाकुर ने भी श्रीधर को देखकर पुकारते हुए कहा— **“श्रीधर! मैं काशी जा रहा हूँ। तुम कोलकाता जाकर कुंज के घर में ठहरना। वहाँ से रुपये संग्रह करके काशी आना, मेरे साथ भेंट होगी। घबराओ मत।”**

देखते-देखते गाड़ी छूट गई। श्रीधर भी कोलकाता जाकर कुंज बाबू के घर में ठहरे। वहाँ रेल-किराया के लिए रुपये संग्रह करके अगले दिन ही काशी के लिए निकल पड़े। कुछ दिन बाद माता ठाकुरानी भी नानीजी एवं योगजीवन आदि

को लेकर कोलकाता में श्री उमेशचन्द्र दत्त जी के निवास-स्थान पर पहुँच गईं। वहाँ कुछ दिन रहकर कुंज बाबू एवं श्री विधुभूषण मजूमदार आदि के साथ भेंट करके काशी जाने की सुव्यवस्था कर लीं। इसी समय एक दिन विष्णु बाबू ने बंगाल फोटोग्राफर को लाकर माता ठाकुरानी का फोटो खिंचवा लिया। इस फोटो को अनेक गुरुभाइयों ने बहुत आग्रह के साथ ग्रहण किया। माता ठाकुरानी शीघ्र ही योगजीवन और देवेन्द्र चक्रवर्ती आदि गुरुभाइयों के साथ काशी चली गईं।

## ठाकुर की काशीधाम में अवस्थिति

ठाकुर श्रीकाशीधाम पहुँचकर पहले काकिनिया महाराज के छत्र में ठहरे। कुछ दिन वहाँ रहकर अगस्त्य-कुण्ड के समीप मानिकतला की माताजी के किराए के मकान में गए। माता ठाकुरानी भी उस समय योगजीवन को लेकर कुछ एक गुरुभाइयों के साथ उसी मकान में उपस्थित हुईं। मकान में 10-12 लोग हो गए। आहारत्यागी माताजी चुल्लूभर भी पानी ग्रहण किए बिना स्वस्थ रहकर प्रफुल्लित मन से प्रतिदिन सब लोगों का परिवेशनादि समस्त सेवा का कार्य करने लगीं। ठाकुर काशी में महीनेभर से अधिक रहे। उनकी उस समय की अद्भुत घटनावली लिखने में बहुत बाधा देखकर मैंने उसे छोड़ दिया। कुछ साधारण घटनाओं का थोड़ा-बहुत उल्लेख कर रहा हूँ।

ठाकुर को संन्यासीवेश में देखकर शहर के अंग्रेजी-शिक्षित वकील, अध्यापक आदि बंगाली बाबू लोग नाना प्रकार से उपहास करने लगे। एक दिन श्री कृष्णानन्द स्वामी और विख्यात श्रीनाथ राय आदि लोगों ने धर्म-सभा के अधिवेशन में ठाकुर को निमन्त्रित किया। ठाकुर यथासमय सभा-स्थल में उपस्थित हुए, सब लोगों ने आदर-सत्कार करके उनको संन्यासी-मण्डली की अग्रपंक्ति में बैठाया। अनेक सम्मानित लोगों के समागम से सभा-स्थल परिपूर्ण हो गया। अधिवेशन का कार्य समापन के बाद संकीर्तन का आयोजन होने लगा। ठाकुर अस्वस्थ रहने के कारण निवास-स्थान पर जाने की चेष्टा करने लगे; लेकिन कार्यकर्त्ताओं के विशेष अनुरोध से वे संकीर्तन में रुकने के लिए सहमत हो गए। कुछ समय बाद कीर्तन आरम्भ हुआ। ठाकुर कुछ क्षण शान्त बैठे रहे। फिर उच्च स्वर में **'हरिबोल, हरिबोल'** कहकर नृत्य करने लगे। देखते-देखते संकीर्तन में महाभाव की बाढ़ आ गई। सभी दर्शकवृन्द उसमें गोता लगाने लगे। शीघ्र ही ठाकुर समाधिस्थ हो गए। कृष्णानन्द स्वामी और सभा के अन्यान्य प्रतिष्ठित व्यक्तिगण आकर ठाकुर की पदधूलि लेने लगे। तब विरोधी बंगाली बाबू लोग भी ठाकुर को प्रणाम करके उनकी अलौकिक शक्ति की प्रशंसा करते-करते चले गए। समाधि भंग होने पर ठाकुर निवास-स्थान पर लौट आए।

## विश्वेश्वर की आरती दर्शन

ठाकुर एक दिन संध्या के कुछ पूर्व विश्वेश्वर की आरती दर्शन करने के लिए मन्दिर पहुँचे। मन्दिर में बहुत भीड़ होने के कारण भीतर प्रवेश न कर पाने से मण्डप के एक किनारे बैठे रहे। रात्रि में लगभग 8 बजे आरती आरम्भ हुई। ठाकुर दूर से ही हाथ जोड़कर खड़े-खड़े आरती दर्शन करने लगे। उनका सारा शरीर थरथर काँपने लगा। फिर उच्च स्वर में **'बम् भोला, बम् भोला'** कहकर वे नृत्य करने लगे। चारों ओर सब लोगों के आनन्द का मधुर कोलाहल होने लगा। आरती दर्शन न करके सब लोग उल्लसित भाव से ठाकुर की ओर देखने लगे। ठाकुर नृत्य करते-करते विश्वेश्वर की ओर अग्रसर होते-होते दरवाजे तक आकर फिर पीछे की ओर हटने लगे। तब पण्डों ने आग्रहपूर्वक वहाँ अबाध गति से नृत्य करने की व्यवस्था कर दी। ठाकुर **'बम् भोले, बम् भोले'** की मधुर ध्वनि से सभी को मुग्ध करते हुए उदाम नृत्य करने लगे। श्रीधर, स्वामीजी आदि लोग भी उन्मत्त होकर जय-ध्वनि देते-देते ठाकुर के दोनों ओर नृत्य करना आरम्भ कर दिए। सेवकगण बड़े उत्साह के साथ उच्च स्वर में स्तव-पाठ करके आरती करने लगे। ठाकुर दर्शन करते-करते भावावेश में अचेत हो गए। ठाकुर का दर्शन और स्पर्श करने के लिए लोगों की भीड़ जमा हो गई। रात्रि में ठाकुर बहुत विलम्ब से निवास-स्थान पर लौटे।

अन्य एक दिन ठाकुर विश्वेश्वर की आरती देखने मन्दिर के भीतर गए। वहाँ एक कोने में खड़े रहकर दर्शन करने लगे। विश्वेश्वर के दर्शन करते-करते ठाकुर भावावेश में अधीर हो गए; सिसक-सिसककर बालक के समान रोने लगे। तब आश्चर्यजनक रूप से ठाकुर के दोनों नेत्रों से बड़े वेग के साथ अश्रु निकलकर विश्वेश्वर के सामने गिरने लगे। इस अद्भुत घटना को देखकर पण्डे, पुजारी और दर्शकवृन्द आश्चर्य से ठाकुर की ओर ताकते रहे। निर्दिष्ट समय बीत जाने के बाद भी उन लोगों ने आनन्द, उत्साह के आवेग में आधा घण्टा अधिक आरती की।

इसके बाद प्रतिदिन बड़ी संख्या में लोग आकर ठाकुर का दर्शन करने लगे। ठाकुर किस दिन कब विश्वेश्वर के दर्शन के लिए जाएँगे, बंगाली टोला के निवासी प्रतिदिन आकर खबर ले जाते।

## भास्करानन्द स्वामी एवं पाल महोदय

ठाकुर एक दिन भास्करानन्द स्वामी के दर्शन करने शिष्यों के साथ दुर्गाबाड़ी गए। एक व्यक्ति ने ठाकुर को स्वामीजी के पास जाने से रोकते हुए कहा, 'वहाँ मत जाइए। इस समय स्वामीजी के साथ भेंट नहीं होगी, वे ध्यानस्थ हैं।'

ठाकुर उसको कुछ कहे बिना ही एक वृक्ष के नीचे आँखें बन्द करके बैठे रहे। दो-एक मिनट के भीतर ही स्वामीजी मुस्कराते हुए 'आनन्द है, आनन्द है' कहते-कहते ठाकुर के सामने पहुँच गए। स्वामीजी को साष्टांग प्रणाम करने के लिए ठाकुर जैसे ही उठने लगे, स्वामीजी ने तुरन्त उन्हें छाती से लगा लिया। परस्पर आलिंगन करने से दोनों को ही बाह्यज्ञान न रहा। इसी प्रकार स्तब्ध अवस्था में बहुत समय बीत गया। उसके बाद दो-एक बातें करके ठाकुर निवास-स्थान पर आ गए।

ठाकुर के मुख से श्री द्वारकानाथ पाल की बातें कई बार सुनी है। ठाकुर ने कहा है, 'ये एक कुशल दार्शनिक पण्डित थे; सब त्याग करके दीन-हीन कंगाल की भाँति काशी के एक प्रान्त, दुर्गाबाड़ी की ओर एक निर्जन बागान में रहते हैं। लोगों के आगमन से ऐसा न हो कि भजन में विघ्न आए, इसलिए वे कुटीर के द्वार पर बाहर से ताला लगा दिया करते हैं; फिर एक छोटी खिड़की से भीतर प्रवेश करते हैं। उसके बाद उसे भी बन्द करके निर्जन कमरे में दिनभर एक आसन पर ध्यान-मग्न रहते हैं।' ठाकुर उनके दर्शन के अभिप्राय से उनके आश्रम में पहुँचे; कुटीर का द्वार बन्द देखकर दीवाल पर अपना नाम व ठिकाना लिखकर आ गए। अगले दिन दुबले-पतले वृद्ध पाल महोदय ठाकुर के साथ भेंट करने अगस्त्य-कुण्ड में आए। ठाकुर जितने दिन काशी में थे, पाल महोदय प्रायः ही आते थे। उनके आगमन से ठाकुर के निवास-स्थान पर शिक्षित लोगों का अत्यधिक समागम होने लगा। सनातन धर्म के सूक्ष्म तत्त्व की आलोचना में और समस्त दर्शनशास्त्र में उनका प्रगाढ़ पाण्डित्य देखकर उच्च शिक्षित व्यक्तिगण चकित हो गए। शास्त्र अभ्रान्त है, यह उनका दृढ़ विश्वास है। विशुद्धानन्द स्वामी, पूर्णानन्द स्वामी इत्यादि और भी कई संन्यासी एवं परमहंस के साथ भेंट करके, काशी का प्रयोजन पूर्ण होने पर ठाकुर फैजाबाद के लिए निकल पड़े।

## परमहंसजी का आह्वान

अवसर देखकर ठाकुर से पूछा, 'माता ठाकुरानी के साथ झगड़ा होने से ही क्या आप शान्तिपुर छोड़कर आए हैं?'

ठाकुर— मैं अपनी इच्छा से कुछ नहीं करता। परमहंसजी के आह्वान से ही आया हूँ। झगड़े के समय उन्होंने कहा, 'इसी समय तुम काशी चले जाओ। काशी में मेरे से भेंट न होने पर अयोध्या जाना। वहाँ भी भेंट न हो तो श्रीवृन्दावन जाना। श्रीवृन्दावन में मेरे साथ भेंट होगी।'

**झगड़े के समय जैसे ही परमहंसजी का आदेश मिला, मैं निकल पड़ा।**

एक दिन ठाकुर शौच के लिए गए थे; कोई समारोह का संकीर्तन कुंज के पास वाले रास्ते से निकला। ठाकुर उसे सुनते ही शौचालय से 'हरिबोल, हरिबोल' कहते-कहते दौड़कर बाहर निकल पड़े। संकीर्तन के साथ-साथ बहुत समय तक आनन्द करके कुंज में आए। तब अचानक उन्हें स्मरण हुआ, शौच के बाद जल से धोया नहीं।

अन्य एक दिन भोजन करते-करते खोल-करताल की आवाज सुनकर बिना मुँह धोए ही दौड़कर बाहर आ गए। संकीर्तन उत्सव में आनन्द करके अपराह्न में निवास-स्थान पर लौटे। तब मुख-प्रक्षालनादि किए।

गुरु के आह्वान के सिवा इस प्रकार का विचारहीन अद्भुत आवेग मैं नहीं समझता ठाकुर का अन्य किसी में हो सकता है।

## **गुरुभाई के संस्पर्श से विलुप्त गुरु-शक्ति का स्फुरण**

कोई यदि कभी सिद्ध महात्मा अथवा महापुरुष से दीक्षा ग्रहण करके इष्ट मन्त्र भूल जाते हैं, गुरु को भी बिल्कुल भूल जाते हैं, तो उनके किसी गुरुभाई के साथ किसी प्रकार से केवल थोड़ा संस्पर्श होने से भी गुरु-शक्ति की कुछ क्रिया उनके भीतर हुआ करती है; ठाकुर के मुख से इस प्रकार का वृत्तान्त सुनकर यह बात समझ में आई। ठाकुर ने वृत्तान्त इस प्रकार कहा—

“गया में एक समृद्धशाली सज्जन ने बचपन में किसी सिद्ध महात्मा से दीक्षा ली थी। बाद में रुपये-पैसे, धन-सम्पत्ति के सम्पर्क से वे साधन-भजन, इष्ट मन्त्र, यहाँ तक कि गुरु को भी भूल गए; क्रमशः घोर विषयी हो गए। एक दिन एक उदासी साधु ने उनके द्वार पर पहुँचकर कहा, 'हम भूखे हैं, हमको कुछ भोजन दीजिए।' घर के नौकर ने एक मुट्ठी चावल लाकर साधु से कहा, 'यह लो, चले जाओ।' साधु ने कहा, 'दाना मैं नहीं माँगता, हमको थोड़ा भोजन दो।' बाबू ने साधु की बात सुनकर नौकर को धमकाते हुए कहा, 'वह क्या गड़बड़ कर रहा है? अच्छा उपद्रव है! उसको धक्का मारकर भगा न।' नौकर तुरन्त साधु को धक्का मार-मारकर भगाने लगा। तब साधु बैठ गया एवं कहने लगा 'हम बहुत भूखे हैं, जरा भोजन दे दीजिए।' साधु की जिद देखकर बाबू एकदम आग-बबूला हो उठे; 'ठहर बदमाश, भोजन देता हूँ' कहकर उन्होंने साधु को पकड़ लिया, फिर लात, घूँसा, चाँटा मारते-मारते उसको धराशायी कर दिया। साधु 'हाय रे गुरुजी' कहकर चिल्ला उठे।

इस समय बाबू को क्या हुआ भगवान् जाने; वे लात मारते-मारते अचानक रुककर खड़े हो गए, थरथर काँपते हुए गिरकर साधु को जकड़ लिए एवं बारम्बार साधु के चरणों में गिरकर रोते-रोते कहने लगे, 'अरे तुम कौन हो, अरे तुम कौन हो?' साधु ने उनके शरीर पर हाथ फेरते-फेरते कहा, 'अरे, हम तुम्हारे गुरुभाई हैं, हम तुम्हारे गुरुभाई हैं।' यह कहकर साधु तुरन्त दौड़कर एक ओर चले गए। फिर बाबू बहुत चेष्टा करके भी उनको नहीं ढूँढ़ पाए। इस घटना के बाद से बाबू का स्वभाव अद्भुत रूप से परिवर्तित हो गया। वे साधन-भजन करने लगे, अल्प दिनों के भीतर ही वे सदाचारी, निष्ठावान्, भजनानन्दी हो गए।"

### नन्दोत्सवः दर्शन के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर

8 अगस्त, शुक्रवार। आज जन्माष्टमी है। पूरा वृन्दावन आज बड़े आनन्दोत्सव में उन्मत्त है, ठाकुर के साथ हम लोग शृंगार-वट गए। श्री राखाल बाबू, प्रबोध बाबू, दक्ष बाबू एवं अभय बाबू भी हमारे साथ गए। शृंगार-वट के आँगन को लोगों से परिपूर्ण देखा। हाँडियों में दही ला-लाकर उसमें बहुत सारी हल्दी मिलाकर ब्रजवासी और वैष्णव बाबाजी लोग उसे उछाल-उछालकर चारों ओर फेंकने लगे। सब लोग आनन्दपूर्वक एक-दूसरे के अंग में पीला दही मलकर बड़े उत्साह के साथ नृत्य करने लगे। नन्दोत्सव का महासंकीर्तन आरम्भ हो गया। क्रमशः कीर्तन खूब जम गया। उत्साह के साथ बाबाजी लोग नृत्य करते-करते आँगन में फिसल-फिसलकर 'धम् धम्' गिरने लगे। श्रीधर सर्वांग में पीला दही मलकर ब्रजवासियों के साथ उन्मत्त हो गए। वे समय-समय पर दोनों हाथ उठाकर आकाश की ओर दृष्टि करके 'जय नितार्ई, जय नितार्ई' कहते-कहते गिरने लगे। ठाकुर भावावेश में बालक के समान संकीर्तन-स्थल पर इधर-इधर दौड़ने लगे। फिर भूमि पर लेटकर साष्टांग प्रणाम करके अचेत हो गए। ठाकुर लगभग तीन घण्टे तक समाधिस्थ अवस्था में रहे। अपराह्न में हम सभी यमुना में स्नान करके कुंज में आए। श्रीधर कीर्तन-स्थल में नाना प्रकार से अंग हिलाकर नित्यानन्द और अद्वैत प्रभु के नृत्य करने का विवरण ठाकुर को बतलाकर आनन्द व्यक्त करने लगे।

श्रीधर चले गए। फिर मैंने ठाकुर से पूछा— जन्माष्टमी में उपवास की व्यवस्था भिन्न-भिन्न प्रकार की है। शाक्त लोगों के साथ कभी-कभी वैष्णवों का मत मिलता नहीं, मैं किस मत से उपवास करूँगा?

ठाकुर ने कहा— "व्रत-उपवास आदि वंश-परम्परा में जिसका जो नियम है, वे उसके अनुसार ही करें।"



मैंने कहा— हमारा लक्ष्य क्या है? किस रूप में भगवान् हम लोगों के समक्ष प्रकट होंगे?

ठाकुर ने कहा— “हमारे इस साधन में कोई देवता लक्ष्य नहीं हैं। केवल भगवान् ही लक्ष्य हैं। फिर भी जिनका जैसा भाव है, जिनके जो कुल देवता हैं, भगवान् आरम्भ में उनको उस भाव से उसी रूप में दर्शन दिया करते हैं।”

मैंने पूछा— हम लोगों के बीच जो लोग ब्राह्म-समाज में थे, वे लोग तो किसी देवी-देवता का विचार नहीं करते, मानते भी नहीं; उनके समक्ष भगवान् किस प्रकार प्रकट होंगे?

ठाकुर ने कहा— “मैंने इस प्रकार की कुछ घटनाएँ देखी हैं; कोई-कोई अच्छे ब्रह्मसमाजी अनेक दिन उपासनादि करके मुझसे आकर कहते हैं, ‘महाराज, अमुक देवता के भाव और रूप मन में क्यों आते हैं? कभी तो वह सब विचार किया नहीं, कल्पना भी की नहीं; फिर ऐसा क्यों होता है?’ मैंने उनकी बात का अनुसन्धान करके देखा, जिनके जो कुल देवता हैं, उनके भीतर उसी देवता का रूप और भाव आ जाता है। पितृ-पितामह आदि वंश के पूर्वजों से हमारे भीतर रक्त मांस के साथ जो सब भाव जड़ित है, वह क्या सहज में जाता है? ब्रह्मोपासक होने से क्या होगा? ब्रह्म जब प्रकट होंगे, तब एक भाव, एक रूप में ही तो प्रकट होंगे। कई जगह देखा गया है, जिनके वंश के जो देवता हैं, ब्रह्म आरम्भ में उनके समक्ष उसी रूप में प्रकट होते हैं, फिर उससे अन्यान्य देवी-देवता और जो भी हैं, धीरे-धीरे प्रकट हुआ करते हैं।”

मैंने कहा— मुझे लगता है, ब्राह्म-समाज के पल्ले में पड़कर मेरी बड़ी हानि हुई है; सरल विश्वास अब नहीं रहा। सभी में सन्देह रहता है, सब टूट-फूटकर एक हो गया है। वहाँ गया ही क्यों?

ठाकुर ने कहा— “सरल विश्वास जिन्होंने तोड़ा है, अब वे ही पुनः बना भी रहे हैं। फिर उसके लिए तुम्हें चिन्ता क्यों है? अब जो होगा वह ठीक होगा। वह फिर टूटेगा नहीं। ब्राह्म-समाज में जाने से हानि कुछ नहीं हुई, बहुत उपकार हुआ है। वहाँ पर जाने से ही नीति, चरित्रादि की रक्षा हुई है। फिर प्रथम अवस्था में ब्रह्मज्ञान होना आवश्यक है। ब्रह्मज्ञान हुए बिना किसी प्रकार से ठीक तत्त्व जानने का अधिकार नहीं होता। इसीलिए ऋषि लोग प्रथम अवस्था में ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देते हैं। ब्रह्म सर्वव्यापी, सत्यस्वरूप, पवित्रस्वरूप, मंगलमय, निर्विकार, निराकार

है, इत्यादि सब भावों का ध्यान करते-करते जब धीरे-धीरे उसके भीतर से अलौकिक रूप की अद्भुत छटा प्रगट हुआ करती है, तभी वह धीरे-धीरे समझ में आता है, पकड़ में आता है।”

मैंने फिर पूछा— हम लोगों के बीच सभी तो ब्राह्म-समाज से आए नहीं, जिन्होंने हिन्दू समाज में रहकर यह साधन प्राप्त किया है, उन्हें इन सब तत्त्वों का बोध होता है?

ठाकुर ने कहा— “क्यों नहीं होगा? फिर भी थोड़ी कठिनाई होती है। प्रथम अवस्था में जो लोग ब्रह्मज्ञान प्राप्त करते हैं, सब तत्त्व ग्रहण करने में उन्हें वैसी कोई कठिनाई नहीं होती; बहुत सहज में पकड़ सकते हैं। फिर ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुए बिना तो कुछ होना सम्भव नहीं है। इसलिए प्रथम अवस्था में ही वह होना अच्छा है, इससे सब कुछ सहज होने लगता है। जिससे ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो, वही करना उचित है, वही करो।”

ठाकुर कुछ क्षण चुप रहकर फिर अपने-आप ही कहने लगे— “अवश्य ही ब्राह्म-समाज में जाने से बहुतों की बड़ी हानि भी हुई है। ब्राह्म-समाज की जितनी भी अच्छाई है, उसे तो सभी सहज में ग्रहण कर नहीं पाते; जिससे अनिष्ट होता है, ऐसे सब विषयों में ही साधारण लोग प्रायः आसक्त हो जाते हैं। अविश्वास, सन्देह आदि कितने ही वृथा संस्कार से कोई-कोई बहुत कष्ट भोग रहे हैं। सहज में वह सब संस्कार जाता नहीं; वह सब संशोधन होना बड़ा कठिन है।”

इन सब बातचीत में बहुत समय बीत गया; ठाकुर के आदेशानुसार महोत्सव की पूरी, कचौरी, मिठाई आदि प्रसाद का तृप्तिपूर्वक भोजन किया। ठाकुर के पास बैठकर नाम-जप करते-करते देखा— बारम्बार एक अन्यन्त उज्ज्वल सिग्ध काली ज्योति जगमगाकर एक-एक बार प्रगट होकर पुनः अन्तर्धान होने लगी; बहुत समय तक इस ज्योति के सौन्दर्य पर मुग्ध रहा। भोजन के कुछ क्षण बाद प्राणायाम आरम्भ किया तो माता ठाकुरानी ने मना कर दिया।

ठाकुर ने कहा— “बहुत खाली पेट अथवा पेट बहुत भरे रहने पर प्राणायाम नहीं करते। भोजन के लगभग तीन घण्टे बाद करना चाहिए।”

## अभय बाबू पर कृपा

### गोसाँईजी और काठिया बाबा का प्रथम साक्षात्कार

आज श्री अभयनारायण राय के साथ बातचीत में उनके जीवन की एक अच्छी घटना सुनकर बड़ा आनन्द आया। अभय बाबू के साथ मेरा परिचय नया

नहीं है, पहले भी फैजाबाद में भैया के निवास पर उनके साथ मेरी भेंट हुई थी। तब उन्होंने कोई धार्मिक वेश धारण नहीं किया था। इस बार श्रीवृन्दावन में अभयबाबू को संन्यासी के वेश में देख रहा हूँ। उनके ही मुख से सुना है— कुछ समय पहले एक दिन वे मानसिक ज्वाला की यन्त्रणा से पागल के समान हो गए। उन्होंने आत्महत्या करने का विचार किया। यमुना में डूबकर मरने का निश्चय करके, यमुना के किनारे पहुँचे। उस समय श्रीवृन्दावन के चौरासी कोस के महन्त सिद्ध महापुरुष श्री रामदास काठिया बाबा अभय बाबू का अभिप्राय जानकर अचानक उनके पास आकर खड़े हो गए। अज्ञात महापुरुष ने अपने-आप ही स्नेह के साथ सान्त्वना देकर अभय बाबू को भरोसा दिलाते हुए कहा, 'तुमको मैं दीक्षा दे रहा हूँ; सारी अशान्ति दूर हो जाएगी। तुम उस प्रकार का विचार त्याग दो।' सिद्ध महात्मा ने ऐसा कहकर अभय बाबू को दीक्षा प्रदान की। तब अभय बाबू मन्त्र-शक्ति के प्रभाव से एक प्रकार से बाह्यज्ञान से अनभिज्ञ रहकर उन्मत्तवत् कूदने लगे एवं सामने एक वृक्ष की डाल पकड़कर ज्ञानशून्य अवस्था में ही उसमें झूलने लगे। उसके बाद काठिया बाबा धीरे-धीरे उनको शान्त करके चले गए।

अभय बाबू ने कहा— "इस बार श्रीवृन्दावन में आने के पहले कुछ समय गया के आकाशगंगा पहाड़ में था। एक दिन स्वप्न देखा, काठिया बाबा ने मुझसे कहा, 'चलो, तुमको एक असली महात्मा का दर्शन कराएँगे।' यह कहकर मुझे साथ लेकर दाऊजी के मन्दिर में गोस्वामी प्रभु के पास पहुँचे। वे दाऊजी के 'जगमोहन' (सभा-मण्डप) में बैठे हुए थे; बहुत-से ब्रजवासी, साधु, ब्राह्मणादि को गोसाँईजी के पास खड़े देखा। गोस्वामी प्रभु ने दया करके अंगुलि से इंगित करके मुझे दाऊजी भगवान् का दर्शन कराया एवं आदेश दिया कि 'भक्तमाल ग्रन्थ का पाठ और निराहार रहकर एकादशी व्रत करना।' इस मन्दिर एवं गोस्वामी प्रभु के बारे में मैं कुछ-भी नहीं जानता था। स्वप्न दर्शन के कुछ समय बाद संयोग से मैंने श्रीवृन्दावन की यात्रा की एवं दाऊजी के मन्दिर में आया। यहाँ गोस्वामीजी को देखते ही, स्वप्न में दिखे महात्मा के रूप में उनको पहचानकर चकित हो गया। गोस्वामीजी के आश्रम में ही मैं रहने लगा। एक दिन सुना, श्रीवृन्दावन में काठिया बाबा आए हैं। तुरन्त मैं उनके दर्शन करने गया। उन्होंने मुझे देखकर कहा, 'देख स्वप्न तो प्रत्यक्ष हुआ! उन्हीं का नाम साधु है। वे ही सच्चे साधु हैं। चल हम भी दर्शन करने के वास्ते तुम्हारे साथ जाएँगे।' यह कहकर काठिया बाबा मेरे साथ गोसाँईजी के पास उपस्थित हुए। वे एक-दूसरे को दण्डवत् प्रणाम करके अपने-अपने आसन पर बैठकर सम्पूर्ण अपरिचित के समान बातचीत करने लगे। यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उस दिन गोस्वामीजी ने काठिया बाबा को बड़े आदरपूर्वक भोजन कराया। अगले दिन गोस्वामीजी मेरे साथ काठिया बाबा के

दर्शन के उद्देश्य से उनके पास पहुँचे। दोनों ने एक स्थान पर बैठकर ध्यान-मग्न अवस्था में बहुत समय बिता दिया; कोई बात नहीं हुई। इस प्रकार तीन-चार दिन लगातार वे लोग परस्पर मिले; लेकिन बिल्कुल शान्त रहे, एक वाक्य भी नहीं कहे। तब एक दिन मैंने गोस्वामीजी से पूछा, 'आप लोग तो कोई बात ही नहीं करते?' गोसाँईजी ने कहा— **'मुख से कहे बिना भी महापुरुष लोग सारी बातें अन्तःकरण में पहुँचा देते हैं, भीतर-ही-भीतर बातें होती है।'** एक दिन गोस्वामीजी काठिया बाबा को प्रणाम करके उनके पास बैठ गए। दोनों अपने-अपने भाव में निर्वाक एवं एकाग्र अवस्था में रहे। अचानक काठिया बाबा ने गोस्वामीजी के घुटने को स्पर्श करके नम्रतापूर्वक कहा, 'बाबा! हम आपके बालक हैं।' गोसाँईजी ने तुरन्त उनको दोनों हाथों से पकड़कर छाती से लगा लिया।"

'काठिया बाबा बहुत दिनों से प्रतिदिन दिन में अधिकांश समय सेवाकुंज के द्वार पर आसन बिछाकर बैठा करते हैं। इसका कारण पूछने पर उन्होंने कहा था कि इस स्थान पर ही उनको अप्राकृत-लीला का प्रथम दर्शन हुआ। इसलिए प्रतिदिन इस स्थान पर बैठकर वे अब भी नित्य-लीला का दर्शन करते हैं।'

## गोसाँईजी की करुणा

बातों-बातों में अभय बाबू ने कहा— एक दिन मथुरा के सरकारी डॉक्टर श्री मनोमोहन दास एक कटोरा-भर बड़े-बड़े लड्डू लेकर कुंज में उपस्थित हुए। गोस्वामीजी को न पाकर वे उनकी सेवा के लिए उसे दामोदर पुजारी के हाथ में देकर चले गए। दामोदर उनमें से कुछ यहाँ रखकर सब लड्डू अपने घर भेज दिए। अगले दिन प्रातःकाल दामोदर ने आकर गोस्वामीजी से कहा— 'बाबा, मनोहर बाबू छः लड्डू दिए थे; आपके लिए दो रखकर, दाऊजी ठाकुर को दो लड्डू, अभय बाबू को एक और श्रीधर बाबू को एक दे दिया।' यह बात मैंने कुछ दूरी में रहकर सुनी। बाद में दामोदर के प्रति अत्यन्त विरक्त होकर मैंने गोस्वामीजी से कहा— 'मनीआर्डर जो आता है, उसमें तो आप केवल हस्ताक्षर करते हैं; पूरा दामोदर ले जाता है, फिर जैसा-तैसा भोजन देकर आपको कष्ट देता है। कल भी सब लड्डू अपने घर भेज दिया, यह कैसा व्यवहार है?' गोस्वामीजी ने खूब हँसते हुए प्रसन्नतापूर्वक मेरी ओर देखकर कहा— **"अहा, अहा! अच्छा किया। छोटे-छोटे लड़के-बच्चे, स्त्री, परिजनादि हैं, वे लोग खाएँगे। अच्छा ही हुआ।"** मैं सुनकर अपनी क्षुद्रता का अनुभव करके बहुत लज्जित हुआ। कुछ समय बाद गोसाँईजी ने कहा— 'मेरे गुरु का आदेश है, एक वर्ष इस आसन पर मुझे रहना होगा, उसमें जितना क्लेश-कष्ट होता है, होने दो। मैं जानता हूँ, आप लोगों को आहारादि का कष्ट हो रहा है। अपना-अपना कुछ-कुछ खर्च करके

बाजार से खरीदकर खा लेना। फिर रूखा-सूखा खाना भी अच्छा है, उससे इन्द्रिय-संयम होता है।”

## महात्मा गौर शिरोमणि

9 अगस्त, शनिवार। आज भोजन के बाद गौर शिरोमणि जी की बात उठी। सुना है, श्रीधर एक दिन शिरोमणि जी के दर्शन करने के लिए उनके कुंज में गए; उन्होंने देखा, वे सो रहे हैं; अतएव उसी अवस्था में उनका दर्शन करके, उनके चरणों की ओर जाकर दूर से ही प्रणाम किया। निद्रित अवस्था में रहने पर भी शिरोमणि जी के दोनों चरण उसी समय घूम गए। श्रीधर ने फिर उनके चरणों की ओर जाकर प्रणाम किया; उठकर देखा, शिरोमणि जी के दोनों चरण फिर दूसरी ओर घूम गए। श्रीधर ने पुनः चरणों की ओर जाकर छः-सात फीट दूर से साष्टांग प्रणाम किया; इस बार भी श्रीधर ने उठकर देखा, दोनों चरण फिर वहाँ नहीं हैं; निद्रित अवस्था में ही शिरोमणि जी के चरण हट गए। तीनों बार ही एक जैसी घटना देखकर वे चकित होकर चले आए। शिरोमणि जी के पैर को छूकर प्रणाम करने की क्षमता किसी में नहीं है, उनको ज्ञात रहने पर दूर से भी कोई उन्हें पहले प्रणाम नहीं कर पाता। बिना विचार किए सभी को वे साष्टांग प्रणाम करते हैं। रास्ते में उनके साथ चलना एक बड़ा मुस्किल काम है। वे चलते-चलते रास्ते के दोनों ओर बिल्ली, बन्दर, गाय, स्त्री, पुरुष एवं विग्रह आदि सभी को एक भाव से साष्टांग प्रणाम करते-करते अग्रसर होते हैं। श्रीवृन्दावन के सभी स्त्री-पुरुष लोग शिरोमणि जी को सिद्ध महापुरुष मानकर उनकी श्रद्धा-भक्ति करते हैं।

ठाकुर ने कहा— ‘तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥’\* इस श्लोक का यथार्थ दृष्टान्त देखना है तो शिरोमणि जी को जाकर देखो; वर्तमान समय में ऐसा कहीं देखा नहीं जाता।

शिरोमणि जी की पूर्वकालीन घटना ठाकुर बतलाने लगे— “शिरोमणि जी अपने ग्राम के एक अनुभवी पण्डित थे; छहों दर्शन, स्मृति और पुराणादि में इनकी बड़ी ख्याति थी। एक दिन गाँव में एक ब्राह्मण के घर पर वे श्रीमद्भागवत सुनने गए। सभा में कई प्रतिष्ठित ब्राह्मण पण्डित उपस्थित थे। भक्त ब्राह्मण पाठक भागवत-पाठ के पूर्व गौर-वन्दना पढ़ने लगे। सर्वत्र यही नियम है; किन्तु शिरोमणि जी वह सुनते ही भड़क उठे।

\* अर्थ— साधक अपने को तृण से भी छोटा माने, वृक्ष से भी अधिक सहनशील होवे। स्वयं सम्मान की आशा किए बिना दूसरों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करे। इस प्रकार अपना आचरण रखकर सर्वदा नाम-कीर्तन करता रहे।

पाठक ब्राह्मण को बुलाकर उन्होंने कहा, 'यह क्या है महोदय, ये क्या भागवत पाठ हो रहा है? आप भागवत पाठ करने बैठे हैं, सामने भागवत खुली हुई है; उधर देखकर आप गौर-चन्द्रिका क्यों पढ़ रहे हैं? ब्राह्मण पण्डितों के बीच बैठकर, सामने शालग्राम रखकर, भागवत पढ़ने के नाम से इन सब मिथ्या वचनों की आवृत्ति किसलिए? भागवत में वह सब कहाँ लिखा है?' भक्त ब्राह्मण ने हाथ जोड़कर शिरोमणि जी से कहा, 'प्रभो! मैं भागवत का ही पाठ कर रहा हूँ। यह समस्त भागवत में है। मैंने असत्य वाक्य का उच्चारण नहीं किया।' शिरोमणि जी तब आसन से उछल पड़े, पाठक के पास जाकर उन्होंने कहा— महोदय, 'अनर्पितचरीं भागवत में कहाँ है, एक बार दिखाइए तो?' ब्राह्मण ने तुरन्त प्रत्येक दो लाइनों के बीच रिक्त स्थान दिखाकर कहा, 'इस सादे स्थान पर ध्यान से देखिए।' शिरोमणि जी ने कहा, 'कहाँ? यह तो सादा स्थान दिखला रहे हो।' ब्राह्मण ने कहा, 'आपकी दृष्टि-शक्ति नहीं है, किस प्रकार देखेंगे? दोनों आँखें थोड़ा स्वच्छ कर लीजिए, फिर देख पाएँगे।' शिरोमणि जी ने क्रुद्ध होकर कहा, 'शालग्राम सामने रखकर, भागवत स्पर्श करके इतने ब्राह्मणों के बीच आप अनायस झूठ बोल रहे हैं।' ब्राह्मण ने तब बड़े तेज स्वर में कहा, 'आप वैसी बात न कहें, चुप रहिए। इस ब्राह्मण सभा में शालग्राम को साक्षी मानकर, भागवत को स्पर्श करके मैं सत्य कह रहा हूँ, भागवत की प्रत्येक दो लाइनों के बीच 'गौर-वन्दना' लिखी हुई है। मैं देख रहा हूँ। आप किसी सिद्ध वैष्णव महात्मा के पास जाकर दीक्षा लेकर आइए, फिर मैं जो सब नियम बताऊँगा, ठीक उसके अनुसार एक सप्ताह चलिए; आठवें दिन यहाँ आइए, तब भागवत के प्रत्येक लाइन के बीच गौर-चन्द्रिका यदि स्पष्ट रूप से न दिखा सका तो अपनी जीभ काट दूँगा, सभी के समक्ष मैं यह शपथ लेता हूँ।' शिरोमणि जी बड़े तेजस्वी पुरुष थे। उसी समय जाकर उन्होंने सिद्ध चैतन्यदास बाबाजी से दीक्षा ली, फिर पाठक ब्राह्मण के पास आकर उनकी नियम प्रणाली ग्रहण की। सात दिन ठीक उसी के अनुसार चले; फिर ब्राह्मण के पास पुनः आकर उन्होंने कहा, 'महोदय, अब आप भागवत में वह गौर-वन्दना दिखलाएँगे तो?' ब्राह्मण ने तुरन्त भागवत खोलकर कहा, 'अच्छा, अब आकर देखिए।' तब गौर शिरोमणि जी ने भागवत के श्लोक की प्रत्येक दो लाइनों के बीच जैसे ही देखा, उन्हें उज्ज्वल स्वर्ण अक्षरों में गौर-वन्दना स्पष्ट लिखी हुई दिखाई दी। तब वे भूमि पर गिरकर लोटने लगे; रोते-रोते अधीर हो गए। तुरन्त सब

कुछ छोड़कर उन्होंने श्रीवृन्दावन की पैदल यात्रा की। तब से वे यहीं हैं।  
ऐसी अवस्था के लोग श्रीवृन्दावन में नहीं हैं। ये ही यथार्थ वैष्णव हैं।”

## मत्स्याहार की अनिष्टकारिता

### अशुद्ध देह का आशय और परिणाम एवं शुद्धि का उपाय

गौर शिरोमणि जी की बात कहते-कहते ठाकुर वैष्णवाचार की प्रशंसा करने लगे। तब मैंने सुयोग पाकर पूछा— ‘योग-साधना के पक्ष में मछली, मांस खाने से क्या कुछ अनिष्ट होता है?’

ठाकुर ने कहा— “कुछ क्या? बहुत अनिष्ट होता है।”

मैंने फिर पूछा— मांस खाने से हानि होती है, यह तो सुना है; क्या मछली खाने से भी हानि होती है?

ठाकुर ने कहा— “मछली खाने से भी हानि होती है। फिर पहले-पहल जो लोग योग का अभ्यास करते हैं, उनको उतनी हानि नहीं होती; थोड़ी उन्नति होते ही उससे कितनी हानि होती है, उसे वे लोग ठीक समझ सकते हैं। मछली खाने से सूक्ष्म-शरीर में यातायात करने से कष्ट होता है। इसलिए कई लोग बाध्य होकर तब मछली खाना छोड़ देते हैं। मैंने मुसलमान फकीरों एवं बौद्ध योगियों में बहुतों को देखा है, जिन्होंने बहुत समय तक मांस-मछली का सेवन किया, योग आरम्भ करने के बाद कुछ उन्नति होते ही वे लोग भी वह सब छोड़ देने के लिए बाध्य हुए हैं।”

मैंने कहा— सूक्ष्म-शरीर में यातायात तो उच्च अवस्था की बात लगती है। मांस-मछली खाने से और भी कोई अनिष्ट होता है?

ठाकुर ने कहा— “भोजन के साथ मन का बहुत निकट सम्बन्ध है; भोजन सात्विक होने से मन भी सात्विक होता है। राजसिक और तामसिक भोजन से मन भी उसी प्रकार हो जाता है। मछली व मांस रजः व तमोगुणी आहार है, इन सब आहार के सम्बन्ध में सदैव बहुत सावधान रहना चाहिए।”

‘माता-पिता आदि गुरुजनों के प्रति भक्ति क्यों नहीं होती? उसका उपाय क्या है?’ किसी व्यक्ति के इस प्रश्न पर ठाकुर ने कहा— “पूर्वजन्म में शरीर अशुद्ध रह जाने से माता-पिता एवं अन्यान्य गुरुजनों के प्रति अभक्ति और घृणा होती है। उन लोगों के स्नेह करने पर भी अश्रद्धा होती है। यहाँ तक कि भगवान् के प्रति भी भक्ति नहीं होती। पूर्वजन्म के सूक्ष्म

परमाणु अगले जन्म की सूक्ष्म देह के साथ स्थूल देह में प्रविष्ट होते हैं। इसलिए बाद के जन्म में भी माता-पिता आदि के प्रति अश्रद्धा होती है। इस भक्ति का शरीर के साथ योग है। इसके साथ आत्मा का विशेष कोई योग नहीं। माता-पिता के साथ देह का योग है। पिता के वीर्य और माता के रक्त से देह की सृष्टि होती है। इस देह को शुद्ध करना होगा, शुद्ध रखना होगा, नहीं तो माता-पिता के प्रति भक्ति नहीं होगी। गंगास्नान, तीर्थ-भ्रमण, एकादशी उपवास, पूर्णिमा और अमावस्या का निशिपालन आदि व्रत करने से देह शुद्ध होती है।”

ठाकुर कुछ दिनों से मेरे शरीर की अस्वस्थता देखकर भैया के पास जाने के लिए कह रहे हैं। कल ही फैजाबाद जाने का निश्चय करके मैंने ठाकुर की अनुमति माँगी। उन्होंने खूब सन्तुष्ट होकर मुझे अनुमति देकर कहा— **“श्रीवृन्दावन के सब मन्दिरों में जाकर ठाकुरजी का दर्शन करके आओ।”** मैं संध्या तक घूमकर श्रीवृन्दावन के प्रसिद्ध विग्रह आदि के दर्शन करके कुंज में लौटा।

## ठाकुर से विदा लेना: माता ठाकुरानी का अन्तिम आदेश

11 अगस्त, सोमवार, एकादशी। प्रातःकाल झोला-कम्बल बाँधकर फैजाबाद जाने के लिए प्रस्तुत हुआ। गुरुभाइयों से विदा लेकर दामोदर पुजारी के पास पहुँचा। आठ आना पैसे देकर उनके चरणों में प्रणाम करते ही उन्होंने मेरी पीठ तीन बार ठोकते हुए कहा, ‘सुफल, सुफल, सुफल। अब तुम्हारा श्रीवृन्दावन वास सुफल हो गया।’ मैं ऊपर आकर गुरुदेव से विदा लेने हेतु जैसे ही उनके चरणों में प्रणाम करने आगे बढ़ा, इसी समय माता ठाकुरानी मुझे बुलाकर कमरे में ले गईं। उन्हें चरण स्पर्श करके प्रणाम करते ही उन्होंने मेरे सिर पर दाहिना हाथ रखकर कहा— ‘कुलदा! भविष्य की बातें कुछ कही नहीं जा सकतीं, मेरी इन कुछ बातों को सदा स्मरण रखना; योगजीवन जैसे मेरा पुत्र है, तुमको भी मैं ठीक उसी प्रकार पुत्र समझती हूँ। इसे केवल कहने की बात मत समझना; तुमसे सच कह रही हूँ— अपने लड़के के समान तुम्हें देखती हूँ। तुम योगजीवन के सगे भाई हो, यह समझकर सदा उनका सहारा होकर रहना। शान्तिसुधा के कष्ट में कोई सहानुभूति नहीं रख पाता। उसको क्लेश के समय सान्त्वना देना; फिर भविष्य में माँ जिससे सब लोगों के लिए भार न बन जाए, इस विषय में ध्यान रखना। ब्रह्मचर्य लिए हो, अच्छा हुआ; शरीर स्वस्थ होने पर विवाह करने में हानि क्या है? गोसाँईजी की अनुमति लेकर इसके बाद विवाह कर सकते हो, उससे धर्म-कर्म, साधन-भजन में कोई अनिष्ट नहीं होगा।’ ये सब बातें कहकर उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया। मैंने गुरुदेव के पास जाकर उन्हें चरण स्पर्श करके प्रणाम किया।



वे स्नेहपूर्वक मेरी ओर कुछ क्षण देखते रहे, फिर मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए उन्होंने कहा— “अच्छा अब जाओ— जो कहा है, वह करने का प्रयास करो; बीच-बीच में चिट्ठी लिखना, प्रयोजन के अनुसार उत्तर मिलेगा।”

## मेरी फैजाबाद यात्रा: रास्ते में संकट

12 अगस्त, मंगलवार। श्रीवृन्दावन से ट्रेन में चढ़कर सीधे कानपुर आ गया। मन्मथ भैया के घर पहुँचा। मुझसे मिलने की आकांक्षा उनकी बहुत समय से थी। मुझसे मिलकर उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। कल अथवा परसों मेरे फैजाबाद जाने की बात सुनकर वे बड़े दुःखी हो गए। 10-15 दिन रखे बिना वे मुझे कभी छोड़ेंगे नहीं, ऐसा बार-बार कहने लगे। मन्मथ भैया से कहकर मेरा अविलम्ब फैजाबाद जाना असम्भव लगने लगा। तीसरे दिन मध्याह्न में वे जैसे ही कचहरी गए, मैं चुपचाप एक इक्का (घोड़ा-गाड़ी) करके कानपुर स्टेशन पहुँच गया। दुर्भाग्यवश उसी समय ट्रेन छूट गई। एक सज्जन ने मुझसे कहा— ‘अभी इसी इक्के से पोलघाट चले जाइए, ट्रेन मिल जाएगी।’ मैं तुरन्त उसी इक्के से पोलघाट गया। स्टेशन पहुँचकर देखा, कुछ समय पहले ट्रेन छूट गई। तब मैं बड़ी कठिनाई में पड़ गया; इधर इक्कावाला किराया के लिए शीघ्रता करने लगा। कागज में मोड़कर पाँच रुपये अंटी में रखा था, किराया देने के लिए जब अंटी में हाथ लगाकर देखा, रुपये उसमें नहीं हैं; मैं चौंक उठा। वह रुपया ही मेरे लिए रास्ते का सहारा था। मैं बड़े संकट में पड़कर गुरुदेव को स्मरण करके प्रार्थना किया— ‘ठाकुर! इस विपत्ति से मेरी रक्षा कीजिए।’ सोचा, ‘कानपुर स्टेशन में जहाँ बैठा था, लगता है रुपये वहीं गिर गए हैं।’ झोला-कम्बल इक्के में ही रखकर, हित-अहित का विचार किए बिना उस विशाल रास्ते में दौड़ लगा दी। दो-तीन मिनट दौड़ने के बाद अचानक रास्ते के ऊपर रुपये पड़े देखकर रुक गया। मुड़े हुए फटे कागज से कुछ दूरी पर पाँच रुपये पड़े देखकर उसे उठा लिया। विशाल राजपथ पर सैकड़ों कुली-मजदूर, दीन-दुःखी सब समय आना-जाना कर रहे हैं, इतने समय से किसी की दृष्टि इस रुपये पर पड़ी नहीं— यह कैसी घटना है! रास्ते के बीचो-बीच न चलकर यदि मैं किसी किनारे से दौड़ता हुआ जाता, तो इस रुपये पर मेरी दृष्टि कभी नहीं पड़ती। यह सोचकर और भी आश्चर्य हुआ। तुरन्त स्टेशन आकर इक्केवाले को किराया दिया। अब दूसरी गाड़ी न मिलने तक कानपुर स्टेशन में जाकर प्रतीक्षा करूँगा, यह निश्चय किया।

इसी समय एक हिन्दुस्तानी सज्जन ने आकर मुझसे कहा— ‘महाराज, आप फैजाबाद जाएँगे, मुझको भी आज ही लखनऊ जाना होगा। चलिए तीन कोस चलकर नावघाट चलते हैं, वहाँ निश्चय ही गाड़ी मिलेगी। यह गाड़ी नावघाट में

दो घण्टे खड़ी रहती है। फिर हम लोगों को वहाँ पहुँचने में कितना समय लगेगा?’ मैंने इस उपाय को ठीक समझकर झोला-कम्बल सिर पर उठा लिया एवं उनके साथ द्रुत गति से नावघाट के लिए पक्के रास्ते से चलने लगा। पक्के रास्ते के एक ओर बड़ी नदी है और दूसरी ओर विशाल मैदान। इस समय वर्षा का पानी बढ़ जाने से नदी, मैदान, रास्ता सब एकाकार हो गया है। नदी का पानी प्रबल वेग से रास्ते के ऊपर से मैदान की ओर जा रहा है। रास्ते के ऊपर लगभग ढाई फुट पानी है; रास्ते के दोनों ओर बड़े-बड़े वृक्ष होने के कारण ठीक रास्ता समझने में कोई असुविधा नहीं हुई। हम लोग कमर तक जल में स्रोत को काटते हुए अग्रसर होने लगे। लगभग एक मील चलने से ही मेरा शरीर अवसन्न हो गया। उसके ऊपर प्रत्येक कदम पर कांटे के समान पत्थर और कंकड पैंरों में चुभने लगे। इसी समय एकाएक चारों ओर अन्धकार हो गया एवं मूसलाधार वर्षा होने लगी; सिर का बोझा भीगकर चार गुना भारी हो गया। बड़े संकट में पड़कर गुरुदेव को स्मरण करने लगा। सिर का बोझा फेंक देने के लिए तत्पर हुआ। इसी समय साथी ने मेरा बोझा अपने सिर पर उठा लिया एवं हाथ पकड़कर वे स्रोत काटते हुए मुझे खींचकर ले जाने लगे। दो कोस इसी प्रकार चलकर हम लोग नावघाट पहुँचे। स्टेशन पहुँचते ही अपना बोझा कन्धे पर लेकर एकदम से फाटक की ओर दौड़ा। वहाँ पहुँचकर देखा, प्लेटफॉर्म में जाने का फाटक बन्द हो गया है। तब एक हाथ सिर के बोझे पर और दूसरा फाटक पर रखकर खड़ा रहा। उसी समय ट्रेन छोड़ने की सीटी बज उठी, तब मानो मेरे सिर पर बिजली गिर पड़ी; मैं स्तब्ध होकर गाड़ी की ओर देखता रहा। इस समय दूर से गार्ड साहेब मेरी दुर्दशा देखकर दौड़ते हुए फाटक के पास आए एवं मेरा हाथ पकड़कर ‘जल्दी चलिए, जल्दी चलिए’ कहते हुए खींचकर चलती ट्रेन में चढ़ा दिए। ‘टिकट बाद में मिल जाएगा’ कहकर गार्ड साहेब ने दौड़ लगा दी। अगले स्टेशन में मुझे टिकट मिल गया।

अचानक एक बड़े संकट में पड़कर, बिना प्रयास के तुरन्त संकट निवारण होने से वह आकस्मिक घटना ही लगती है; किन्तु एक के बाद एक बड़े संकट में तुरन्त ही बचाव का उपाय हो जाने से उसे किस प्रकार आकस्मिक मानूँ? प्रत्येक चाल में ‘पौ बारह’ पड़ना, हाथ के कौशल के बिना कुछ सोचा नहीं जा सकता। इन सब असम्भव संयोग में गुरुदेव का ही हाथ समझकर मैं उनके अभय चरणों का स्मरण करने लगा। प्रातः फैजाबाद पहुँच गया।

-----

अगस्त-सितम्बर, सन् 1890 ई. (बंगला सन् 1297, भाद्र)

## नौकरी का दबाव: संघातक रोग

### माता ठाकुरानी का पत्र

अगस्त-सितम्बर। फैजाबाद पहुँच गया। फिर बहुत समय पुराने मेरे शूलरोग से मुझे मुक्त देखकर भैया चकित रह गए! किस प्रकार आरोग्य प्राप्त किया, यह सुनकर उन्होंने कहा— 'यह केवल तुम्हारे ठाकुर की ही कृपा है। गोस्वामीजी का ऐसा संग छोड़कर तुम क्यों आए?' मैंने कहा— अभी आपकी सेवा करने का उन्होंने मुझे आदेश दिया है। माँ की एवं आपकी सेवा किए बिना मेरा कल्याण नहीं होगा। भैया ने कहा— 'सेवा के लिए लोगों का तो मेरे पास अभाव नहीं है। अच्छा, तुम यहाँ रहकर उनके आदेश के अनुसार साधन-भजन करो; उससे ही मैं समझूँगा, मेरी यथेष्ट सेवा कर रहे हो।' भैया के कथनानुसार मैं समय निर्धारित करके साधन-भजन करने लगा। अवसर मिलने पर भैया के साथ ठाकुर के सम्बन्ध में बातचीत होने लगी। फैजाबाद में भैया के निवास पर ठाकुर कुछ दिन रहकर जो सब कार्य किए थे, जहाँ-जहाँ गए थे, वह सब सुना। अच्छे आनन्द से साधन-भजन व सत्प्रसंग में मेरा दिन बीतने लगा।

इसी समय मँझले भैया बहुत दिनों की सरकारी नौकरी छोड़कर वकालत करने के अभिप्राय से फैजाबाद आ गए। मेरा शरीर सबल एवं स्वस्थ देखकर भैया से उन्होंने एक नौकरी का जुगाड़ करके मुझे फैजाबाद में ही रखने के लिए कहा। भैया ने भी उसी प्रकार एक अच्छे काम की व्यवस्था कर दी है। इधर नौकरी की बात सुनकर मेरा सिर चकरा गया। 'ब्रह्मचर्य-व्रत में नौकरी करना निषेध है' भैया को समझाकर कहा। भैया ने कहा— 'व्रत भंग करके नौकरी करो, मेरी ऐसी इच्छा नहीं है; केवल तुम्हारे मँझले भैया के कहने से ही मैंने नौकरी जुगाड़ कर दी है; उनको तुम समझाकर कहो।' मँझले भैया को यह सब बात कहने से उन्होंने कहा— 'वह सब कुछ नहीं, नौकरी करने की इच्छा नहीं है, इसलिए वैसा कह रहे हो। अच्छा, नौकरी नहीं करनी है तो व्यवसाय करो; भैया की पेटेन्ट औषधि घर में बैठकर बनाओ और विक्रय करो। संवाद-पत्र में औषधि का विज्ञापन दे देते हैं।' मैंने कहा— इससे भी व्रत भंग होगा। अर्थोपार्जन की चेष्टा करना भी निषिद्ध है। मँझले भैया ने विरक्त होकर कहा— 'वह सब कुछ नहीं, चालाकी है।'

इस संकट में 'मैं क्या करूँगा' ठाकुर से पूछने के लिए श्रीवृन्दावन में पत्र लिखा। इधर मेरे सिर में अत्यन्त तीव्र यन्त्रणा होने से मैं बिस्तर में पड़ गया। 105 डिग्री ज्वर हो गया। मानो सिर के भीतर अँगार भर दिया है, ऐसा लगने लगा। भैया बहुत प्रयास करके मेरे सिर की असह्य यन्त्रणा को थोड़ा भी दूर न कर सके;

वरन् और भी अनेक प्रकार की पीड़ा उत्पन्न हो गई। बारम्बार मूर्च्छा के कारण बड़बड़ाने लगा। भैया डर गए, 'इस बार देख रहा हूँ, रक्षा नहीं की जा सकी' कहकर वे भयंकर चिन्ता में पड़ गए।

दो सप्ताह बाद मेरी चिट्ठी का उत्तर आया। माता ठाकुरानी ने उत्तर दिया—  
कल्याणवरेषु,

कुलदा, तुम्हारा पत्र पाकर सब ज्ञात हुआ एवं गोस्वामीजी को पढ़कर सुनाई। उन्होंने कहा, तुम्हारे शरीर की जो अवस्था देखे हैं, उस दशा में विषय-कर्म करने से पीड़ा और भी बढ़ जाएगी। अपने भाइयों से कहना कि उनके संसार का जो कार्य तुम कर सकते हो, वह तुमसे कराएँ। उनका दासत्व करने को कहा है। भगवान् के राज्य में एक मुट्ठी आहार भगवान् किसी भी प्रकार से दिया करते हैं। सभी का कार्य एक प्रकार का नहीं होता। जिसको जिस भाव से रखें। मन शान्त रखकर चलना, संसार में कितनी अवस्थाओं का सामना करना पड़ता है! धैर्य ही सहारा है। भगवान् तुम्हारा मंगल करें। यहाँ एक प्रकार से सब ठीक है।

आशीर्वादिका,  
योगमाया।

पत्र पढ़कर बड़े भैया और मँझले भैया सब समझ गए। उन्होंने मुझसे कहा— 'नौकरी अब तुम्हें नहीं करनी पड़ेगी; अभी ठीक होना है बस।' रोग के 18 वें दिन में भैया लोगों के मुख से यह बात सुनकर मेरा अन्तःकरण मानो शीतल हो गया; 19 वें दिन अचानक मेरे सिर की व्यथा कम हो गई, अब कोई शारीरिक दुर्बलता नहीं रही। 20 वें दिन हल्का भोजन करके चलने-फिरने लगा।

इतने समय से साधन-भजन, व्रत के नियम समस्त ही बन्द हो गए थे। स्वस्थ होने के बाद पुनः साधना करने की प्रबल इच्छा हुई। मैंने नियम बनाकर ठीक उसी के अनुसार चलने लगा। प्रातः थोड़ा जलपान करके 6 बजे से 11 बजे तक नाम-जप, प्राणायाम, पाठ एवं ध्यान करने लगा। भोजन के बाद, साढ़े 12 से 5 बजे तक नाम-जप करके समय बिताता हूँ। रात्रि में थोड़ा जलपान करके कभी 12 तो कभी 1 बजे तक सोता हूँ; उसके बाद प्रातः तक प्राणायाम, कुम्भक, नाम-जप और ध्यान करके समय बिताया करता हूँ। इस प्रकार परमानन्द से मेरे दिन-रात बीत रहे हैं।

## सद्गति के लिए शक्तिशाली मृतात्मा का उपद्रव

इस बार फैजाबाद आकर बहुत-सी नई-नई घटनाएँ देखी। उनमें से कुछ घटनाओं का उल्लेख कर रहा हूँ। यहाँ आकर निर्जन में साधन-भजन की सुविधा

के लिए मैंने पूजा-घर में आसन लगाया। ऊपर में केवल दो कमरे हैं। भैया के कमरे के दक्षिण ओर ही पूजा-घर है; इस कमरे में दक्षिण की ओर एक बड़ी खिड़की है। नीचे विशाल बगीचा है। खिड़की के आठ-नौ फीट के अन्तर में ही एक सुन्दर बेल का पेड़ है। इस बेल के पेड़ के नीचे थोड़ी दूरी पर बाहर का शौचालय है। पूजा-घर में एक परमहंस द्वारा प्रदत्त भैया के शालग्राम हैं। इस कमरे के एक कोने पर आसन बिछाकर मैं साधना करने लगा। इसी समय श्वास-प्रश्वास की स्पष्ट ध्वनि मेरे कान में आने लगी। ठीक जैसे एक व्यक्ति सामने बैठकर वेग से दीर्घ श्वास-प्रश्वास में प्राणायाम कर रहा है। मैं आँखें खोलकर चारों ओर देखने लगा; सूने कमरे में बारम्बार तीव्र श्वास-प्रश्वास की ध्वनि सुनकर चकित रह गया। अनुसन्धान करके भी कुछ समझ नहीं पाया। आसन पर स्थिर बैठते ही इस प्रकार की ध्वनि होने लगती है, जब तक आसन में बैठा रहता हूँ, यह ध्वनि रुकती नहीं; मुझे बड़ी दुश्चिन्ता होने लगी। तीन-चार दिन बाद भैया को इस विषय में बताया। भैया ने कहा— 'गोस्वामीजी के जाने के बाद से यहाँ यह एक नई घटना होने लगी है। पूजा-घर में जाते ही हमें श्वास-प्रश्वास की भयानक ध्वनि सुनाई पड़ती है। घर का कोई सदस्य साधारण कारण से उस कमरे में नहीं जाता; सभी वैसी ध्वनि सुना करते हैं, लेकिन आँखों से अभी तक किसी ने कुछ देखा नहीं। मैं वहाँ अकले कभी नहीं बैठता। तुम ही इतने दिन से उस कमरे में हो, यह बड़ा आश्चर्य है।' मैंने भैया से पूछा— 'गोस्वामीजी जब यहाँ आए थे, तब क्या उन्होंने यहाँ किसी भूत-प्रेत के रहने की बात कही थी?' भैया कहने लगे— 'गोसाँईजी जिस दिन यहाँ आए, प्रातः बाहर के शौचालय में जाते ही एक भूत उनके पास पहुँच गया और नाना प्रकार से उपद्रव करने लगा। इधर चाय बन गई थी, सभी गोसाँईजी की प्रतीक्षा करने लगे। गोसाँईजी को आने में विलम्ब होते देखकर सभी घबरा गए। कुछ लोग दूर से ही देखने लगे कि गोसाँईजी आ रहे हैं या नहीं। फिर मुझसे उन लोगों ने पूछा, तो मैंने कहा, गोसाँईजी को भूत ने पकड़ा है। उन लोगों ने मेरी बात को मजाक समझा। आधे घण्टे बाद गोसाँईजी आए। हाथ-मुँह धोकर दरवाजे के सामने खड़े होकर दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए उन्होंने कहा—

**“दुर्गा! दुर्गा!! बाबा! कैसा उपद्रव है! कैसा उपद्रव है! बच गया!”**

श्रीधर ने पूछा— 'क्या हुआ?'

गोसाँईजी ने कहा— **“बेल के पेड़ में एक भूत है, उसके साथ इतना समय लगा। सामने आकर खड़ा हो गया; जाता भी नहीं, महा मुस्किल! इसीलिए विलम्ब हुआ।”**

भूत ने क्या कहा, पूछने पर गोसाँईजी ने कहा— **“शौचालय जाते ही भूत सामने आकर खड़ा हो गया। मुझसे कहा— ‘आप यहाँ आएँगे जानकर 12**

वर्ष से यहाँ पर आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ, अब मेरा उद्धार कीजिए।' मैंने कहा— 'आप अब हट जाइए, मैं शौच से निवृत्त हो लूँ; फिर जो है, वह सुनूँगा।' उसने किसी भी प्रकार से दरवाजा छोड़ा नहीं; रोना-धोना, गड़बड़ करना आरम्भ कर दिया; अपनी सद्गति के लिए मुझसे प्रतिज्ञा करवा ली। यहाँ वह किसी का कुछ भी अनिष्ट नहीं करेगा, यथासाध्य उपकार ही करेगा; उसने स्वीकार किया। उसको और भी कुछ समय प्रतीक्षा करनी होगी, मैंने कहा। फिर उसको हटाकर शौच से निवृत्त होकर आया; इसलिए इतना विलम्ब हुआ।"

भैया की यह सब बातें सुनकर मेरा सन्देह दूर हो गया। मैं पूजा-घर में ही आसन रखकर निश्चिन्त मन से दिन-रात बिताने लगा। गुरुदेव ने कहा था, 'प्रथम अवस्था में ब्रह्मोपासना अच्छी है। ब्रह्मज्ञान होने से सहज में तत्त्व की उपलब्धि होती है।' मैं नाम-जप करते समय गुरु का ध्यान करना छोड़कर सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, निराकार परब्रह्म के अस्तित्व का ही ध्यान करने लगा। पूर्व के अभ्यास के कारण इस प्रकार की उपासना में मुझे बड़ा आनन्द आने लगा। अन्यान्य दिनों की भाँति रात्रि 1 बजे उठा; हाथ-मुँह धोकर, मोटी सूखी लकड़ी की धूनी जलाकर आसन पर बैठा। प्राणायाम, कुम्भक नियमानुसार करके नाम-जप करने लगा। शरीर थोड़ा सुस्त लगने पर तकिये में एक भुजा रखकर, करवट लेकर ऊपर के एक पैर को मोड़ लिया और दूसरे को दीवाल की ओर फैला दिया। मेरे सामने धू-धू करके धूनी जलने लगी। कभी आँखें खोलकर तो कभी बन्द करके नाम-जप करने लगा। कुछ क्षण बाद ही स्पष्ट रूप से ठाकुर का रूप मेरे मन में बारम्बार उदित होने लगा; लेकिन मैं उसे मन से हटाकर ब्रह्म के ध्यान में चित्त को एकाग्र करने लगा। इस समय अचानक देखा, मेरे पैर की ओर आसन पर एक व्यक्ति बैठा हुआ है। उसकी आकृति विशाल पहलवान की भाँति— वर्ण काला, मुण्डित मस्तक, दोनों नेत्र अति उज्ज्वल। उससे आँख मिलने पर उसने मुझे संकेत द्वारा आसन से उठकर बैठने एवं अपने साथ प्राणायाम करने के लिए कहा। 'साधना के आसन पर दूसरे के बैठने से साधना की एकाग्रता का भाव नष्ट हो जाता है, दूसरे के भाव से आसन दूषित होता है, इसलिए दूसरे को साधना के आसन पर बैठने नहीं देते।' यह बात ठाकुर के मुख से सुनी थी। अतएव उसको अपने आसन पर बैठा देखकर मेरा माथा गरम हो गया। उतरकर बैठने के लिए एक बार मैंने विरक्त होकर उससे कहा; परन्तु वह मेरी बात न मानकर एकटक मेरी ओर देखता रहा। तब मैं क्रुद्ध होकर मुड़े हुए बायें पैर को खींचकर तीव्रता से उसकी छाती को लक्ष्य करके लात मारा। पैर उसका शरीर भेदकर धम् शब्द के साथ दीवाल पर लगा; लेकिन उसके शरीर के स्पर्श का थोड़ा

भी अनुभव नहीं हुआ। लात मारते ही उस व्यक्ति ने एक अद्भुत शक्ति का प्रयोग किया। अचानक प्राणायाम में भयंकर दम लगाकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसकी दोनों भुजाओं, गले और मस्तक की नसें फूल गईं, यह स्पष्ट देखने लगा। तब मेरे भीतर की वायु को प्राणायाम के प्रबल आकर्षण से खींचकर वह भूत क्रमशः दम चढ़ाने लगा। मैं बहुत प्रयास करके भी वायु खींच नहीं पाया। कुम्भक द्वारा कमरे की पूरी हवा को रोक लिया है, मैं समझ गया। तब सर्वांग अवसन्न हो गया, मुझमें हिलने की भी शक्ति नहीं रही। मृत्युकाल आ गया समझकर मैं अभ्यासवशतः निराकार ब्रह्म का ध्यान करने लगा। इस समय भाँग के नशे की भाँति मानो मुझे कोई बार-बार हवा में उछालने लगा; खड़े होने का स्थान न पाकर भयंकर आतंक और यन्त्रणा से मैं चारों ओर अन्धकार देखने लगा। उठा-पटक के भय से बेचैन होकर उस समय गुरुदेव के श्रीचरण का स्मरण करने लगा। मेरी चेतना लगभग विलुप्त हो गई। इस अवस्था में कितने क्षण रहा, कुछ पता नहीं। फिर अनजाने में रुक-रुककर धीरे-धीरे श्वास चलने लगी। कुछ समय बाद मेरी चेतना लौटी, मैं तुरन्त उठकर आसन पर बैठ गया। तब बड़े तेजःपूर्ण स्वर में बारम्बार भूत को पुकारने लगा; किन्तु वह दिखलाई नहीं दिया। श्वास-प्रश्वास की ध्वनि इस दिन से बन्द हो गई। जागृत अवस्था में इस प्रकार भूत के झमेले में कभी पड़ा नहीं। यह भूत बड़ा शक्तिशाली था, उस विषय में कोई सन्देह नहीं।

इस घटना के कुछ दिन बाद, एक बार रात्रि में लगभग 1 बजे स्वप्न देखा— एक डकैत भैया के कमरे में प्रवेश करके, भैया की हत्या करने के उद्देश्य से पेड़ की एक बड़ी लाठी से उनके सिर पर लगातार प्रहार कर रहा और मैं भैया की रक्षा करने के लिए दौड़कर जा रहा हूँ। स्वप्न देखते ही नींद टूट गई। जागने पर भैया के कमरे से 'गों, गों' शब्द एवं वहाँ कुछ हल्ला सुना। मेरा हृदय काँप उठा। मैं दौड़कर भैया के कमरे में गया; जाकर देखा भैया बिछौने पर बैठकर हाथ-पैर पटक रहे हैं, श्वास बन्द हो गई है। मैंने 'जयगुरु, जयगुरु' कहते-कहते भैया को जकड़ लिया। कुछ क्षण बाद भैया श्वास-प्रश्वास लेने में समर्थ हुए। स्वस्थ होकर भैया ने कहा— 'स्वप्न देखा, एक व्यक्ति ने मुझे दबाकर पकड़ लिया है; उसी से मेरी श्वास बन्द हो गई थी।'

## सत्य स्वप्न: आँखों का कष्ट

अन्य एक दिन नाम-जप करते-करते रात्रि के अन्तिम प्रहर में निद्रा के आवेश में आ गया। स्वप्न देखा— एक गौरवर्ण, पवित्रमूर्ति ब्राह्मण ने आकर कहा, 'अरे, आज तुम्हारी बायीं आँख उठेगी, तीन-चार दिन थोड़ी यन्त्रणा होगी, फिर दूर हो जाएगी; घबराना नहीं।' प्रातः उठकर, हाथ-मुँह धोकर भैया को दोनों आँखें

दिखाकर पूछा— 'क्या मेरी आँख उठेगी?' भैया ने देखकर कहा— 'आँखें तो ठीक हैं, आँख आने का कोई लक्षण नहीं दिखता।' कुछ क्षण बाद स्वप्न की बात भूल गया। दिन में 8 बजे आँख थोड़ी 'आने, आने' (भारी) जैसे लगी। कुछ समय बाद ही बायीं आँख लाल हो गई, भयंकर ज्वाला होने लगी; भैया मेरी आँख की दशा देखकर चकित हो गए। चार दिन बड़ा कष्ट भोगा, फिर दूर हो गया। किसी भी औषधि का उपयोग नहीं किया। स्वप्न अक्षरशः सत्य हुआ देखकर आनन्द मिला।

## क्षुधार्त शालग्राम

एक दिन प्रातःकाल आसन पर बैठकर नाम-जप कर रहा था, यज्ञ के धुएँ की पवित्र सुगन्ध आने लगी। कहाँ से वह सुगन्ध आ रही थी, जाँच-पड़ताल करके भी कुछ जान नहीं पाया। अन्य कहीं भी वह सुगन्ध नहीं थी, केवल पूजा-घर में सुगन्ध फैली हुई थी। प्रातः से संध्या तक एक ही प्रकार से दिनभर वह अद्भुत सुगन्ध रही। सुगन्ध के गुण से चित्त प्रफुल्लित होने लगा। पूजा-घर में दिनभर यह सुगन्ध पाकर सभी लोग चकित हो गए। सुगन्ध आने का किसी प्रकार का कारण निश्चित नहीं कर पाने पर भैया ने कहा— 'यह मेरे शालग्राम ठाकुर की देह की सुगन्ध है, अन्यथा कमरे के बरामदे में यह सुगन्ध क्यों नहीं है?' मैं भैया की बात सुनकर हँसने लगा। तब भैया शालग्राम के विषय में कहने लगे— "मेरे नारायण पर तुम विश्वास नहीं करते। मैं भी उनको पत्थर के सिवा और कुछ नहीं मानता था; लेकिन अब शालग्राम के अद्भुत प्रभाव को देखकर विश्वास किए बिना नहीं रह पा रहा हूँ। एक दिन अचानक एक विशालकाय जटाधारी, सौम्यमूर्ति संन्यासी आकर मुझे पुकारने लगे। उनके पास पहुँचते ही उन्होंने मेरे हाथ में शालग्राम देकर कहा— 'इस शालग्राम को घर में रखकर आप इसकी सेवा-पूजा करें, आपका विशेष कल्याण होगा।' मैं उन सब में विश्वास नहीं करता, सेवा-पूजा भी नहीं कर पाऊँगा कहकर उसे लेने से अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा— 'अच्छा, आप केवल इस चक्र (शालग्राम) को रख दीजिए, वे स्वयं ही अपनी सेवा-पूजा की व्यवस्था करवा लेंगे।' मैंने संन्यासी के कथनानुसार घर के एक स्थान पर उसे रख दिया, उसकी कोई खोज-खबर नहीं रखता था। एक बार रात्रि में स्वप्न में शालग्राम ने कहा— 'देख इस कचरे के भीतर मुझे फेंक दिया है।' प्रातः उठकर कचरे के भीतर से शालग्राम को उठाकर ले आया। कौन, कब, किस प्रकार उसे फेंक दिया था, कुछ पता नहीं। उस कारण थोड़ा आश्चर्य हुआ। इस घटना से शालग्राम के ऊपर थोड़ी भक्ति भी हुई। मैंने शालग्राम को लाकर कमरे में एक छोटी चौकी के ऊपर रख दिया; प्रतिदिन मैं स्नान के बाद कुछ समय आसन पर बैठता हूँ, उसी समय शालग्राम को भी स्नान कराकर फूल, तुलसी देने लगा।



इसके बाद से ही शालग्राम बार-बार स्वप्न में मुझ पर इस प्रकार कृपा करने लगे कि उसकी किसी प्रकार से उपेक्षा नहीं पाया। जिस प्रकार शालग्राम का परिचय मिलने लगा, उसी प्रकार मेरी श्रद्धा-भक्ति भी बढ़ने लगी। गोस्वामीजी के यहाँ आने के बाद से, उनके कहने पर रीति के अनुसार शालग्राम की सेवा-पूजा करता हूँ। मेरे ठाकुरजी पत्थर नहीं हैं, जागृत देवता हैं; वे भी यही कह गए हैं। एक दिन वे अयोध्या जाकर समस्त ठाकुरजी का दर्शन करके आए। घर पहुँचते ही उन्होंने मेरे ठाकुरजी का दर्शन करने के लिए पूजा-घर में प्रवेश किया। कुछ क्षण शालग्राम की ओर देखकर वे बालक के समान रोने लगे, आँखों से झरझर आँसू गिरने लगे; वे व्यग्रता से इधर-उधर ताककर फिर अपने अलखल्ला के पॉकेट में हाथ डाले एवं कुछ पेड़ा-बरफी बाहर करके ठाकुरजी के पास रख दिए। कुछ क्षण बाद साष्टांग प्रणाम करके बाहर आ गए। मिठाई कहाँ से मिल गई, हम लोगों ने पूछा। उन्होंने कहा— **मैंने कुछ मिठाइयाँ संग्रह करके रखी थी; पूजा-घर में जाते ही ठाकुरजी ने प्रकट होकर मेरे पास दोनों हाथ फैलाकर कहा, 'शीघ्र मुझे कुछ खाने के लिए दो; कई दिन से उपवास हूँ, ये लोग मुझे खाना नहीं देते।' मेरे पॉकेट में जो था, वही नारायण को दिया। समस्त मन्दिर और देवालय देखकर आया, परन्तु इस प्रकार का और कहीं नहीं देखा। यहाँ वामनदेव सर्वदा जीवन्त अवस्था में विद्यमान हैं। ठाकुरजी की नियमानुसार सेवा-पूजा करनी चाहिए।**

भैया ने कहा— “अस्पताल का काम-काज निपटाकर शालग्राम की पूजा करने में बड़ी असुविधा होती है, भोग का यहाँ बन्दोबस्त करना और भी कठिन है। गोसाँईजी ने यह बात सुनकर कहा— **'अस्पताल जाने के पूर्व हाथ-मुँह धोकर, कपड़े बदलकर एक बार नारायण को नहलाकर चन्दन-तुलसी देना; फिर थोड़ी मिठाई और जल-तुलसी निवेदन करने से ही हो जाएगा।'** मैं गोस्वामीजी के कहे अनुसार ही अब शालग्राम की पूजा करता हूँ।”

मैंने भैया से कहा, यहाँ जब ठाकुर आए थे, उनके साथ और कौन-कौन थे? घर में सभी के सुविधानुसार रहने की व्यवस्था तो हो गई थी? ठाकुर कहाँ-कहाँ गए थे? दिनभर कहाँ-कहाँ घूमते थे? यह सब जानने की इच्छा होती है।

## फैजाबाद में गोसाँईजी की अवस्थिति

भैया कहने लगे— तुम्हारा पत्र पाकर ही मैं तीन-चार दिन की छुट्टी लेकर गोस्वामीजी का दर्शन करने काशी गया। उनको बहुत समय बाद देखा, देखकर ही लगा कि अब वे पहले जैसे मनुष्य नहीं रहे, अब वे आकृति व प्रकृति से साक्षात् महादेव हो गए हैं। मुझे बड़ा आनन्द मिला। छुट्टी बहुत कम दिनों की थी, इसलिए

मुझे शीघ्र लौटना पड़ गया। लौटते समय, गोस्वामीजी से श्रीवृन्दावन जाने पर रास्ते में फैजाबाद होकर जाने का अनुरोध करके आया; वे दया करके मेरी बात पर सहमत हो गए। गोसाँईजी कुछ दिन बाद ही यहाँ आ गए; उनके साथ उनकी पत्नी, योगजीवन, हरिमोहन, देवेन्द्र चक्रवर्ती, मानिकतला की माँ और उनके पति ब्रज बाबू आए थे। तब मेरे घर में देवेन्द्र पाल आदि चार-पाँच लोग थे; स्थानाभाव के कारण बाहर के बैठकखाने में एक साथ बिछौना करके हम सब लोग रहते थे। मैं गोस्वामीजी के पास ही शयन करता था, देवेन्द्र मेरे पास दूसरी ओर रहते थे। गोसाँईजी सोते नहीं थे, सारी रात बैठकर बिताते थे। एक बार रात्रि में ढाई बजे पता नहीं क्यों, देवेन्द्र ने मेरी छाती पर एक थप्पड़ मारा। शक्ति चोरी और वशीकरण की क्षमता उनमें थी। थप्पड़ खाकर मैं जाग गया। मेरा अन्तःकरण मानो निस्तेज शून्य हो गया, मन बहुत उदास हो गया। तब गोसाँईजी अचानक कह उठे— **“अविश्वासी के संसर्ग से साधु सावधान! सावधान!! सावधान!!!”** गोसाँईजी के उस कथन के साथ-साथ मेरे भीतर ऐसी एक शक्ति का संचार हुआ कि ऐसा लगने लगा मानो इच्छा करने पर सारा मकान, कमरा, बैठक और कोठा को लात मारकर चूर-चूर कर सकता हूँ। उस समय देवेन्द्र मेरे पास रह न सका, उठकर अन्य कमरे में चला गया।

एक दिन गोस्वामीजी सभी को लेकर नागा बाबा का दर्शन करने गए। गोसाँईजी को देखकर नागा बाबा आनन्द से विह्वल हो गए। फिर स्थिर होकर उन्होंने गोसाँईजी से एक रात्रि वहाँ वास करने के लिए अनुरोध किया। वे सहमत हो गए। बाबाजी ने मोटे चावल का भात एवं लहसून दी हुई दाल बनाकर अतिथि-सेवा की। शीतकाल की रात्रि में सरयू नदी के खुले तट पर सब नहीं रह पाएँगे, इसलिए केवल श्रीधर, हरिमोहन और देवेन्द्र चक्रवर्ती गोसाँईजी के साथ रह गए, अन्य सब चले आए। मेरे मित्र देवेन्द्र ने वहाँ रात्रि बिताने की इच्छा व्यक्त की, लेकिन नागा बाबा ने उसको रुकने नहीं दिया। देवेन्द्र घर में आकर, एकान्त में मेरे पास सबकी निन्दा करने लगा; गोस्वामीजी को भी एक बार परखकर देखेंगे, इस प्रकार घमंड करने लगे। उसकी बात सुनकर मेरा मन बहुत खराब हो गया। अगले दिन प्रातःकाल सबको लेकर गोस्वामीजी घर आ गए। उन्होंने घर में प्रवेश करते समय दरवाजे के पास आते ही कहा— **“अरे! यहाँ साधु निन्दा हुई है; अब यहाँ रहना ठीक नहीं, तुम सब आसन उठाओ।”** यह कहकर गोसाँईजी ने घर में प्रवेश किया। आसन पर बैठकर खूब तेज स्वर में अपने-आप कहने लगे— **“इन लोगों को जानने में तेरे को बहुत समय लगेगा! कितना समझता है? क्या जानता है? हुआ क्या है? कुछ भी नहीं— बहुत चक्कर खाना होगा, बहुत भुगतना होगा। तू फिर क्या परीक्षा लेगा?”**

गोसाँईजी जब ये सब बातें कहने लगे, देवेन्द्र डर गया। उसका मुँह काला हो गया, वह घबराहट से चारों ओर ताकते हुए तुरन्त कमरे से बाहर निकल गया।

चाय पीने के बाद सभी बैठकर कल रात्रि के दर्शनादि के विषय में बातचीत करने लगे। भूत-प्रेत के साथ महादेव का, डाकिनी-योगिनी के साथ काली का एवं महावीर का जिन्होंने जिस प्रकार दर्शन किया, परस्पर वही बातचीत करने लगे। सब सुनकर गोसाँईजी ने कहा— **“नागा बाबा की प्रार्थना से ही सब आकर दर्शन दिए थे। नागा बाबा ने तुम लोगों पर बड़ी कृपा की! उनकी अद्भुत शक्ति के प्रभाव से ही इस प्रकार नदी के तट पर हम लोगों को ठण्ड की थोड़ी-भी अनुभूति नहीं हुई। यह कोई सहज बात नहीं है।”**

भैया ने पूछा— आप सब लोगों के पास तो केवल एक-एक कम्बल ही था, इस कड़ाके की ठण्ड में रातभर सरयू के खुले मैदान में क्या आप लोगों को ठण्ड से कष्ट नहीं हुआ?

ठाकुर ने कहा— **“कहा तो, हम लोगों को कोई कष्ट ही नहीं हुआ, छप्पर के नीचे बड़े आराम से थे।”**

हरिमोहन ने हँसते-हँसते कहा— ‘हाँ, बहुत सुन्दर छप्पर, दोनों ओर केवल दो टूटी टट्टियाँ, सामने और पीछे खुला, सिर के ऊपर स्वच्छ आकाश में असंख्य तारों का छप्पर; परन्तु आश्चर्य है कि कुछ क्षण बाद शरीर से कम्बल हटाना पड़ा। गरमी लगने लगी।’ तब योगजीवन ने कहा— ‘मुझे भी लगा मानो एक गरम हवा की कुण्डली में हूँ। भोर 4 बजे वह कुण्डली अन्तर्धान हुई। तब थोड़ा ठण्ड का अनुभव हुआ था।’ इस समय ठाकुर ने भैया से पूछा— **“नागा बाबा ने कौन-सी साधना की थी, जानते हो?”** भैया ने कहा— ‘सुना है, शव-साधना की थी।’

ठाकुर ने कहा— **“हाँ, तभी सम्भव है; अन्यथा ऐसी शक्ति इतने सहज में प्राप्त होना प्रायः देखा नहीं जाता; किन्तु यह शक्ति अधिक दिन नहीं रहती। इस साधन-मार्ग के साधुओं की प्रकृति जिस प्रकार उग्र होती है, नागा बाबा की वैसी नहीं है। वे बहुत शान्त हैं।”** यह कहकर नागा बाबा की तपस्या की बहुत प्रशंसा करने लगे।

एकजन ने पूछा— ‘इन सब तपस्या में सिद्ध होने पर ही क्या मनुष्य दीर्घजीवी होता है?’

ठाकुर ने कहा— **“नहीं, सिद्ध होने से ही मनुष्य दीर्घजीवी होगा, वैसा नहीं है। कायाकल्प में सिद्ध होने से शरीर दीर्घकाल तक स्थायी होता है।”** यह कहकर उन्होंने एक फकीर साहेब की कथा सुनाई—

## कायाकल्प फकीर की कथा

(यह कहानी ठाकुर के मुख से मैंने जिस प्रकार सुनी थी, भैया की डायरी में भी बिल्कुल वैसा ही देखकर उसे लिखकर रख रहा हूँ।)

ठाकुर ने कहा— “जब गया में था, प्रायः एक फकीर के पास जाना-आना करता था। फकीर निर्जन स्थान में जंगल के भीतर एक टूटी हुई मस्जिद में रहते थे। एक दिन जाकर देखा, फकीर साहेब मस्जिद के बरामदे में अचेत अवस्था में औंधे पड़े हुए हैं। उस दिन वहाँ कुछ क्षण चुपचाप बैठे रहकर चला आया। इस प्रकार पाँच-सात दिन हो गए, रोज एक बार मैं फकीर साहेब को देखने जाता। एक दिन देखा, फकीर साहेब का शरीर भयंकर फूल गया है और उसमें विष्ठा के कीट के जैसे पूँछ वाले बड़े-बड़े कीड़े पूरे शरीर में बैठकर रक्त चूस रहे हैं। सरसों के बराबर भी जगह खाली नहीं है। फकीर साहेब कीड़ों के काटने की यन्त्रणा से बीच-बीच में ‘ऊह, ऊह’ कर रहे हैं। देखकर बड़ा कष्ट हुआ; वहाँ ऐसा एक पक्षी भी नहीं था जो आकर कीड़ों को खाए। ऐसी भगवान् की लीला है!”

“उस समय एक दिन एक मुसलमान जमींदार ने मुझसे साहेब की बात पूछी। मैं उनको फकीर साहेब के पास ले गया। वे उनकी किसी प्रकार की चिकित्सा का प्रयास करके फकीर साहेब को जिससे विरक्त न करें, यह विशेष रूप से कहा; लेकिन उन्होंने मेरी बात सुनी नहीं। धीरे-धीरे जाकर फकीर के पास बैठ गए और बड़ी सावधानी से पूँछ पकड़कर खींचते हुए दो-तीन कीड़ों को निकाले। अब तुरन्त उस स्थान से निरन्तर रक्त निकलने लगा। फकीर साहेब चीत्कार उठे। जमींदार तब डर गए। उन कुछ कीड़ों को उठाकर पुनः उसी-उसी स्थान पर बैठा देने के लिए फकीर साहेब बारम्बार चित्कार करते हुए कहने लगे। मुसलमान के वैसा करने के बाद फकीर शान्त हुए। जमींदार बहुत पछताते हुए चले गए। मैं निवास-स्थान पर आ गया। इसके कुछ दिन बाद जाकर देखा, फकीर साहेब मस्जिद के बरामदे में चहल-कदमी कर रहे हैं। सुन्दर प्रफुल्लित मुख, शरीर में मानो एक ज्योति खेल रही है। तब समझा फकीर साहेब का संकल्प सिद्ध हो गया; कुछ दिन बाद फिर उनको देखा नहीं गया। कहीं चले गए।”

“सुना है— देहकल्प में तीन सौ वर्ष, पाँच सौ वर्ष, हजार वर्ष की परमायु प्राप्त करने के लिए संकल्प करके भिन्न-भिन्न प्रकार की साधना,

आचार, नियम और औषधि ग्रहण करनी होती है। पक्ष के आरम्भ से अन्त तक कोई 15 दिन तो कोई एक मास, फिर उस प्रकार समर्थ तपस्वी व्यक्ति दीर्घ परमायु प्राप्त के लिए औषधि सेवन करते हुए डेढ़ मास नियम-निष्ठा से रहकर देहकल्प सिद्ध होते हैं।”

“मैं जब भागलपुर में था, तब दो साधु गंगा के किनारे स्थित बरोरी के एक प्राचीन निर्जन अन्धकार गुफा में तीन सौ वर्ष का जीवन प्राप्त करने का संकल्प करके 15 दिन के लिए इस साधन में प्रवृत्त हुए। सम्भवतः औषधि के गुण से दिनो-दिन उनके शरीर का मांस धीरे-धीरे गलकर गिरने लगा, फिर वैसे ही साथ-साथ उसी-उसी स्थान पर नया मांस बनना आरम्भ हो गया; एक साधु की यन्त्रणा से मृत्यु हो गई। दूसरा सिद्धि प्राप्त करके 15 दिन बाद कहाँ चला गया, पता नहीं चला। भगवान् की सृष्टि में कितना कुछ है, जानने के पूर्व उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती!”

गोस्वामीजी को एक दिन गाड़ी में बैठकर अयोध्या जाते समय रानुपाली के विशाल मैदान में अपूर्व राजवेश में राम-सीता के दर्शन हुए। उस दिन वे सरयू में स्नान करके हनुमानगढ़ी, रंगमहल, सीता-राम के मन्दिरादि कई देवस्थान गए थे। माधोदास बाबाजी के आश्रम जाकर उन्होंने उनके शिष्य नारायण दास से भेंट की। मणिबाबा के आश्रम गए। अयोध्या में सभी मणिबाबा को सिद्ध महात्मा समझते हैं। गोसाँईजी का दर्शन करके वे आनन्द से अचेत हो गए। कुछ क्षण बाद उठकर हाथ जोड़ते हुए उन्होंने गोसाँईजी से कहा— ‘कृपा करके दर्शन तो दिए, अब हमारे रहने का क्या प्रयोजन? आप हमारे स्थान पर रहिए, हम देह छोड़ देते हैं।’ गोसाँईजी भी मानो कितने पुराने परिचित लोग मिल गए, उसी भाव से उनके साथ बातचीत करने लगे। गोसाँईजी पतितदास बाबाजी के दर्शन करने भी गए थे। उन लोगों के परस्पर मिलन से जो आनन्द की स्फूर्ति और भाव का आवेश हुआ था, उसे फिर हम लोग क्या समझेंगे?

भैया ने कहा— हम सभी लोगों का भोजन एक साथ होता था। जो लोग मछली खाते हैं, वे लोग पहले ही भोजन कर लेते। मैं गोस्वामीजी के साथ उनके पास ही बैठता था। एक दिन भोजन करते-करते उन्हें पता चला कि मैं मछली खाता हूँ, तुरन्त उन्होंने रसोइये ब्राह्मण को बुलाकर मुझे मछली देने के लिए कहा। मैं बारम्बार मना करने लगा। अन्त में उनके अत्यन्त आग्रह को टाल न सका, मैंने मछली खाई। गोसाँईजी ने कहा— ‘आप निःसंकोच मछली खाएँ, उससे मुझे कोई असुविधा नहीं होती।’ खाते समय मेरे मुख से चबाने का शब्द होता था। उसे सुनकर एक दिन उन्होंने कहा— ‘भोजन चबाने का शब्द नहीं होना ही

**अच्छा है।** मैं तब से सावधान होकर भोजन करता हूँ।

मानिकतला की माँ बहुत समय तक आहारत्यागी रहीं, वे एक चुल्लु पानी भी नहीं पीती थीं; अनुरोध करके कोई अच्छी वस्तु खिला देने से उनको तुरन्त उल्टी हो जाती थी। ऐसी अद्भुत अवस्था कहीं देखी नहीं।

धर्म-सम्बन्ध से ठाकुर के परम आत्मीय नानकपन्थी सिद्ध महात्मा माधोदास बाबाजी के एक शिष्य, भजननिष्ठ कन्हाईलाल बाबा प्रायः सब समय गोस्वामीजी के पास रहते थे। वे एक दिन अप्राकृत जलराशि के मध्य मत्स्यावतार भगवान् को गोसाँईजी के सामने स्वेच्छानुसार तैरते देखकर आनन्द से मूर्च्छित हो गए। माधोदास बाबाजी के कई सम्मानित अंग्रेजी शिक्षित शिष्यगण अधिकांश समय ही गोस्वामीजी के पास रहते थे। वे लोग वहाँ नाना प्रकार के अलौकिक दृश्य और अपने इष्टदेव का आविर्भाव देखकर मुग्ध हो जाते थे।

ठाकुर के फैजाबाद में रहते समय अच्छी-अच्छी घटनाएँ हुई थीं। चर्चा होने पर उसे ठाकुर के मुख से सुनकर लिखने की इच्छा है।

फैजाबाद में लगभग दो महीना भैया के साथ बड़े आनन्द से बिताया; अचानक एक दिन घर से खबर आई, माताजी अस्वस्थ हो गई हैं। भैया ने मुझेसे कहा, 'तुमने ये कुछ महीने जिस प्रकार मेरे पास बिताया, उससे मुझे बड़ा सन्तोष मिला। मैं भगवान् से हार्दिक प्रार्थना करता हूँ, वे तुम्हें कर्म-बन्धन से मुक्त करें। गोस्वामीजी ने तुम्हें माँ की सेवा करने के लिए कहा है; अब तुम घर जाकर माँ की सेवा करो, उससे तुम्हारा यथार्थ कल्याण होगा।' भैया के आदेशानुसार मैं घर के लिए निकल पड़ा; काशी, भागलपुर, कोलकाता और ढाका में रुकने से मुझे लगभग एक महीना विलम्ब हो गया। रास्ते में जिन-जिन स्थानों पर जिन सब अवस्थाओं में पड़ा, उसे विस्तारपूर्वक लिखना अनावश्यक है। श्रीवृन्दावन में गुरुदेव की दया से ब्रह्मचर्य ग्रहण करके जिस दुर्लभ अवस्था का भोग किया था, आकस्मिक एक दुर्घटना में पड़कर उससे पतित हो गया। किस प्रकार की दुर्घटना से, कैसे और कहाँ तक मेरी दुर्दशा हुई, उसे स्मरण में रखने के लिए घटना की भूमिका मात्र का सामान्य रूप से उल्लेख करके रख रहा हूँ।

## **ब्रह्मचर्य की अद्भुत अवस्था**

गुरुदेव ने जिस दिन मुझे ऋषियों के आदर का परम पवित्र ब्रह्मचर्य-व्रत दिया, उस दिन उन्होंने मुझे क्या कर दिया, वे ही जानते हैं। मुझे अनुभव हुआ, मैं अब पहले जैसा मनुष्य नहीं रहा। मेरा शरीर, मन अन्य प्रकार का हो गया था; अपने शरीर की ओर जब मैं देखता तो बिना चर्म-मांस का, स्वच्छ काँच का शरीर

लगता था। रास्ते आदि में चलते-फिरते समय रूई के समान हल्का शरीर मानो भूमि से ऊपर वायु का अवलम्बन करके चल रहा है, ऐसा अनुभव करता था। जनेऊ को स्पर्श करते ही ब्रह्मचर्य का वैदिक मन्त्र अपने आप स्मृति में आकर, 'मैं ब्राह्मण हूँ, मैं ऋषि हूँ' इस प्रकार एक भाव का संचार कर देता था। जप के समय 'नाम' एक सारवान् सजीव शक्तिशाली मन्त्र लगता था। उससे नई-नई स्फूर्ति और भाव की तरंग अन्तःकरण में प्रायः सब समय खेला करती थी। कई दिनों की अभ्यस्त कामिनी-कल्पना और सुख-कामना भूल से भी अन्तःकरण में उदित होने से बड़ी विरक्ति लगती, ज्वाला होती थी। केवल शुद्ध देह का अद्भुत आनन्द उपभोग करके समय-समय पर मुग्ध हो जाता था। सोचता, 'ये क्या हो गया? गुरुदेव ने मुझे ये क्या कर दिया?' गुरुदेव के श्रीचरणों से विदा लेने के बाद भी बहुत दिनों तक उन्होंने मुझे इस अपूर्व अवस्था का उपभोग करने दिया था। दयालु ठाकुर ने फिर पता नहीं क्यों एक सुन्दर स्त्री को माध्यम बनाकर मेरे अचल व्रत में प्रलय ला दिया; मैं धीरे-धीरे निस्तेज, शक्तिहीन हो गया।

### प्रलोभन में अविकारः अहंकार से पतन

माताजी अस्वस्थ हैं, यह संवाद पाकर उनकी सेवा के लिए अविलम्ब घर पहुँचने का संकल्प किया, किन्तु भाग्य के फेर से दुर्मतिवश महीनेभर से भी अधिक समय तक यहाँ-वहाँ घूमता-फिरता रहा। इस समय में कुछ दिन एक परिचित के घर में मुझे रहना पड़ा। वे एक के बाद एक कई अनर्थों से उत्तेजित होकर, उसकी निवृत्ति हेतु अन्यत्र जाने के लिए बाध्य हो गए। घर में एकमात्र पत्नी रह गई। नौकर-नौकरानी के सिवा अन्य परिजन के न रहने से पत्नी की देख-रेख का भार बाबू मेरे ऊपर सौंप गए। अधिक घनिष्ठता के कारण सजन में, निर्जन में निःसंकोच मेरे साथ उनका परस्पर वार्तालाप, उठना-बैठना बहुत समय से चला आ रहा है। मेरा आसन और सोने का स्थान उनके आग्रह और जिद करने पर भीतर ही हुआ। दिन के 12 बजे तक का समय मैं एकान्त में साधन-भजन करके बिता देता था। रमणी उस समय अपने गृहकार्य में लगी रहतीं। मध्याह्न में भोजन के बाद, नौकरादि बाहर चले जाते थे। रमणी तब अकेली अलग कमरे में न रहकर मेरे कमरे में आसन से कुछ दूरी पर शयन और विश्राम करती थीं। इस समय वे धर्म-वृत्तान्त उठाकर, सरलता की आड़ में अपने भीतर का कुभाव मेरे सामने धीरे-धीरे प्रकट करने लगीं। मैं बड़े संकट में पड़कर, क्या करूँ सोचने लगा।

उनकी किसी भी चेष्टा में बाधा देने का मेरा साहस नहीं हुआ। सोचा, इस समय उनके लिए कुछ भी कार्य असाध्य नहीं है। मेरे किसी विरुद्ध व्यवहार से यदि उनके हृदय और अभिमान पर आघात लगे, तो युवती तुरन्त मेरे नाम से निन्दित

बातें कहकर चिल्लाते हुए लोगों को एकत्र कर लेंगी एवं क्षणभर में मुझे अपदस्थ करके चिरकाल के लिए मेरी अपकीर्ति, अपयश का चारों ओर प्रचार कर देंगी। एक दिन भयंकर संकटावस्था आ गई जानकर मैं आतंक से अंधकार देखने लगा। ठाकुर ने कितनी बार कहा है— **‘पुरुष अभिभावक की अनुपस्थिति में किसी गृहस्थ के घर में अविवाहित युवक का पलभर भी रहना उचित नहीं है।’** सोचा, ठाकुर के इस अनुशासन वाक्य को सामान्य समझकर अग्राह्य करने से ही आज मैं संकट में पड़ गया। तब गुरुदेव के अभय-चरणों का स्मरण करके बारम्बार उन्हें प्रणाम करने लगा। कामिनी अत्यधिक साहस से कुछ क्षण भयंकर चंचलता प्रकट करके अन्त में ‘ओ हरि! इसलिए तुम ब्रह्मचारी हो!’ कहकर लज्जा से मुस्कुराते हुए अन्य कमरे में चली गई। तब मैं स्पर्द्धायुक्त मन से सोचने लगा— ‘ब्रह्मचर्य के नियम का पालन करके निश्चय ही मुझे अपूर्व शक्ति प्राप्त हुई है; इसलिए इस प्रकार की घटना में मैं निर्विकार रहने में समर्थ हुआ। मैंने वास्तव में साधन-राज्य के फिसलन मार्ग का अतिक्रम करके निरापद् भूमि प्राप्त कर ली है।’ किन्तु हाय! इस प्रकार मिथ्या अहंकार होने के कुछ दिन बाद ही समझ में आ गया कि मेरा सर्वनाश हो गया है। घटना का सूत्र पकड़कर धीरे-धीरे मेरे हृदय में आग लग गई। चारों ओर की अग्नि के काले धुएँ ने दुर्लभ ब्रह्मचर्य की उज्ज्वल दीप्ति को आच्छादित कर लिया। मैं पहले की अपूर्व पवित्र अवस्था से पतित हो गया। अगले दिन ही बाबू घर आ गए। मैं भी तुरन्त वह स्थान छोड़कर चला आया।

## स्वप्न में गुरुदेव का अनुशासन

इस घटना के कुछ दिन बाद ही एक के बाद एक कई स्वप्न देखा। एक स्थान पर परिचित-अपरिचित अनेक लोग एकत्र हुए हैं। गुरुदेव ने मुझे बुलाकर कहा, **‘मेरे पीछे-पीछे चलो।’** मैं उनके आदेशानुसार पीछे-पीछे चलने लगा। रास्ते के दोनों ओर फैले हुए खेत में बकरों और भेड़ों की विचित्र क्रीड़ा देखकर मैं बार-बार रुक जाता। गुरुदेव तब पीछे की ओर देखकर मुझे शीघ्र चलने के लिए कहते। मैं भी तुरन्त दौड़कर गुरुदेव के साथ-साथ फिर से चलने लगता। इस प्रकार मैं ठाकुर के साथ एक ऊँचे पर्वत के समीप पहुँचा। पर्वत पर चढ़ने के लिए अनेक गुरुभाइयों को एकत्रित देखा। वहाँ गुरुदेव ने मेरी ओर देखकर कहा— **‘तुम यहाँ रुको, मैं अभी जाता हूँ।’** ठाकुर की बात सुनकर मैं रो पड़ा एवं बड़े प्रार्थित भाव से कहा— ‘मैं आपके साथ ही इस पर्वत पर चढ़ूँगा, मुझे अपने साथ ले लीजिए।’ ठाकुर ने मुझे खूब धमकाते हुए कहा, **‘तुम बड़े जिद्दी लड़के हो। जो मन में आता है, वही किया करते हो। तुमको साथ ले जाकर क्या अन्त में उत्पात में पड़ूँगा? यहाँ कुछ समय रुको; जब सब लोग जाएँगे,**



**तब तुम भी जाना। अभी मेरे साथ नहीं जा सकोगे।'** यह कहकर गुरुदेव पहाड़ पर चढ़ने का प्रयास करने लगे, मैं रोते-रोते जाग उठा। यह स्वप्न देखकर मेरा मन बहुत बेचैन हो गया। खूब नियम-निष्ठा में रहकर साधना करने लगा— गुरुदेव के पास शीघ्र चले जाने की इच्छा हुई। तब एक दिन स्वप्न देखा— एक स्थान पर बड़ी धूमधाम से हरिसंकीर्तन हो रहा है; संकीर्तन में उन्मत्त होकर अनेक लोग भावावेश में अचेत हो गए हैं। 'दयाल नितार्ई, दयाल नितार्ई' कहकर सब लोग क्रन्दन कर रहे हैं। मैंने सोचा— नितार्ई पतितपावन हैं, उन्हें ही पुकारता हूँ। यह सोचकर 'दयाल नितार्ई, दयाल नितार्ई' कहते-कहते रोने लगा। यह स्वप्न देखकर भी मेरे मन में शान्ति नहीं मिली; सर्वदा विचार आने लगा— 'अपने दोष से ही दुर्लभ अवस्था खो दिया है।' अनुताप और क्लेश में मेरा समय बीतने लगा। एक दिन खूब व्याकुल होकर अपनी दुरावस्था गुरुदेव के चरणों में निवेदन करके सो गया। रात्रि में स्वप्न देखा— अनेक लोगों को साथ लेकर गुरुदेव एक बड़े संकीर्तन में जाने लगे। मैं अपनी दुरावस्था से उदास होकर एक किनारे खड़ा रहा। गुरुदेव ने मुझसे कहा— **'चलो, कीर्तन में जाएँगे; आज कीर्तन में तुम विशेष कृपा प्राप्त करोगे।'** मैं स्वयं को पतित समझकर, हाथ जोड़कर काँपने लगा। ठाकुर की ओर देखकर रो पड़ा। तब गुरुदेव ने मुझे पकड़कर गोद में उठा लिया। ठाकुर को देखकर उनका शरीर पत्थर के जैसा कठोर लग रहा था, परन्तु गोद में उठने पर उनका शरीर रूई के जैसा नरम अनुभव करने लगा। संकीर्तन-स्थल पर मुझे गोद से उतारकर उन्होंने कहा, **'कुछ समय तुम यहाँ प्रतीक्षा करो। मैं अभी आता हूँ।'** यह कहकर वे समीप के एक सुन्दर मकान में प्रवेश किए। मैं उसी समय जाग उठा।

यह स्वप्न देखने के बाद ठाकुर की दया का विचार करके मन में बहुत-कुछ शान्ति मिली; पर गुरुदेव की असाधारण कृपा से जो अद्भुत अवस्था प्राप्त हुई थी, वह फिर लौटी नहीं। दाता वे ही हैं, उनकी दया से क्षणभर के भीतर वही अवस्था पुनः प्राप्त हो सकती है— यह सोचकर शान्त मन से साधन-भजन करने लगा।

## गुरुवाक्य में अनास्था के कारण दुर्दैव

फैजाबाद से घर जाते समय काशी में कुछ दिन रुककर गंगा-स्नान करने की इच्छा हुई। एक दिन दशाश्वमेध घाट पर स्नान करके विश्वेश्वर-दर्शन करने का निश्चित किया। श्रीवृन्दावन में एक दिन ठाकुर ने कहा था— **'तीर्थ में जाकर पहले तीर्थगुरु करना चाहिए, उनकी अनुमति लेकर पण्डे की सहायता से स्नान, दर्शनादि तीर्थ के सारे कार्य करने चाहिए— यही व्यवस्था है।'**

इस प्रकार की व्यवस्था का तात्पर्य क्या है, ठाकुर से पूछा नहीं। साधारण लोगों की सुविधा के लिए ही यह शास्त्र की साधारण व्यवस्था है, ऐसा लगता है, शक्त सामर्थी के लिए लगता नहीं इस प्रकार की विवशता का कुछ प्रयोजन है। यह सोचकर इस नियम-पद्धति में मेरी प्रवृत्ति नहीं हुई। मैं स्नान करने के लिए दशाश्वमेध घाट पहुँचा; घाट में स्नान के लिए अग्रसर होते ही पण्डे लोग मुझे घेरकर खड़े हो गए। संकल्प मन्त्र पढ़े बिना दशाश्वमेध में स्नान करने नहीं देंगे, कहकर हल्ला करने लगे। मैं 'मन्त्र-तन्त्र जानता नहीं', 'देवी-देवता मानता नहीं' कहकर उन लोगों को भगा दिया। विश्वनाथ के मन्दिर जाने के रास्ते में फिर पण्डों का बड़ा उत्पात आरम्भ हो गया। वे सामान्य दो-चार आना मिलने से ही सन्तोषपूर्वक मुझे सरलता से दर्शन करा देंगे, कहने लगे। कोई-कोई दो-चार पैसे के फूल, विल्वपत्र की डाली मेरे सामने रखकर, पैसे के लिए विरक्त करने लगे। इसे पण्डों की केवल पैसे लेने की चतुराई समझकर, सभी को डाँटते हुए कहा— 'अन्धे-लंगड़े, बूढ़े-बूढ़ियों को दर्शन कराकर पैसे लिया करो। पण्डे उनके लिए हैं, मैं अच्छे-से दर्शन कर सकता हूँ। फूल, बेलपत्ते में अनर्थक पैसे व्यय नहीं करूँगा। जो विश्वनाथ हैं, वे क्या फिर फूल, बेलपत्ते की आशा करेंगे? अनावश्यक खर्च के लिए पैसा नहीं है।' सभी मेरी बात सुनकर 'अरे राम राम' कहकर अलग हो गए। मैं मन्दिर के द्वार पर पहुँचकर लोगों की भीड़ देखकर चकित रह गया। बहुत प्रयास करके भीतर प्रवेश किया, लेकिन अनेक लोगों के धक्के से दीवाल के पास जाकर खड़ा हो गया। इतने स्त्री-पुरुषों को ठेलकर विश्वेश्वर का दर्शन करना मुझे असम्भव लगा। तब बाहर निकलने का प्रयास करने लगा। इस समय एक सुन्दर युवती ने सुयोग पाकर लोगों की हलचल में विभिन्न कौशल से मुझे बेचैन कर डाला। विपद् समझकर मैं बड़ी कठिनाई से बाहर आया। विश्वेश्वर का दर्शन न होने से मन में कोई उद्वेग नहीं हुआ, वरन् भयंकर उत्पात से छुटकारा मिला, यह सोचकर सन्तुष्ट ही हुआ। निवास-स्थान पर जाते समय अच्छे-अच्छे कमण्डलु देखकर, एक क्रय करने की इच्छा हुई। मूल्य देने हेतु रुपये निकालने लगा तो देखा, पॉकेट में रुपये नहीं हैं। भीतर के कुर्ते में ऊपर के पॉकेट पर 35 रुपये थे, एक भी नहीं है। मुझे बड़ा क्लेश होने लगा। तब सोचा, यदि पण्डों को आठ-दस आने पैसे देकर मन्दिर जाता, तो वे मेरे लिए दर्शन की व्यवस्था सहज में कर देते। अन्य कोई उपद्रव भी मुझे स्पर्श नहीं करता, रुपये भी इस प्रकार गँवाता नहीं। शास्त्र-व्यवस्था की अमर्यादा के कारण इसे अपने लिए गुरुदेव का ही अनुशासन समझकर अनुताप करने लगा। काशी में रहने का अब मेरा उत्साह नहीं रहा; विरक्ति के कई कारण उपस्थित हो गए। मैं शीघ्र काशी छोड़कर भागलपुर पहुँचा। कुछ दिन वहाँ योगजीवन के साथ आनन्द से बिताया। फिर कोलकाता आ गया।

## मानिकतला की माँ

कोलकाता आकर एक सप्ताह रहा। भैया ने मुझे मानिकतला की माँ के साथ भेंट करने के लिए कहा था, मैं समवयस्क दो मित्रों को साथ लेकर मानिकतला की माताजी के घर गया। माताजी के पति, भैया के परिचय से मुझे पहचान कर बड़े आदर के साथ हम सब लोगों को भीतर ले गए। उस समय माताजी भावावेश में समाधिस्थ थीं। उच्च स्वर में हरिनाम करने से पाँच-सात मिनट बाद उनकी चेतना लौटी। उन्होंने बड़े स्नेह के साथ मुझे कुछ जलपान करने के लिए कहा। 'मैं प्रसाद के सिवा कुछ खाता नहीं'— कहने पर माताजी ने कहा, 'भूमि में स्पर्श करने के बाद खाओ, तो वह माँ का प्रसाद ही खाना होगा। माता के गर्भ से भूमिष्ठ होने पर सर्वप्रथम इस माँ का ही आश्रय लेना पड़ता है, भूमि ही यथार्थ माँ है। इस माँ को निवेदन करके भूमि में स्पर्श करा लेने से वस्तु में अपवित्रता का दोष नहीं रहता।'

माताजी ने अपने-आप मुझे अनेक उपदेश दिया। मैं उन सब बातों का कोई अर्थ नहीं समझ पाया; तत्त्वज्ञान के अत्यन्त दुर्बोध्य सब विषयों को विशुद्ध भाषा में निरन्तर कहने लगीं। लगभग दो घण्टे तक उन्होंने धाराप्रवाह व्याख्यान दिया। उस समय उनकी तेजःपूर्ण भाषा की रचना, शब्दों की शैली और क्रम देखकर हम लोग चकित रह गए। माताजी का व्याख्यान समाप्त होने के बाद मैंने कहा, आपने इतने समय तक क्या कहा, कुछ समझ नहीं पाया। माताजी ने कहा— 'तुम्हें देखकर भीतर में एक प्रकार का भाव हुआ; अपने-आप जो आया, वही कह दिया। क्या कहा, वह मैं भी नहीं जानती। जो कहा गया है, वह सब अवस्था जब तुम्हें प्राप्त होगी, तब तुम मेरी इन सब बातों का स्मरण करोगे। लगता है, तुम गोसाँईजी के शिष्य हो। वह लड़का साधारण नहीं है! जिसको उनका आश्रय मिला है, वह सम्पूर्ण रूप से निर्भय हो गया है, यह निश्चय जान लो; शिष्यों के भीतर उन्होंने नित्यधाम स्थापित कर लिया है; जैसी इच्छा हो चलो, समय पर वे सब कर लेंगे।'

माताजी की बातें सुनकर मुझे बड़ा अच्छा लगा। ठाकुर के मुख से माताजी की बहुत प्रशंसा सुनी है। बिना साधना के बहुत-सी अद्भुत शक्तियाँ उन्हें पूर्वजन्म के संस्कारवश स्वतः ही प्राप्त हुई हैं। लगभग दस वर्षों से आहार त्याग करके स्वस्थ शरीर में हैं। रूप की उज्ज्वलता और मुख की शोभा देखकर सभी लोग उनकी देह में किसी देवी का आविर्भाव मानते हैं। माताजी के असाधारण स्नेह से मैं अपने को धन्य समझने लगा।

## हरिचरण बाबू और लाल का पश्चात्ताप

कोलकाता से ढाका आकर गेण्डारिया-आश्रम में एक सप्ताह रहा। भजननिष्ठ संसारत्यागी गुरुभाई श्री नवकुमार बाग्ची और पण्डित श्यामाकान्त चट्टोपाध्याय जी से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। ढाका के सब गुरुभाइयों के साथ भी मेरी भेंट हुई। एक दिन श्री हरिचरण चक्रवर्ती जी मुझे अपने निवास पर ले गए। श्रीवृन्दावन में ठाकुर ने उनके सम्बन्ध में कुछ कहा या नहीं, वे बड़े आग्रह के साथ पूछने लगे। मैंने कहा— सुना है, ठाकुर का आदेश उल्लंघन करके ब्रह्मचारीजी का संसर्ग करने के फलस्वरूप आप तीन-चार गुरुभाइयों का बड़ा अनिष्ट हुआ है; उनके उपदेश के अनुसार अद्वैतवाद एवं प्रारब्ध के संस्कार से जड़ित होकर आप लोगों ने साधन-भजन छोड़ दिया है; गुरुदेव द्वारा प्रदत्त साधन में आप लोगों की पहले जैसी निष्ठा, भक्ति कुछ भी नहीं रही, वरन् इस साधन के विरोधी हो गए हैं। इसीलिए ठाकुर ने बातों-बातों में एक दिन कहा— **‘ये लोग यदि अभी से नियमानुसार साधना करें तो हो सकता है, पाँच-छः वर्ष बाद पूर्वावस्था पुनः प्राप्त कर लें। अन्यथा इस बार इसी प्रकार चले जाना होगा।’**

हरिचरण बाबू ने कहा— ‘गोसाँईजी ने ठीक बात कही है। दीक्षा ग्रहण करके उनकी कृपा से जिस अपूर्व अवस्था का भोग किया, वह अब नहीं रही; ब्रह्मचारीजी के संसर्ग से ही उस अवस्था को खो दिया है। अहा! गोसाँईजी ने दया करके कितने आनन्द में रखा था। कितने दर्शनादि होते थे; वह सब स्वप्न लगता है। अब उन सब विषयों के चिन्तन से रात-दिन जल-भुन जा रहा हूँ। गोसाँईजी फिर मुझ पर कृपा करेंगे तो?’ यह कहकर हरिचरण बाबू रोने लगे। मैं कुछ क्षण बाद चला आया।

गेण्डारिया आश्रम में असाधारण योगैश्वर्यशाली गुरुभाई श्री लालबिहारी के साथ मेरा खूब मेल-मिलाप हुआ। हम दोनों सर्वदा एक साथ रहकर ठाकुर के प्रसंग में परमानन्द से दिन बिताने लगे। एक दिन गेण्डारिया के निर्जन जंगल में ले जाकर लाल ने मुझसे पूछा— ‘भाई, वहाँ गुरुजी के पास मेरी कुछ चर्चा हुई थी? जो जानते हो उसे छिपाए बिना मुझे खुलकर बतलाओ।’ मैंने लाल के सम्बन्ध में जो सब बातें हुई थी, स्पष्ट कह दी। सुनकर लाल कुछ क्षण स्तब्ध रहे, मुख मलिन हो गया। फिर एक लम्बी श्वास छोड़कर कहने लगे— ‘ठीक कहते हो, उस समय सर्वदा जो ब्रह्मज्योति मेरे समक्ष प्रकाशित थी, वह तब से बिल्कुल अदृश्य हो गई। शक्ति की बात, योगैश्वर्य की बात छोड़ दो, अब वह सब कुछ नहीं रहा; इस समय आत्मरक्षा भी असम्भव हो गई है। रात-दिन अनुताप से, यन्त्रणा से छटपटाता हूँ। हाय! गोसाँईजी ने मुझे कितना सावधान किया था, किन्तु तब उनकी बात मानी

नहीं। उनके पास से आते समय भी उन्होंने मुझसे कहा था— ‘लाल! सम्पूर्ण उत्ताप-शून्य होने से, बहुत समय बाद मिट्टी की घास पर चन्द्र की किरण पड़ने से एक बिन्दु ओस गिरती है; किन्तु अभिमान-सूर्य के प्रकाश से वह क्षणभर में बिल्कुल सूख जाती है; खूब सावधान रहना।’ उस समय मैं गोसाँईजी की बात समझा नहीं; जो हो, उससे मेरी क्या हानि हुई? वह सब अवस्था मैंने कोई साधन-भजन करके, परिश्रम से तो प्राप्त की नहीं थी; उनकी वस्तु, उन्होंने कृपा करके दी थी, भोग किया। अब वे अपनी वस्तु ले लिए; मैं पहले जैसा था, अब भी वैसा हूँ।” इस प्रकार लाल ने बहुत समय तक खेद व्यक्त किया; फिर हम लोग गेण्डारिया आश्रम चले आए।

छोटे भैया (श्री शारदाकान्त बन्द्योपाध्याय) के मुख से माताजी की पीड़ा की बात सुनकर बहुत व्याकुल हो गया। छोटे भैया का शरीर भी बहुत पीड़ित दिखा। इस बार वे बी.ए. की परीक्षा देंगे। पीड़ित अवस्था में अत्यधिक पढ़ाई-लिखाई करके अब बहुत अस्वस्थ हो गए हैं। परीक्षा दे पाएँगे या नहीं, सोचकर बीच-बीच में बड़े हताश हो जाते हैं। छोटे भैया के कहने पर मैं घर चला गया।

नवम्बर—दिसम्बर, सन् 1890 ई. (बंगला सन् 1297, अग्रहायण)

### मेरी दिनचर्या: मातृ-सेवा से सम्पूर्ण कल्याण

नवम्बर—दिसम्बर। घर आकर माँ को अत्यन्त पीड़ित अवस्था में देखा। पित्तशूल की वेदना एवं अमाशय आदि रोग से वृद्धावस्था में माँ का शरीर बहुत ही अस्वस्थ हो गया है। रात-दिन रोग की यन्त्रणा से अवसन्न रहकर भी विशाल गृहस्थी के समस्त कार्यों का निरीक्षण एवं अपने भोजन की जो कुछ व्यवस्था है, माँ को ही करनी पड़ती है। माँ स्वस्थ रहने पर किसी से अपनी सेवा नहीं करातीं। माँ की दुरावस्था देखकर मन में बड़ा दुःख हुआ। गृहस्थी का सारा भार एवं माँ की सेवा-शुश्रूषा का जो कुछ कार्य है, मैंने ग्रहण कर लिया।

मेरी बहुत पुरानी पित्तशूल की वेदना एवं वायुरोग बिल्कुल दूर हो गया है। शरीर अच्छा सबल व स्वस्थ देखकर माँ ने पूछा— ‘तेरा यह रोग कैसे दूर हुआ?’ मैं रोग की यन्त्रणा से पागल जैसा होकर आत्महत्या करने के संकल्प से श्रीवृन्दावन गया था, तब ठाकुर की कृपा से जिस प्रकार मैं रोगमुक्त हुआ एवं मेरी रक्षा हुई, माँ को विस्तारपूर्वक बतलाया। अपने ‘ब्रह्मचर्य’ ग्रहण की बात भी माँ को स्पष्ट रूप से बतलाई। माँ सब बातें सुनकर चकित हो गईं। गोसाँईजी तेरे जीवन की रक्षा किए हैं, कहकर माँ रोने लगीं। माँ ने कहा— ‘ऐसा गुरु जब पाया है, तो

फिर उनको छोड़कर आया क्यों? उनके साथ रहने से तेरा अधिक उपकार होता। मैंने कहा, उन्होंने तुम्हारी सेवा करने के लिए ही मुझे घर भेजा है। मेरे लिए गुरु का यह आदेश सुनकर माँ ने कहा— 'अच्छा गुरु की आज्ञानुसार तू मेरी सेवा कर।' माँ का आदेश पाकर मैं सभी कार्यों का एक नियम बनाकर चलने लगा।

मैं प्रतिदिन रात्रि के अन्तिम प्रहर में आसन से उठकर शौच के बाद ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करता; फिर निर्जन कमरे में आसन पर बैठकर साधना समाप्त करके कभी तिल, तुलसी, कुशोदक से तो कभी पंचामृत से फिर विशेष-विशेष तिथि में गाय के सींग के जल से पितरों का तर्पण करके माँ के पास जाता हूँ। माँ को भूमिष्ठ होकर प्रणाम करता; माँ अपने दोनों पैरों को मेरे मस्तक पर रखकर पीठ पर हाथ फेरते-फेरते आशीर्वाद देतीं— 'तेरी मनोकामना पूर्ण हो, सुख से रह।' मैं मन-ही-मन प्रार्थना करता— 'मेरी सेवा से तुम स्वस्थ हो जाओ; तुम्हें तृप्ति मिले और मेरे गुरुदेव प्रसन्न हों।' माँ जब मेरे शरीर और मस्तक पर हाथ फेरते-फेरते बड़े स्नेह के साथ आशीर्वाद देती हैं, तब मेरा पूरा शरीर शीतल हो जाता है। भीतर एक अपूर्व आनन्द मिलता है; लगता है, मैं धन्य हो गया। माँ की पदधूलि व आशीर्वाद लेने के बाद आसन पर बैठकर 9 बजे तक साधन-भजन करता हूँ। इस समय माँ मेरे कमरे में आती हैं। गुरुगीता, भगवद्गीता और सूर्यस्तव आदि का पाठ करके माँ को सुनाता हूँ। 10 बजे माँ के लिए भोजन बनाने जाता हूँ; माँ भी उस समय पूजा-पाठ करने बैठती हैं। माँ का पूजा-पाठ और जप होते तक मेरा भोजन बनाना हो जाता है। तब माँ को प्रणाम करके उनका चरणामृत लेता हूँ। माँ शिव के मस्तक पर फूल-विल्वपत्र चढ़ाकर, हाथ जोड़कर प्रणाम करते-करते प्रार्थना करतीं— 'ठाकुर! उसकी अभिलाषा तुम पूर्ण करो।' पूजा समाप्त करके माँ भोजन करने बैठतीं; माँ को भोजन देकर मैं उनके सामने प्रसाद पाने बैठता हूँ। माँ को भोजन में जो अच्छा लगता, उसे स्वयं कम खाकर मेरे थाली में डाल देतीं। आनन्दपूर्वक माँ के हाथ से उनका प्रसाद पाता हूँ। मेरा बनाया भोजन खाकर माँ प्रतिदिन बहुत ही सन्तुष्ट होती हैं; माँ की तृप्ति देखकर मुझे जो आनन्द होता है, कह नहीं सकता। इस समय मुझे दयालु ठाकुर की बात का ही स्मरण होता है; उनकी कृपा से मेरा यह शुभ दिन आया है। भोजन के बाद गुरुदेव के शान्तिप्रद अभयचरणों के उद्देश्य से प्रणाम करके अपने आसन पर बैठता हूँ।

दिन में 1 बजे से लेकर 3 बजे तक एकान्त में बैठकर नाम-जप करता हूँ। माँ इस समय विश्राम करती हैं। 3 बजे आकर माँ मेरे आसन-गृह में बैठती हैं। उस समय मैं महाभारत, श्रीमद्भागवत एवं रामायण पाठ करके माँ को सुनाता हूँ। इस समय मोहल्ले के और भी अनेक स्त्री-पुरुष लोग आकर पाठ सुना करते हैं। 5 बजे तक पाठ करके, आसन से उठता हूँ। तब गृहस्थी का बाजार करना, हिसाब-किताब

लिखना आदि जो कुछ कार्य हैं, किया करता हूँ। संध्या के समय माँ को प्रणाम करके दो-चार समवयस्कों के साथ भगवान् का नाम-गान करता हूँ। फिर माँ के पास जाता हूँ। रात्रि में माँ मेरे ही कारण कुछ जलपान करके मुझे प्रसाद देती हैं। माँ के शयन करने पर कभी-कभी उनके पैरों में तेल लगाकर मालिश कर देता। माँ कुछ समय के लिए मुझे छाती से लगाकर सोया करतीं एवं मेरे सर्वांग में हाथ फेरकर, माथे पर फूँक मारते-मारते पेट में अंगुलि से बारम्बार ठोकते हुए रक्षा-मन्त्र पढ़ा करतीं हैं। माँ के स्पर्श से मेरा शरीर और मन बिल्कुल शीतल हो जाता है। माँ का स्नेह देखकर इस समय मैं फफक-फफककर रोता हूँ। नींद आने पर अपने आसन-गृह में आकर शयन करता हूँ। कभी बिछौने पर तो कभी आसन पर ही करवट ली हुई अवस्था में पड़ा रहता हूँ। रात्रि में प्रायः 1 बजे हाथ-मुँह धोकर, धूनी जलाकर साधना करने बैठता हूँ। रात्रि के अन्तिम प्रहर तक नाम-जप करते-करते भावावेश में या कभी तन्द्रावेश में मेरा समय बीत जाता है। गुरुदेव ने मुझे कितने आनन्द में रखा है, व्यक्त नहीं कर सकता।

घर पर रहकर प्रतिदिन एक ही नियम से साधन-भजन में, माताजी की सेवा में मेरा समय बीतता है; प्रतिदिन नये-नये उत्साह और आनन्द से साधन-भजन करने की मेरी आकांक्षा में वृद्धि हो रही है। रात्रि के अन्त में लगता है— कब सूर्योदय होगा, कब नित्यकर्म समाप्त करके माँ की चरणधूलि मस्तक पर लगाऊँगा, वे मेरे सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद देंगी; कब माँ का चरणामृत पाऊँगा, स्वादिष्ट व्यंजनादि बनाकर माँ को खिलाऊँगा। विशेष-विशेष पूजा-उत्सव के दिन सूर्योदय होते ही सभी के मन में जैसा एक उत्साह और आनन्द खेला करता है, प्रत्येक दिन उसी प्रकार, दिन के प्रारम्भ से ही मेरे भीतर एक आनन्दोल्लास की तरंग आ जाती है। गुरुदेव की असीम कृपा के गुण से माताजी की प्रसन्नता और आशीर्वाद प्राप्त करके वास्तव में मैं कृतार्थ हो गया, धन्य हो गया! मेरे प्रति ठाकुर की इस असाधारण दया का सदा स्मरण करके निर्जन में चिल्ला-चिल्लाकर रोने की इच्छा होती है; गुरुदेव जब दया करते हैं, तब सब कुछ अनुकूल हो जाता है। मातृ-सेवा की बात सुनकर भैया लोग सन्तोषपूर्वक मुझे आशीर्वाद देकर लिखते हैं— 'साधन-भजन में तुम्हारी उन्नति हो, तुम सुख से रहो।' आत्मीयजन, अभिभावकगण जो पहले मुझसे अप्रसन्न थे, अब वे लोग भी मुझसे बड़े सन्तुष्ट हैं; गाँव के वृद्ध ब्राह्मण लोग भी मेरे दैनिक अनुष्ठान की बड़ी प्रशंसा कर रहे हैं। ब्रह्मसमाजी कहकर इतने समय तक जिन्हें मेरे प्रति आन्तरिक घृणा और ईर्ष्या थी, उन्हें भी अब मेरे साथ धर्म-प्रसंग में आनन्द मिल रहा है। सभी गुरुजनों के स्नेह, ममता और आशीर्वाद के गुण से नित्य नये उत्साह-उद्यम से साधन-भजन करके भीतर एक अपूर्व शक्ति का अनुभव करता हूँ। बड़े आनन्द से मेरे दिन बीत रहे हैं।

## गुरुकृपा का अलौकिक दृष्टान्त: छोटे भैया का आरोग्य

मैं स्पष्ट अनुभव कर रहा हूँ, सद्गुरु के किसी एक सामान्य आदेश के प्रतिपालन की चेष्टा करने से ही वही सूत्र आकार में परिणत होकर, बहुत दूर स्थित शिष्य के चित्त को भी अपने अनन्त महत् भाव के साथ जोड़कर रखती है। यह सूत्र मकड़ी जाल के समान महीन होने से भी, उसी का सहारा लेकर गुरुकृपा की प्रबल धारा तड़ित प्रवाह की भाँति वेग से शिष्य के भीतर संचारित होती है। गुरु का आदेश पालन कर रहा हूँ, सदा मन में यह आने से, गुरुदेव मुझसे प्रसन्न हैं— मेरी इस प्रकार की धारणा दृढ़ हो रही है। गुरुदेव मेरी प्रार्थना सुनते हैं, व्याकुल होकर कहने से अथवा जिद करके माँग करने से वे उसे पूर्ण करते हैं— मन में इस प्रकार का संस्कार पड़ रहा है एवं उसके ही फलस्वरूप अपने ऊपर अत्यन्त विश्वास उत्पन्न हो गया है। कुछ घटनाओं में इस विषय का मुझे प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिला, उसमें से दो-चार का ही उल्लेख कर रहा हूँ।

कुछ दिन पहले छोटे भैया का पत्र मिला। उन्होंने लिखा है— 'अचानक छाती में कष्ट होने के कारण तीन दिन से शय्यागत हूँ। पढ़ाई-लिखाई भी नहीं कर पा रहा हूँ; सदा भयंकर यन्त्रणा भोग रहा हूँ। परीक्षा का समय सन्निकट है; दिनो-दिन बड़ी हानि हो रही है, इस बार लगता है, परीक्षा पास नहीं कर पाऊँगा। तुम मेरे मंगल के लिए प्रार्थना करना।' छोटे भैया का पत्र पढ़ते ही मेरा हृदय काँप उठा। मैंने व्याकुल मन से ठाकुर के चरणों में प्रणाम करके प्रार्थना की— 'गुरुदेव! छोटे भैया के शरीर की यन्त्रणा से मैं शान्त नहीं हो पा रहा हूँ; शीघ्र उनके रोग को तुम दया करके मेरे भीतर संचारित कर दो। मैं विचलित हुए बिना सन्तोषपूर्वक रोग समाप्त होने तक क्लेश भोगूँगा।' इस प्रकार प्रार्थना करके आसन पर बैठकर कुछ क्षण गुरुदेव का स्मरण किया; फिर बड़े उत्साह के साथ प्राणायाम के प्रत्येक दम में रोग की कल्पना करते हुए वायु खींचकर, रेचक के साथ अपना स्वास्थ्य छोटे भैया के पीड़ित शरीर में संचारित करने लगा। इस प्रकार एकाग्र मन से, प्राणपण से ध्यान और प्राणायाम करते-करते मुझे छाती में वेदना का अनुभव हुआ। क्रिया के साथ-साथ यह यन्त्रणा क्रमशः बहुत बढ़ने लगी; तब भीतर से उत्साह पाकर, आग्रहपूर्वक बारम्बार कुम्भक करके दृढ़ता के साथ उसे दबाकर छाती में धारण करने लगा। कुछ क्षण में ही ठाकुर की इच्छा से, मेरा शरीर असह्य यन्त्रणा से अवसन्न हो गया। मैं तुरन्त जयगुरु, जयगुरु कहते-कहते आसन से उठ गया। उसी समय छोटे भैया को पत्र लिखा। जिस दिन, जिस समय मेरे भीतर इस रोग का संचार हुआ, छोटे भैया को स्पष्ट रूप से बतलाया। छोटे भैया के जवाब से पता चला, उसी दिन ठीक उसी समय उनकी वेदना कम हो गई। अद्भुत है गुरुदेव की दया! यह पीड़ा अधिक दिन मुझे भुगतनी नहीं पड़ी।



इस घटना के कुछ दिन बाद छोटे भैया की बी.ए. की परीक्षा आरम्भ हुई; परीक्षा के तीन दिन पहले भीषण ज्वर से शय्यागत होकर उन्होंने मुझे पत्र लिखा। मैं सोमवार को प्रातः 9 बजे किसी कार्यवश जैनसार ग्राम जा रहा था, रास्ते में छोटे भैया का पत्र मिला। समझ गया, उस दिन ही छोटे भैया की परीक्षा आरम्भ होगी। रोगमुक्त होकर छोटे भैया हो सकता है परीक्षा न दे पाए, इस चिन्ता से मेरा सिर चकरा गया; जैनसार जाने के आधे रास्ते में एक बड़े वट वृक्ष के नीचे मैं बैठ गया। छोटे भैया के आरोग्य प्राप्ति एवं परीक्षा में सफलता के लिए व्याकुल होकर ठाकुर के चरणों में प्रार्थना करने लगा। एक ही दशा में व्याकुल हृदय से लगभग तीन घण्टे रोया; विपत्ति की आशंका से निरुपाय होकर ठाकुर को सब निवेदन किया। इस समय अन्तःकरण की यन्त्रणा से एवं भयंकर शोक से मूर्च्छित-सा हो गया। कुछ समय बाद ठाकुर की कृपा से समझ पाया— 'ठाकुर छोटे भैया पर दया करेंगे! छोटे भैया सम्पूर्ण आरोग्य प्राप्त करेंगे। परीक्षा में वे अवश्य पास होंगे।' मैं तुरन्त उठकर जैनसार ग्राम चला गया। उसी समय पोस्ट-ऑफिस में बैठकर छोटे भैया को पत्र लिखा— 'कोई चिन्ता मत कीजिएगा, गुरुदेव आपका कल्याण करेंगे। परीक्षा में आप अवश्य पास होंगे। लगता है, ज्वर सम्पूर्ण रूप से दूर हो गया है; कैसे हैं, लिखिएगा।' छोटे भैया ने मेरे पत्र का उत्तर दिया— 'परीक्षा के दिन (सोमवार को) पथ्य पाकर, बहुत कष्ट से परीक्षा देने गया; रास्ते में अचानक मेरे भीतर मानो एक शक्ति प्रविष्ट हो गई; अब मुझे कोई कष्ट नहीं है; भगवान् की दया से परीक्षा अच्छे-से ही दिया।' छोटे भैया का पत्र पाकर मैं निश्चिन्त हो गया; गुरुदेव की अपार कृपा का स्मरण करके रोने लगा।

-----

**जनवरी-फरवरी, सन् 1891 ई. (बंगला सन् 1297, माघ)**

**प्रकृति पूजा से दुर्दशा: श्रीश्री गुरुदेव का अभय दान**

घर आकर गुरुदेव के आदेशानुसार ब्रह्मचर्य के नियम का यथारीति प्रतिपालन करके साधन-भजन में दिन-रात बिताने लगा। गाँव के वृद्ध ब्राह्मणगण, आत्मीय एवं माननीयजन, जो लोग इतने समय तक मुझसे व्यावहारिक अनाचार के कारण बहुत अप्रसन्न थे, वे लोग भी मेरी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। सभ्य-असभ्य, स्त्री-पुरुष आदि सभी मुझे सदाचारी, चरित्रवान, भजननिष्ठ ब्राह्मण समझकर मेरी श्रद्धा-भक्ति करने लगे। दूर ग्रामवासी एवं पास-पड़ोस के लोग मुझे अपनी शारीरिक, मानसिक एवं सांसारिक नाना प्रकार की दुरावस्था और विपत्ति की बात कहकर आशीर्वाद चाहने लगे; भगवान् की कृपा से कुछ लोग असह्य रोग,

आपद-विपद् से छुटकारा पाकर वृथा ही मेरे समक्ष कृतज्ञता प्रकट करने लगे। चारों ओर मेरी प्रशंसा होने लगी। मेरे ऊपर गुणों का आरोपण पूर्णतः निरर्थक है, इन सब कार्यों से मेरा कोई सम्पर्क नहीं, यह स्पष्ट जानकर भी लोगों का किया हुआ गुणगान मुझे अच्छा लगने लगा। समय-समय पर देखने लगा, जिनका कष्ट मेरे मन को स्पर्श करता है, जिनकी विपत्ति से मैं विचलित होता हूँ, उनके कल्याण की मैं कामना करता हूँ तो ठाकुर उनका मंगल करते हैं, उत्पात को दूर करते हैं। यह सब देखकर मुझे लगा— 'एक-एक नियम का पालन करके चलता हूँ, साधन-भजन में दिन-रात बिताता हूँ; लोग मेरे चरित्र एवं अनुष्ठान की बड़ी प्रशंसा करते हैं, अतः यथार्थ में मैं धन्य हो गया हूँ।' इस प्रकार का भाव मन में आने से अपने ऊपर मुझे अत्यधिक विश्वास होने लगा। सोचा, 'ठाकुर के अलौकिक ऐश्वर्य का एक कण मेरे भीतर संचारित हुआ है; उनकी असाधारण कृपा से इस बार मैं वास्तव में निरापद् हो गया हूँ।' इस प्रकार के संस्कार से मैं धीरे-धीरे गर्वित होने लगा। उत्साह और आनन्दपूर्वक सभी के साथ निर्भय होकर हिलने-मिलने लगा। मेरे चरित्र पर लोगों का अत्यधिक विश्वास होने से युवतियाँ भी निःसंकोच स्वेच्छानुसार सजन में, निर्जन में मेरे पास आने लगीं। सभी अपने-अपने मन की बात मुझसे कहकर आराम पाने लगे।

एक दिन एक पूर्ण यौवनावस्था की परम सुन्दरी ब्राह्मण कन्या ने आकर रोदनपूर्ण स्वर में मुझसे कहा— 'भीतर की असह्य ज्वाला अब मैं सह नहीं सकती, तुम्हारा चिन्तन होने से ही मेरी असहनीय दशा हो जाती है। भोग की लालसा से बेचैन हो जाती हूँ। मेरी इस कामना को तृप्त करो।' मैंने उनसे कहा— 'एक समय तुम्हारे ऊपर मेरा भी भयंकर अनुराग था। गुरुदेव ने उसे अब शान्त कर दिया है। ब्रह्मचर्य ग्रहण किया हूँ; चिरकाल के लिए उन सब कार्यों से निवृत्त हो गया हूँ।' युवती ने कहा— 'तो फिर मेरा यह भाव जिससे नष्ट हो, उसका उपाय बता दो; मैं अब यह यन्त्रणा सहन नहीं कर सकती।' उनके क्लेश की बात सुनकर मेरे मन में बड़ा दुःख हुआ। मैंने उनको आश्वासन देकर कहा— 'तुम निश्चिन्त हो जाओ, अवश्य ही मैं तुम्हारे चित्त की स्थिरता के लिए व्यवस्था करूँगा।'

इस घटना के बाद, युवती सुयोग मिलते ही मेरे कमरे में आकर बैठ जातीं; मैं भी धर्म-प्रसंग से नाना दृष्टान्त देकर संयम का उपदेश देता; किन्तु अवसर पाते ही वह व्याकुल होकर अपनी असह्य ज्वाला की निवृत्ति का उपाय मुझसे पूछतीं। यद्यपि काम से उन्मत्त कामिनी के सुन्दर अंग-स्पर्श से देवदुर्लभ ब्रह्मचर्य का अतुलनीय अमृतफल इसके पहले मैंने खो दिया था, तथापि वर्तमान में गुरुकृपा से कामशून्य, अचंचल अवस्था पर अधिक गर्वित रहने के कारण मैंने सोचा— सुना है, 'विशुद्ध निर्मल मन से निर्विकार कामशून्य दशा में कोई व्यक्ति प्रकृति के रतिमन्दिर

में महाशक्ति की पूजा करे, तो उससे कामिनी के कामभाव का उपशम होता है एवं उपासक की भी यथार्थ अवस्था की परीक्षा हो जाती है।' तब मैं वही क्यों न करूँ? युवती के अंग को स्पर्श करना ही तो मेरे लिए निषिद्ध है, लेकिन दूर से पूजा करने में क्या दोष है? मैंने इस प्रकार निश्चित करके उनको अपना संकल्प बतलाया; रमणी सन्तुष्ट होकर सहमत हो गई।

माघ महीने की कोई एक शुभ तिथि में, एक विशेष कार्य के उपलक्ष्य में मोहल्ले के सभी लोग निमन्त्रण पाकर हमारे घर आए। उस दिन को ही इस कार्य का श्रेष्ठ दिन समझकर मैंने संकल्प के अनुसार शक्ति-पूजा का आयोजन किया। यज्ञ के लिए लकड़ी के साथ घी, विल्वपत्र, अतसी, जवा, अपराजिता, धूप, धूना और चन्दन आदि पूजा की सामग्री संग्रह करके दोपहर में युवती के पास पहुँचा; केवल संकेत से अभिप्राय समझकर वह प्रसन्नतापूर्वक मेरा अनुगमन करने लगीं। हम लोग अविलम्ब एक निर्जन गुप्त स्थान पर पहुँचे। फिर आसन पर बैठकर कामिनी को थोड़ी दूरी पर रहने के लिए कहा। उसके बाद श्रीश्रीचण्डी का कुछ अंश पाठ करके शान्त मन से कुछ क्षण गायत्री-जप किया। फिर अग्नि प्रज्वलित करके एकाग्र मन से उज्ज्वल अग्नि में अपने इष्ट के रूप का ध्यान करने लगा। तब जवा, अपराजिता एवं विल्वपत्र घी में मिश्रित करके सावित्री-मन्त्र से कई बार अग्नि में आहुति देकर होम समाप्त किया। फिर हाथ जोड़कर ठाकुर के चरणों के उद्देश्य से प्रणाम करके व्याकुल होकर प्रार्थना करने लगा— गुरुदेव! आज मैं भयंकर कार्य में प्रवृत्त हो रहा हूँ, अभी मैं हित-अहित से अनजान हूँ, मनोमुखी हूँ, मोहग्रस्त हूँ; तुम्हारा अभिप्राय क्या है, मैं कुछ नहीं जानता; तुम्हारा आह्वान करने पर उसे तुम समझ जाते हो, तुम्हें कुछ कहने पर उसे तुम सुन लिया करते हो, इसलिए ठाकुर, आज तुमको पुकार रहा हूँ, तुम्हारे पैर पड़कर प्रार्थना करता हूँ; इस अवस्था में जो कल्याणकर हो, वही व्यवस्था करो। मैं प्रकृति-पूजा करूँ, यदि तुम यह नहीं चाहते, तो अचानक किसी प्रकार विघ्न उत्पन्न करके मेरे इस प्रयास को रोक दो; और भी पाँच मिनट तक मैं प्रतीक्षा करूँगा। इस समय के भीतर कोई बाधा उत्पन्न न होने से संकल्प के अनुसार शक्ति-पूजा में प्रवृत्त होऊँगा। इस प्रकार प्रार्थना करके एकाग्र मन से ठाकुर की पवित्र मूर्ति का ध्यान करने लगा। पाँच-सात मिनट निर्विघ्न बीत गए; इस समय अधीर रमणी को पाँच-छः फीट दूर शान्त भाव से रहने के लिए कहा। कामिनी मेरे संकेतानुसार अत्यन्त आनन्दपूर्वक तुरन्त उलंगिनी होकर खड़ी हो गई। तब देवी का वांछित अतसी, अपराजिता, जवा, विल्वदल अँजलि में भरकर मस्तक पर धारण किया। फिर चण्डी का 'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता, शक्तिरूपेण संस्थिता, शान्तिरूपेण संस्थिता,' इत्यादि मन्त्र उच्च स्वर में पढ़ने के बाद बारम्बार प्रणाम करके तुरन्त रमणी के सिर से

पैर तक प्रत्येक अंग-प्रत्यंग का शान्त भाव से मनोयोगपूर्वक निरीक्षण करने लगा। बड़ा अद्भुत देखा— अचानक उनके नाभि-स्तर से लेकर दोनों जाँघों के मध्य स्थल तक गोल आकृति की घनी काली छाया से बिल्कुल आच्छादित हो गया; मध्याह्न के समय सूर्य के अच्छे प्रकाश से चारों दिशा आलोकित है। एकाएक गौर वर्ण की रमणी के अंग-विशेष में महाकाली का आविर्भाव हुआ। बहुत समय तक बारम्बार देखने पर भी घने कृष्ण वर्ण के मध्यवर्ती स्थल में चमकीली शीतल बिजली की चमक के सिवा और कुछ भी दिखा नहीं। असम्भव दृश्य देखकर मेरा सारा शरीर रोमांचित हो उठा। बारम्बार सिहरने लगा। मस्तक की पुष्पांजलि भगवती के चरणों के उद्देश्य से अर्पण करके साष्टांग प्रणाम किया। अद्भुत है भगवान् गुरुदेव की लीला! अद्भुत है भगवती योगमाया का खेल! क्या दिखलाए! क्या देखा! स्तम्भित होकर आसन पर बैठ गया। चकित होकर ताकता रहा। तब देखा— रमणी का गौर मुखमण्डल रक्तिम हो गया है, दोनों ओट थोड़े कम्पित हो रहे हैं; संकुचित नयनों से दृष्टि संचालनपूर्वक मनोहारिणी शोभा धारण की हैं। उनकी ओर देखकर मैं मुग्ध हो गया। उनके चंचल कटाक्ष से, बिजली के वेग से मेरे भीतर कामोत्तेजना का संचार हुआ। विचलित दशा में संकट समझकर उनको शीघ्र हट जाने के लिए कहा। युवती ने मेरी बात काटे बिना होमाग्नि को प्रणाम किया। आशीर्वाद दिया— 'मेरा जो होने का है वह हो, ठाकुर तुम्हारा कल्याण करें।' शीघ्र ही वे प्रकृतिस्थ होकर वस्त्र धारण करने के बाद अपने घर चली गई। युवती के चले जाने के बाद मेरे भीतर अदम्य काम की उत्तेजना आरम्भ हो गई। प्राणायाम, कुम्भक आदि से उत्तेजित भाव को शान्त करने में असफल हो गया। विपत्ति समझकर तुरन्त आसन से उठ गया।

इस दुःसाहसिक कार्य के साथ-साथ मेरी भयंकर दुर्दशा आरम्भ हो गई। भगवान् गुरुदेव का अभिप्राय क्या है, पता नहीं। युवती के काम-विकार का सम्पूर्ण विराम तो हो गया, किन्तु दिनो-दिन मैं कामाग्नि से दग्ध होने लगा। लगता है, परम दयालु गुरुदेव ने अबला की अपूर्व सरलता का अवलोकन करके उसकी ज्वाला दूर कर दी एवं मेरे भयंकर उग्र अनुष्ठान में अधिक साहस और हठकारिता देखकर काम से पीड़ित कामनी के कामभाव को मेरे भीतर संचारित कर दिया। मैं रात-दिन कामाग्नि में जल-भुनकर छटपटाने लगा। किस प्रकार यह ज्वाला दूर होगी, किस उपाय से इस विपद् से रक्षा होगी, सब समय केवल वही सोचने लगा। फिर निश्चय किया— अस्थि-मज्जा जलाकर कठोर साधना करूँगा। उसी के अनुसार मैं परिमित आहार (एक मुट्ठी चावल) का एक तिहाई अंश कम कर दिया। भोजन बनाने में थोड़ा ही समय लगाकर, अन्य समय निर्जन जंगल में जाकर साधना करने लगा। शयन बिल्कुल नहीं करता; निद्रा एक प्रकार से त्याग दी।

सामने धूनी जलाकर प्राणपण से साधना करके रात बिताना आरम्भ कर दिया। नींद आने से कभी एक पैर पर खड़े होकर, तो कभी चहल-कदमी करके नाम-जप करते-करते रात काटने लगा। अत्यधिक नींद आने पर कुछ समय के लिए खड़े-खड़े ही सो लेता हूँ। दिन में तीन बार स्नान, खट्टे-मीठे-कड़वे आदि रसों का त्याग एवं लोक-संग का त्यागादि सब बड़ी कठोरतापूर्वक करने लगा। उससे मेरी अहैतुकी उत्तेजना का बहुत-कुछ उपशम तो हुआ, लेकिन पहले जैसी अवस्था किसी भी प्रकार से पुनः प्राप्त नहीं हुई। बीती घटना की छवि अचानक अन्तःकरण में उदित होकर मुझे बेचैन करने लगी; मैं हताश हो गया। चारों ओर अन्धकार देखने लगा; ठाकुर की कृपा के सिवा अब अपना उद्धार होना असम्भव समझकर, गुरुदेव को यही कुछ बातें लिखकर बतलाया—

परम पूज्यनीय श्रीश्री गोस्वामीजी

श्रीचरण कमलेषु,

आपके आदेशानुसार वृन्दावन से अयोध्या जाकर वहाँ प्रायः दो महीने था। फिर घर आकर इतने दिन माँ की सेवा में बिताया। इतने दिन बड़े आनन्द में था। आजकल की मेरी सब दशा आप देख ही रहे हैं, अतएव फिर लिखने से क्या लाभ? इस समय मुझे जो करना होगा, शीघ्र ही बतलाएँगे। अपने मन के ऊपर इस समय मेरा कोई अधिकार नहीं है। दया करके इस समय आप रक्षा करेंगे तो कीजिए। आप रक्षा नहीं करेंगे तो फिर इस समय मेरा कोई सहारा नहीं है। ब्रह्मचर्य आपके कहने से, आपकी दया और शक्ति के ऊपर निर्भर करके ही लिया हूँ। अब व्रत भंग होने पर मैं उत्तरदायी नहीं हूँ। पहले मेरी प्रकृति जानकर ही तो यह व्रत दिए हैं!

सेवक

श्री कुलदा।

पत्र लिखने के बाद श्रीवृन्दावन से सीधे मेरे पास चार पत्र आ गए। स्वामीजी हरिमोहन ने लिखा— भाई, गुरुजी ने तुम्हारा पत्र पढ़कर, तुरन्त हाथ हिलाकर 'माँ भैः! माँ भैः! माँ भैः!' उच्च स्वर में तीन बार कहा। कुछ क्षण चुप रहकर 'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्, कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।' कहकर तुम्हें अभय प्रदान करके पत्र लिख देने के लिए कहा; तुम्हारी जानकारी हेतु लिखा है। निर्भय हो जाओ।

योगजीवन ने लिखा— गोसाँईजी ने तुम्हें लिख देने को कहा, 'यदि घर पर रहने में असुविधा लगे तो समय-समय पर गेण्डारिया जाकर रहो। घबराओ नहीं। हम लोग भी शीघ्र जा रहे हैं।'

इस प्रकार श्रीधर व माता ठाकुरानी ने भी लिखा— 'तुम्हारे प्रति गोसाँईजी

की असीम कृपा है। चिन्ता की कोई बात नहीं। निर्भय हो जाओ। आनन्द करो।'

पता नहीं, गुरुदेव ने इन लोगों के पत्र में कैसी अलौकिक शक्ति डाल दी; पढ़ते समय प्रत्येक पत्र के प्रत्येक अक्षर से नया तेज, नया उत्साह आश्चर्यजनक रूप से मेरे हृदय में संचारित होने लगा। कुछ क्षण के भीतर ही मेरे मन की मलिनता दूर हो गई और मन में विमल आनन्द प्रवाहित होने लगा। उत्साह, उद्यम के साथ प्रफुल्लित मन से मैं पुनः भजनानन्द में दिन काटने लगा। गुरुदेव की असीम कृपा प्रत्यक्ष करके मैं चकित हो गया। अपने दयालु ठाकुर के श्रीचरणों का दर्शन फिर कब पाऊँगा, बड़े आग्रह के साथ उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा।

## माँ का आशीर्वाद एवं गोसाँईजी के चरणों में मुझे अर्पण करना

बहुत दिनों के बाद इस बार गंगा-स्नान का अत्यन्त दुर्लभ श्रेष्ठ (अर्द्धोदय) योग पड़ा है। पूर्वबंगाल से हजारों लोग गंगा-स्नान में जाने के लिए प्रस्तुत हो रहे हैं; माताजी भी इस प्रशस्त योग में गंगा-स्नान करने के लिए व्याकुल हो गईं। गृहस्थी की कई बाधाओं के बाद भी माताजी को गंगा-स्नान के लिए भेजने का निश्चय किया। माँ को भी निश्चिन्त रहने का भरोसा दिया। पश्चिम अंचल के सारे तीर्थों का इस सुयोग में माँ को दर्शन कर लेने की सुविधा होगी। माताजी ने तीर्थ-दर्शन में जाने के कुछ दिन पहले मुझसे कहा— 'मैं तो तीर्थ में चली, फिर कब गाँव लौटूँगी, उसका भी निश्चय नहीं है; अभी मेरा शरीर स्वस्थ हो गया है, तेरा शरीर भी अब स्वस्थ है; पश्चिम से आकर इस बार तेरा विवाह कराऊँगी।' तब मैंने माँ को स्पष्ट रूप से ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन एवं धर्म-जीवन यापन करने की अपनी आकांक्षा बतलाई। विवाह करने से मुझको फिर से रोग घेर सकता है, यह भी समझाकर कह दिया। माँ ने मेरी सभी बातें बड़े ध्यानपूर्वक सुनकर कहा— 'तेरे विवाह अथवा नौकरी न करने से गृहस्थी में थोड़ी भी कठिनाई नहीं होगी। मेरे अन्य सभी लड़के तो संसारी हैं। तेरे सुख के लिए ही तुझे विवाह करने को कहा, परिवार बसाने को कहा। वह तुझे अच्छा नहीं लगता, तो आवश्यकता नहीं है। संसार में सुख नहीं है; सुख से अधिक ज्वाला है। धर्म लेकर यदि रह सकता है, तो वह अच्छा ही है! तेरी इच्छा है तो धर्म-कर्म लेकर ही रह।'।

मैंने कहा— तुम सन्तुष्ट होकर मुझे अनुमति दो, तो मैं गुरुदेव के पास रह सकता हूँ; उन्होंने मुझे तुम्हारी सेवा हेतु भेजते समय कहा था, 'जाकर माँ की सेवा करो। सेवा से सन्तुष्ट होकर वे अपने कर्म-बन्धन से तुम्हें मुक्ति दें, तो मेरे पास आकर रह सकोगे।'

माँ ने कहा— 'अच्छा, तेरी सेवा से तो मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ; अपने कर्म से तुझे

मैं छुटकारा देती हूँ। घर में रहने से धर्म-कर्म नहीं होता, गोसाँईजी के पास रह। उससे तेरा भी उपकार होगा, मेरा भी मन प्रसन्न रहेगा।'

मैंने कहा— ठाकुर ने मुझसे कहा था, **'सेवा द्वारा माँ को सन्तुष्ट करके अनुमति लानी होगी; अन्य किसी प्रकार कौशल करके अनुमति लाने से नहीं होगा।'** यदि तुम यथार्थ में मेरी सेवा से सन्तुष्ट रहती हो, तो फिर मेरे ठाकुर को तुम एक बार बतला दो। धर्म के लिए मुझे यदि तुम उनके चरणों में अर्पण कर दो, तो मेरा परम कल्याण होगा और तुम्हें भी पुत्र-दान का बड़ा फल प्राप्त होगा।

माँ ने कहा— 'मैं स्वयं तो धर्म-कर्म कुछ कर नहीं सकी। तुम यदि कुछ कर सको तो उससे मेरा भी उपकार होगा। तेरी इस आकांक्षा में मैं बाधा क्यों दूँगी? सन्तुष्ट होकर ही तुझको गोसाँईजी के हाथ में सौंप दिया।'

मैंने कहा— तो फिर तुम मेरे गुरुदेव को यह कहते हुए एक पत्र लिख दो कि 'अपने सबसे छोटे पुत्र को धर्म के उद्देश्य से आपके चरणों में अर्पण करती हूँ। जिससे उसको धर्म की प्राप्ति हो, आप वही कीजिए।'

माँ ने कहा— 'अच्छा, कागज-कलम ले आ। अभी मेरे नाम से गोसाँईजी को पत्र लिख दे।'

माँ की बात सुनते ही मैंने कागज-कलम लाकर उनके सामने रख दिया। माँ ने मँझली बहू से निम्नलिखित पत्र लिखवाकर, श्रीवृन्दावन में ठाकुर के पास भिजवा दिया—

सविनय निवेदन,

मेरे सबसे छोटे पुत्र श्रीमान् कुलदा ने आपके आदेशानुसार घर आकर नाना प्रकार से मेरी सेवा-शुश्रूषा करके मुझे बड़ा सुख दिया। मैं उसे अब अपने कर्मपाश में बद्ध रखना नहीं चाहती। धर्म के लिए मैंने सन्तोषपूर्वक श्रीमान् कुलदा को सम्पूर्ण रूप से आपके हाथ में अर्पण कर दिया। 'विवाहादि करके संसार करे' मैं उसकी अवस्था देखकर मैं वैसी आकांक्षा नहीं करती; अतएव जिससे धर्म प्राप्त करके एवं आपके अधीन रहकर श्रीमान् कुलदा मन में सर्वदा शान्ति पा सके, चाहे जैसे भी हो आप वह कर दीजिए। कुलदा यदि आनन्द में रहे, तो मैं सुखी रहूँगी। उसे अपने साथ रखेंगे तो मेरा मन बिल्कुल सन्तुष्ट रहेगा। इति—

निः— श्रीमान् कुलदा की माँ

पत्र लिखवाकर माँ ने मुझसे कहा— "मेरी दो बातों का तू स्मरण रखना—  
1. मेरी मृत्यु के बाद तू एक ब्राह्मण को 'सीधा' दान करना। 2. फिर जब तक जीवित रहेगा, पेट भरकर भोजन करना।"

मैंने कहा— भविष्य में मेरे भाग्य में तो कितनी ही अवस्थाएँ घट सकती हैं;

पेटभर खाना यदि न जुटे?

माँ ने कहा— 'मैं आशीर्वाद देती हूँ, परमेश्वर तुझे आहार का कष्ट कभी नहीं होने देंगे। चिरकाल तू पेटभर भोजन पाएगा। पेट भरकर खाना; उससे अन्तरात्मा तृप्त रहेगी।'

मैंने कहा— तुम्हारी मृत्यु के समय यदि मैं पास में न रहा, बहुत समय बाद मृत्यु का संवाद मिले, उस समय यदि मेरे पास रुपया अथवा चावल-दाल न रहे, तो फिर क्या करूँगा?

माँ ने कहा— "यदि वैसा होता है, तो फिर जब मेरी मृत्यु का संवाद पाएगा, तब सुविधानुसार एक ब्राह्मण को 'सीधा' देने से ही हो जाएगा। हाथ में यदि कुछ न रहे, तो भिक्षा करके देना।"

माँ की बात सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरे परम कल्याण का पथ माताजी ने आज स्पष्ट कर दिया। संसार में आने का मेरा उद्देश्य माँ की कृपा से आज सार्थक हो गया। माँ की दया से ही मुझे गुरुदेव के विमल शान्तिपूर्ण दुर्लभ चरण-रज के साथ संलग्न होकर रहने का सुयोग प्राप्त हुआ। जय गुरुदेव! तुम्हारी कृपा सारे शुभ और सौभाग्य का मूल है, इस बात को मैं जिससे कभी न भूलूँ, यह आशीर्वाद दीजिए।

ठाकुर ने श्रीवृन्दावन में एक दिन बातों-बातों में मुझसे कहा था— 'तुम्हारी माँ अब वृद्ध हो गई हैं, उनको फिर इस समय घर में क्यों रखे हो? उनकी गृहस्थी तो पूरी हो गई। अब तुम्हारी भाभियों की ही गृहस्थी है। वे लोग ही अब घर-बार देखें, संसार करें। तुम्हारे भाइयों का कर्त्तव्य है, माँ को अब तीर्थ में रखें। काशी या श्रीवृन्दावन में अब उनको वास करने देने से उनका यथार्थ उपकार होगा। वृन्दावन की अपेक्षा काशी उनके लिए अच्छा है। तुम लोगों का इस विषय में चेष्टा करना कर्त्तव्य है।'

उस समय ठाकुर की बात सुनकर, माँ को संसार के झमेले से हटाकर काशी में रखने की प्रबल इच्छा हुई थी। बड़े भैया से भी इसके लिए विशेष रूप से अनुरोध किया था। इस बार सुयोग पाकर, अनेक विघ्न-बाधाओं के बाद भी ठाकुर की बात का स्मरण करके माँ को तीर्थ भेज दिया। माँ स्वस्थ शरीर से पश्चिम की ओर निकल पड़ीं।

## छोटे भैया की दीक्षा लेने की प्रवृत्ति

माताजी के पश्चिम में जाने के कुछ दिन बाद ही छोटे भैया बी.ए. की परीक्षा देकर घर आ गए। दो-एक विषय में अच्छे-से उत्तर नहीं लिख पाने के



कारण परीक्षा में सफलता के सम्बन्ध में शंकित होकर बहुत चिन्ता करने लगे। कभी-कभी कहने लगते— 'इस बार परीक्षा में पास न हुआ, तो आत्महत्या करूँगा।' मैंने आवेश में आकर छोटे भैया से कहा— मैंने आपके पास होने के लिए गोसाँईजी से प्रार्थना की है। गोसाँईजी अवश्य ही आपको पास करा देंगे। छोटे भैया ने कहा— 'गोसाँईजी की वैसी कोई अलौकिक शक्ति है, मैं विश्वास नहीं करता। अच्छा यदि वैसा है, तो फिर मैं एक 'प्रॉब्लम' (Problem) देता हूँ, गोसाँईजी उसे हल (Solve) करें, देखूँ तो!' मैं उनकी इस बात का कोई अच्छा उत्तर न दे सका। छोटे भैया गोसाँईजी से दीक्षा लें, इस अभिप्राय से उनको 'योग साधन' पुस्तक पढ़ने के लिए दिया। उसे पढ़कर उन्होंने कहा— 'ब्राह्मधर्म के मत के साथ जो नहीं मिलता, वह कुसंस्कार है। मैं वह सब कुछ नहीं मानता। गोसाँईजी धार्मिक हैं, मानता हूँ; लेकिन उनके शिष्यों का कुछ हुआ है, इस पर विश्वास नहीं करता।' मैं छोटे भैया की बात का प्रतिवाद न करके चुप रह गया। फिर बातचीत के बीच सुयोग मिलते ही धीरे-धीरे गोसाँईजी की महिमा बतलाकर, उनकी ओर छोटे भैया को आकृष्ट करने का प्रयास करने लगा। गोसाँईजी की विभिन्न असाधारण अवस्था की बातें सुनते-सुनते छोटे भैया की गोसाँईजी के प्रति कुछ श्रद्धा-भक्ति हो गई। तब मैं गोसाँईजी से दीक्षा लेने के लिए छोटे भैया से बारम्बार अनुरोध करने लगा। दीक्षा का क्या प्रयोजन है, इस विषय में तीन-चार दिन तर्क-वितर्क, आलोचना के बाद, छोटे भैया ने कहा— 'अच्छा, इस बार यदि मैं परीक्षा में पास हो जाता हूँ, तो गोसाँईजी से दीक्षा लूँगा। मैं भी उत्सुकता के साथ उनके पास होने की खबर की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ दिन बाद खबर मिली, छोटे भैया पास हो गए हैं। तब छोटे भैया से दीक्षा लेने के लिए कहा। उन्होंने कहा— 'गोसाँईजी से दीक्षा लेने के लिए जब कहा हूँ, तो अवश्य ही लूँगा; लेकिन इसी समय लूँगा, ऐसी बात तो मैंने नहीं कही थी। अभी मेरा शरीर अस्वस्थ है; स्वस्थ हो जाए, फिर लूँगा।' मैंने कहा— मैं कितना अस्वस्थ था वह तो सभी जानते हैं; गोसाँईजी की कृपा से अब बिल्कुल स्वस्थ हो गया हूँ। आप भी दीक्षा लेने से स्वस्थ हो जाएँगे।

छोटे भैया ने कहा— 'योग-साधना के जो सब नियम हैं, मैं उसका अभी प्रतिपालन नहीं कर पाऊँगा।'

मैंने कहा— आप जो प्रतिपालन नहीं कर पाएँगे, ऐसे कोई नियम का निर्देश गोसाँईजी आपको कभी नहीं देंगे।

अन्त में छोटे भैया ने स्वीकार किया, गोसाँईजी के गेण्डारिया में आते ही, उनके पास जाकर दीक्षा के लिए प्रार्थना करेंगे। मैं भी निश्चिन्त हुआ।

-----

मार्च-अप्रैल सन् 1891 ई. (बंगला सन् 1297, चैत्र)

## माता योगमाया देवी का तिरोधानः लालजी का देहत्याग

बड़े भैया के पत्र से अवगत हुआ— 'माता ठाकुरानी योगमाया देवी को श्रीवृन्दावनधाम की प्राप्ति हो गई है। शनिवार, 21 फरवरी, सन् 1891 ई., माघी शुक्ला त्रयोदशी तिथि को एक दिन के हैजे से ही उन्होंने देह त्यागकर दिया। ठाकुर ने योगजीवन के द्वारा यह संवाद भैया को दिया है।' अचानक यह खबर सुनकर मैं बहुत ही दुःखी हो गया। माता ठाकुरानी श्रीवृन्दावन से लौटेंगी नहीं, उसी स्थान पर रह जाएँगी— ठाकुर और माता ठाकुरानी की बातों के अभिप्राय से कई बार इस प्रकार का सन्देह मन में उत्पन्न हुआ था। किस प्रकार, किस अवस्था में माता ठाकुरानी ने देह छोड़ी, विस्तारपूर्वक जानने के लिए व्याकुल हो गया। इसी बीच फिर संवाद मिला, जीवन्मुक्त जातिस्मर गुरुभाई लाल बिहारी वसु प्रायः उसी समय, एक दिन स्वेच्छा से अचानक गेण्डारिया में अन्धकार करके परमधाम में प्रस्थान कर गए। यह सब दुःसंवाद सुनकर एवं अन्य दो-एक उद्वेगजनक कारणों से मेरा मन विचलित हो उठा। मैं श्रीवृन्दावन जाने का संकल्प करके, ठाकुर को अपना अभिप्राय बतलाया। ठाकुर ने योगजीवन के द्वारा उत्तर दिया— 'शीघ्र मैं गेण्डारिया जा रहा हूँ। सुविधा लगे तो तुम अभी से वहाँ जाकर रह सकते हो।' पत्र पाकर मैंने शीघ्र ही गेण्डारिया जाने का निश्चय किया।

## छोटे भैया की दीक्षा और अद्भुत घटनाः विविध प्रश्न

27 मार्च, शुक्रवार, द्वितीया तिथि। रात्रि के अन्तिम प्रहर में आसन पर बैठे-बैठे ही मेरा मन बहुत बचैन हो उठा। ठाकुर गेण्डारिया आ गए हैं, बारम्बार ऐसा लगा। आज ही ढाका जाने का निश्चय किया। बहुत अनुनय-विनय करके छोटे भैया को अपने साथ गेण्डारिया चलने के लिए कहा। वे इच्छा न रहने पर भी राजी हो गए। मैंने एक महीने के लिए चावल, दाल, नमक, मिर्च, तेल, घी इत्यादि भोजन की सारी सामग्री जमा करके ले ली। फिर दिन के 10 बजे ढाका के लिए निकल पड़ा। कुली के अभाव के कारण बड़ी भारी गठरी का भार मुझे वहन न करने देकर, दुर्बल होने पर भी छोटे भैया ने उसे अपने कन्धे पर उठा लिया। तीन-चार मील का रास्ता तय करके हम लोग सेराजदीघा की नाव पर सवार हुए। अपराह्न में संध्या के थोड़ा पहले हम लोग गेण्डारिया पहुँच गए। आश्रम के पश्चिम प्रान्त में स्थित पण्डित जी के घर पहुँचते ही सूचना मिली— ठाकुर कल ही आश्रम आ गए हैं। दूर से देखा, बहुत भीड़भाड़ है। ठाकुर आम पेड़ के नीचे बैठे हैं। पिछली दुष्कृति की बात इस समय बारम्बार मन में उदित होने लगी। इसलिए इतने लोगों के बीच

ठाकुर के पास जाने की मेरी इच्छा नहीं हुई। पण्डित जी की कुटिया में ही उदास बैठा रहा। कुछ क्षण बाद ठाकुर आसन से उठकर दक्षिण की ओर जलाशय के पास मूत्रोत्सर्ग के लिए गए; तब सब लोग आम पेड़ के नीचे से उठकर चले आए। उसी अवसर को उपयुक्त जानकर मैं भैया को दीक्षा की प्रार्थना के लिए ठाकुर के पास भेजा। ठाकुर मुँह-हाथ धोकर अपने पैरों पर जल ढाल रहे थे, तभी छोटे भैया 'अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया। चक्षुरुन्मिलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥' इस मन्त्र का अस्फुट भाव से बारम्बार उच्चारण करके उनके चरणों में गिर पड़े। फिर हाथ जोड़कर 'मेरे लिए क्या आज्ञा है' कहकर कंगाल के भाँति खड़े रहे। ठाकुर छोटे भैया की ओर देखकर **'कहाँ ठहरे हो? कब आए?'** पूछने के बाद, उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही कहने लगे— **'अच्छा तुम जाओ, मैं अभी कुलदा से कह दूँगा।'** छोटे भैया ठाकुर को पुनः प्रणाम करके चले आए। मैं थोड़े दूर से, वृक्ष की आड़ में रहकर यह सब देखा। ठाकुर अवश्य ही छोटे भैया पर कृपा करेंगे सोचकर शीघ्र छोटे भैया के पास पहुँचा एवं उनको भरोसा देने लगा।

तीन वर्ष के भीतर ठाकुर ने भैया को देखा नहीं। अनेक लोगों के बीच किसी समय देखे भी हैं तो 'मेरे भाई हैं', ऐसा परिचय उन्हें मिला नहीं। ठाकुर छोटे भैया को देखते ही कैसे पहचान गए एवं मैं गेण्डारिया आ गया हूँ वे कैसे जान गए, यह सब सोचकर छोटे भैया को बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ क्षण बाद ठाकुर आम पेड़ के नीचे खड़े होकर मुझे पुकारने लगे। मैं तुरन्त दौड़ते हुए जाकर ठाकुर के चरणों में गिर पड़ा। ठाकुर ने मेरी ओर बढ़े ही स्नेह के साथ देखते हुए कहा— **'तुम्हारे भैया को कुंज के घर ले आओ। अभी उनकी दीक्षा होगी।'**

ठाकुर के आदेशानुसार मैं तुरन्त भैया को लेकर घोष जी के घर पहुँचा। छोटे भैया ठाकुर के पीछे-पीछे चलकर उस घर के पूर्व दिशा के कमरे में गए। बाहर का कोई व्यक्ति कमरे के निकट न आए, इस बात का ध्यान रखने के लिए ठाकुर मुझसे कह गए। मैं कमरे के चारों ओर टहलने लगा। इस बीच साधन-प्राप्त अनेक महिलाएँ एवं पुरुष आकर कमरे के भीतर-बाहर, जहाँ-तहाँ आनन्दपूर्वक बैठ गए। आज कितने दीक्षा-प्रार्थी लोग कमरे में प्रवेश किए, कुछ पता नहीं चला। परिचित लोगों में बंकिम नामक एक कायस्थ बालक एवं कुंज बाबू के परिवार की कुछ महिलाओं को छोटे भैया के साथ ठाकुर के सामने दीक्षा के लिए बैठे हुए देखा। धूप, धूना, चन्दन, गुग्गुलादि के सुगन्धित धुएँ से कमरा परिपूर्ण हो गया। ठाकुर ने दीक्षा का कार्य आरम्भ किया। साधन की नियम-प्रणाली बतलाकर ठाकुर ने जब ध्रुव, प्रह्लाद, नारदादि सर्वश्रेष्ठ भगवत्-भक्तों के कलेजे की वस्तु महामन्त्र प्रदान किया, तब अद्भुत महाशक्ति की उठती तरंग ने सभी को कम्पित कर दिया। ठाकुर प्राणायाम का अंश दिखलाकर **'जय गुरु! जय गुरु!!'** कहते-कहते

संज्ञाशून्य हो गए। तब कमरे के भीतर-बाहर स्थित सभी के भीतर एक वृहत् काण्ड आरम्भ हो गया! गुरुभाई-बहिन नाना भाव में अभिभूत होकर, मूर्च्छित होकर गिरने लगे। चारों ओर अनेक लोगों के हँसने और रोने का विचित्र कोलाहल होने लगा। इस समय छोटे भैया उच्च स्वर में 'अखण्डमण्डलाकारं' एवं 'अज्ञान तिमिरान्धस्य' दोनों मन्त्र का बारम्बार उच्चारण करते-करते ठाकुर के चरणों में लोटने लगे। भावावेश में आकर ठाकुर गद्गद स्वर में कहने लगे— 'अहा! अहा!! अहा!!! क्या चमत्कार है! क्या चमत्कार है!! आज सत्ययुग की ध्वजा आकाश में लहरा रही है, आज से सत्ययुग आरम्भ हो गया, अहा देखो! कितने योगी, कितने ऋषि, कितने देवी-देवता आज सत्ययुग का झण्डा हाथ में लेकर नभोमण्डल में आनन्द से नृत्य कर रहे हैं; महापुरुषगण आज पृथ्वी में सर्वत्र नृत्य करते-करते घूम रहे हैं। ऐसा शुभ दिन फिर नहीं आता। 25 बौद्ध योगी लामागुरु इस स्थान पर उपस्थित हैं। संसार का कल्याण करने के लिए आज ये महापुरुष पृथ्वी में अवतरण किए हैं। आज बड़े आनन्द का दिन है। धन्य है! धन्य है!! धन्य है!!!'

ठाकुर भावावेश में यह सब बातें कह रहे थे, अचानक एक कम आयु की बालिका ठाकुर के सामने आकर घुटने के बल बैठ गई एवं भावविह्वल अवस्था में हाथ जोड़कर बारम्बार ठाकुर को प्रणाम करके गद्गद स्वर में, तिब्बती भाषा में ठाकुर की स्तुति करने लगीं। फिर एक-एक बार सभी की ओर देखकर अंगुलि से संकेत करके ठाकुर को दिखलाते-दिखलाते उन्होंने विविध भाषा में असामान्य तेजस्विता के साथ आधे घण्टे तक लोगों को चकित करने वाला भाषण दिया। भाषा अज्ञात होने पर यद्यपि उसका एक शब्द का भी अर्थ समझ में नहीं आया, तथापि तेजस्विनी के तेजःपूर्ण प्रत्येक शब्द के प्रभाव से भीतर एक अद्भुत शक्ति का प्रवाह चलने लगा। भाषण की मुग्धकारी शक्ति से प्रायः सभी चकित रह गए। इस प्रकार की अद्भुत घटना जीवन में और कभी देखी नहीं। सुना है, बालिका कुंज बाबू की साली हैं, इनका नाम अबला है; इन्होंने भी आज दीक्षा प्राप्त की है। जीवन में कभी इन्होंने तिब्बती भाषा सुनी नहीं। किस प्रकार इन्होंने अज्ञात भाषा में निरन्तर व्याख्यान दिया, जानने का बड़ा कौतुहल हुआ।

दीक्षा के बाद ठाकुर सबको धीरे-धीरे शान्त एवं स्वस्थ करके कमरे से बाहर आ गए। ठाकुर के पीछे-पीछे हम लोग भी चलने लगे। गुरुभाई लोग भाव के आवेश में विभोर होकर झूमते-झूमते आश्रम जाकर एक-एक स्थान पर बैठ गए। दो-चार लोगों के साथ ठाकुर पक्के कमरे में जाकर विश्राम करने लगे। छोटे भैया के साथ मैं उस कमरे के बरामदे में बैठ गया। ठाकुर के साथ गुरुभाइयों की बातचीत होने लगी। घोष जी के 10-11 वर्षीय पुत्र फणिभूषण ने ठाकुर से पूछा—

‘दीक्षा के समय उन्होंने जो बुटबुट करके इतने समय तक कहा, उनके भीतर क्या कोई स्पिरिट (प्रेतात्मा) प्रवेश की थी? क्या कहा, कुछ भी तो समझ में नहीं आया।’

फणि की बात सुनकर ठाकुर ने थोड़ा हँसकर कहा— **“जो सब बौद्ध योगी दीक्षा-स्थल पर उपस्थित थे, उनमें से ही एकजन ने उसके भीतर प्रवेश किया था। उन्होंने तिब्बती भाषा में कहा, इसलिए तुम लोग कुछ समझ नहीं पाए।”**

फणि ने कहा— ‘आप तो वह भाषा जानते नहीं हैं। आपने कैसे समझा? दूसरों की भाषा समझने का क्या कोई साधन है?’

ठाकुर ने कहा— **“इस साधन से ही सब होता है। केवल संकेत ज्ञात रहने से ही हो जाता है। संकेत है, किसी की भाषा समझने की इच्छा होने से सुषुम्ना में प्रवेश करके चेतना-शक्ति द्वारा मन को स्थिर रखकर सुनना होता है। ऐसा करने से केवल मनुष्य की ही क्यों, समस्त जीव-जन्तु, पशु-पक्षी वृक्ष-लता की भाषा का भी अर्थ ज्ञात हो जाता है। जब वैसी अवस्था होगी, तो चेष्टा करने से ही समझ जाओगे।”**

ठाकुर ने इस प्रकार तत्त्व की और भी कई बातें कही। वे सब बातें मैं स्पष्ट रूप से कुछ समझा नहीं। कुछ क्षण चबूतरे के ऊपर बैठकर बाहर चला आया; देखा, कहीं दो-चार गुरुभाई मिलकर आनन्द से भजन गा रहे हैं तो कहीं कोई चुपचाप बैठकर नाम-जप के आनन्द में मग्न हैं; आश्रम आज लोगों से परिपूर्ण है। सभी प्रसन्नतापूर्वक वार्तालाप में, भजन-कीर्तन में, एकान्त साधन-भजन में, नाना प्रकार की अवस्था में परमानन्द से समय काट रहे हैं; केवल मेरे ही भीतर भयंकर शुष्कता है। मैं बेचैन होकर कभी गुरुभाइयों के पास तो कभी ठाकुर के पास आना-जाना करने लगा। अकारण शुष्कता की ज्वाला से मेरा मन छटपटाने लगा। बड़ी अधीरता के साथ जाकर ठाकुर से कहा— ‘सभी तो आपके हैं। आज सबके मन में आनन्द देकर केवल मुझे शुष्कता की ज्वाला में जलाकर क्यों मार रहे हैं? यह ज्वाला कैसे जाएगी?’

ठाकुर ने कहा— **“जिसके लिए जो कल्याणकर है, भगवान् उसको वही देते हैं। बहुत भाग्य से मनुष्य के भीतर यह शुष्कता आती है। बैठकर स्थिरता के साथ नाम-जप करो। उसकी ओर ध्यान मत दो; नाम-जप करते-करते ही वह चली जाएगी।”**

मैंने कहा— मेरा अन्तःकरण सरस कर दीजिए, बैठकर नाम-जप करता हूँ।

ठाकुर ने कहा— **“जिसके लिए जो कुपथ्य है, रोगी के चाहने से ही क्या डॉक्टर वह दे देता है? थोड़ा शान्त हो, जाकर नाम-जप करो।”**

मैं फिर कुछ कहने का साहस नहीं कर पाया। बरामदे में छोटे भैया के पास बैठकर नाम-जप करने लगा।

## श्रीवृन्दावन का वृक्ष काटने से ब्राह्मण का विनाश

मध्य रात्रि तक ठाकुर ने गुरुभाइयों से श्रीवृन्दावन की बातें आदि कही। भीतर-बाहर अनेक लोग बैठकर वह सुनते रहे। महापुरुषगण कितने स्थानों पर कितने भाव से अवस्थान कर रहे हैं, कहा नहीं जा सकता। श्रीवृन्दावन की रज प्राप्ति की आकांक्षा से बड़े-बड़े सिद्ध महात्मा अभी भी नाना रूपों में वहाँ रहते हैं। इस विषय में ठाकुर एक घटना के उल्लेख करते हुए कहने लगे—

“श्रीवृन्दावन के किसी कुंज में एक सुन्दर वृक्ष था। कुंज के स्वामी ने उस वृक्ष को काटने के लिए पास के ही एक व्यक्ति को आदेश दिया। रात्रि में उन्होंने स्वप्न देखा, एक वैष्णव-वेशधारी ब्राह्मण ने उनसे आकर कहा— ‘मैं तुम्हारे कुंज में उस वृक्ष के रूप में बहुत समय से हूँ। श्रीवृन्दावन की रज प्राप्ति से धन्य होने की आकांक्षा से ही मैंने वृक्ष का रूप धारण किया है। तुम वृक्ष को काटकर मुझे इस रज के स्पर्श से कभी वंचित मत करना। तुम्हारे वैसा करने से मुझे पुनः जन्म लेना होगा, उससे तुम्हारा भी मंगल नहीं होगा। स्वप्न को मिथ्या सोचकर तुम मेरी इस विनती की उपेक्षा मत करना। तुम्हारे विश्वास के लिए मैं कल प्रातः वृक्ष के नीचे एक बार खड़ा होऊँगा; इच्छा होने से मुझे देख सकोगे।’ अगले दिन प्रातःकाल वृक्ष के नीचे पण्डितजी ने वास्तव में एक ब्राह्मण को देखा, किन्तु उससे भी उनको विश्वास नहीं हुआ। वे माने ही नहीं। वृक्ष को कटवा दिए। जिन लोगों ने यह बातें सुनकर भी वृक्ष को काटा, वे हैजे से पीड़ित होकर मर गए। पण्डितजी के स्त्री-पुत्र भी कुछ दिन के भीतर उसी रोग से मर गए। पण्डितजी की दर्शनशास्त्र के विद्वान् के रूप में वृन्दावन में विशेष ख्याति थी; किन्तु बुद्धि लोप होने से उन्हें अब कुछ बोध नहीं रहता। पहले सभी उनका कितना सम्मान करते थे, लेकिन अब कोई उनका आदर नहीं करता।”

ठाकुर के मुख से इस प्रकार अनेक बातें सुनकर हम लोगों ने शयन किया।

## गोसाँईजी के मुख से श्रीवृन्दावन की कथा

28 मार्च, शनिवार। प्रातः शौचादि के बाद, स्नान-तर्पण समापन करके पूर्व दिशा के कमरे में ठाकुर के पास बैठ गया। रात्रि में हम लोग कहाँ थे, किसी प्रकार

की असुविधा तो नहीं हुई, वह सब ठाकुर ने पूछा। पण्डित जी के रसोईघर में हम लोगों ने रात्रि में रहने की व्यवस्था कर ली है, ठाकुर को बतलाया। लोगों की भीड़ कम हो जाने के बाद आश्रम के दक्षिण ओर के चौकोन छानी वाले कमरे में हम लोगों को रहने के लिए ठाकुर ने कहा। छोटे भैया आश्रम में ही दोनों समय भोजन करेंगे और मैं अपराह्न में एक बार पूर्ववत् स्वपाक आहार करूँगा, यही व्यवस्था हुई। छोटे भैया की बात उठाकर ठाकुर ने कहा— “आश्चर्य है! बड़े ही सत्पात्र हैं, इस प्रकार के लोग बहुत दुर्लभ हैं। दीक्षा होते ही क्षणभर में उनकी गुरुनिष्ठा की दिशा खुल गई। ऐसा अधिक देखा नहीं जाता।”

आज अपराह्न में नारायणगंज से वैष्णव धर्मावलम्बी एक ब्राह्मण, ठाकुर का दर्शन करने आए। उन्होंने ठाकुर से पूछा— ‘प्रभु! श्रीवृन्दावन में आपने क्या-क्या अलौकिक देखा? सुनने की इच्छा है।’

ठाकुर ने कहा— “श्रीवृन्दावन अप्राकृत धाम है, वहाँ सब अद्भुत है! श्रीवृन्दावन क्षेत्र के वृक्ष-लता, पशु-पक्षी समस्त ही अलग प्रकार के हैं। अन्य किसी स्थान के साथ उसकी तुलना नहीं होती। वहाँ के सभी वृक्षों की शाखाएँ, पत्ते सब नीचे झुके हुए हैं। कई स्थानों में सब बड़े-बड़े वृक्ष लता के समान रज से संलग्न हो गए हैं। देखकर स्पष्ट लगता है, साधु, वैष्णव महात्मा लोग ही ब्रज-रज पाने हेतु वृक्ष के रूप में विद्यमान हैं। वृक्ष में देवी-देवताओं की मूर्ति अपने-आप स्पष्ट रूप से प्रस्तुत हुई हैं। राधाकृष्ण, हरेकृष्ण आदि नाम के अक्षर वृक्षों में अपने-आप बनते हैं। कहीं ‘रा’ तो कहीं केवल ‘कृ’ ही बने हुए हैं। वृक्षों की शिरा-शिरा में ये सब स्वाभाविक अक्षर देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ।”

वैष्णव ने पूछा— प्रभु! यह सब क्या सभी लोगों को दिखा या केवल आपको ही दिखलाई दिया था?

ठाकुर ने कहा— “यह सब सभी ने देखा है। कालीदह के ऊपर बहुत प्राचीन एक केलिकदम्ब का वृक्ष है; उसकी शाखा-प्रशाखा में ‘हरेकृष्ण’, ‘राधाकृष्ण’ नाम स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है। जिनकी इच्छा हो, देखकर आ सकते हैं। वन की परिक्रमा के समय एक दिन एक वन के किनारे बैठा था, सामने एक पेड़ का पत्ता पड़ा देखकर उसे उठा लिया। फिर देखा, पत्ते के शिरे-शिरे में देवनागरी लिपि से ‘राधाकृष्ण’ नाम लिखा हुआ है। थोड़ा ढूँढ़ने से ही पेड़ मिल गया, तब एक-एक करके भारत पण्डित जी, सतीश आदि जो लोग मेरे साथ थे, सभी को बुलाकर दिखलाया; सभी ने एक ही प्रकार का नाम, वृक्ष के पत्तों-पत्तों में देखा।

खोज करने से वहाँ इस प्रकार की अनेक विचित्रताएँ दिखलाई पड़ेंगी।”

“अन्य एक दिन परिक्रमा के समय एक वन के निकट पहुँचे। सुना है, भगवान् श्रीकृष्ण ने वहाँ के कदम्ब वृक्ष के पत्ते से ‘दोना’ बनाया था। अभी भी भगवान् उस लीला का प्रमाण समय-समय पर भक्तों को दिखाते हैं। हम लोग वन में प्रवेश करके ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हैरान हो गए। दोना किसी वृक्ष में दिखा नहीं। फिर साष्टांग प्रणाम करके व्याकुलता के साथ सब बैठे हैं, सामने ही देखे, कदम पेड़ का पत्ता दोना के समान दिख रहा है। पास जाकर देखे, पेड़ के सभी पत्ते दोना के आकार में हैं। साथ में जो थे, सभी ने पेड़ के पत्ते-पत्ते में दोना देखा।”

“चरणपहाड़ी में जाकर देखा, पहाड़ की चट्टानों पर गाय-बझड़ों एवं मनुष्य के असंख्य पद-चिह्न हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की जिस वंशी-ध्वनि से पूरा वृन्दावन मुग्ध हो जाता था, उसी मधुर वंशी-ध्वनि से एक समय वह पहाड़ भी द्रवीभूत हो गया था। उस समय गाय, बछड़े और ग्वाल बालकगण जो श्रीकृष्ण के साथ उस पहाड़ पर थे, सबके पद-चिह्न उस चट्टान पर अंकित हो गए। आज भी वे चिह्न पहाड़ पर स्पष्ट अंकित हैं। देखकर स्पष्ट समझ आता है कि वह सब मनुष्य के खोदे हुए नहीं हैं। मनुष्य के द्वारा उस प्रकार का कभी हो नहीं सकता।”

ये सब बातचीत होते-होते दिन प्रायः बीत गया। शहर से बड़ी संख्या में स्कूल के छात्र एवं बाबू लोग आ गए। उन लोगों के साथ ठाकुर विभिन्न विषयों में बातचीत करने लगे। मैं भी भोजन बनाने चला गया।

संध्या के समय आम पेड़ के नीचे कीर्तन आरम्भ हुआ। सुना था, संकीर्तन के समय आश्रम के बूढ़े लाल कुत्ते को प्रायः महाभाव होता है। आज उसे संकीर्तन के समय भावावेश में अचेत अवस्था में देखकर चकित हो गया। ‘हरेकृष्ण’ नाम उच्च स्वर में बहुत समय तक उसके कान में सुनाने के बाद उसकी चेतना लौटी।

## गोसाँईजी की जटा और दण्ड

29 मार्च, रविवार। श्रीवृन्दावन में ठाकुर के मस्तक पर महादेवजी का जो शिरोवस्त्र सर्वदा बंधा रहता था, अब वह नहीं है। मस्तक के दायें-बायें एवं सामने लगभग एक फुट की लम्बी सुन्दर तीन जटाएँ देख रहा हूँ। पीछे की ओर वेणी के आकार में एक जटा पीठ पर लटक रही है; ब्रह्मतालु के चारों ओर के बालों के गुँथ जाने से ऊपर एक अन्य सुन्दर जटा बन गई है; सब मिलाकर ठाकुर के मस्तक पर पाँच जटाएँ हैं। सामने की बड़ी जटा का विस्तृत अग्रभाग ठाकुर के



नृत्य के समय जब आश्चर्यजनक रूप से ठाकुर के कपाल के ऊपर उठ जाता है, तब महादेव के मस्तक पर सर्प का स्मरण होता है। फिर समाधि के समय वही जटा जब बायीं ओर थोड़ा हिल-डुलकर मस्तक के ऊपर अवस्थित रहा करती है, तब देखने से श्रीकृष्ण के अपूर्व मयूर-मुकुट का स्वाभाविक संस्कार मन में उदित हो जाता है। स्वाभाविक जटा इतनी सुन्दर, इतनी मनोरम कहीं देखी नहीं। ठाकुर की देह का वर्ण बहुत स्वच्छ है, पर हाथ-पैर और मुखमण्डल अपेक्षाकृत काला है। इसका कारण पूछने पर ठाकुर ने कहा— **“श्रीवृन्दावन में ठण्ड बहुत अधिक पड़ती है। शरीर में सर्वदा ‘अलखल्ला’ पहने रहता था। जो सब स्थान खुला रहता था, ठण्ड लगने से वही काला हो गया है।”**

### श्रीवृन्दावन में ब्रजवासी

आज एक सज्जन ने ब्रजभूमि की विविध प्रशंसा सुनकर कहा— ‘श्रीवृन्दावन अप्राकृत ही हो और चाहे जो भी हो, लेकिन वहाँ के लोग बड़े भयानक हैं। पैसा-पैसा करके यात्रियों के ऊपर जो भयंकर अत्याचार करते हैं, वह सुनकर तो मन में डर बैठ जाता है।’ ठाकुर ने कहा— **“पैसे के लिए ब्रजवासी लोग नर-हत्या भी कर देते हैं, ऐसी कुछ घटना सुनी तो है, लेकिन वे लोग वास्तव में ब्रजवासी हैं या नहीं, कहना कठिन है। आगरा, दिल्ली, जयपुरादि विभिन्न स्थानों के अनेक लोग तीन-चार पीढ़ी से ब्रजभूमि में वास कर रहे हैं। वे लोग भी ब्रजवासी कहकर अपना परिचय देते हैं। लोग भी उन्हें ब्रजवासी ही समझते हैं। श्रीवृन्दावन के ग्रामों में घूमने से यथार्थ ब्रजवासी लोगों की सरलता, उदारता देखकर मुग्ध हो जाओगे। जो सब ब्रजवासी यात्री-यजमानों को सताकर पैसा लेते हैं, वे लोग उस पैसे के द्वारा क्या करते हैं, वह भी तो देखना होगा। वन परिक्रमा के समय हजारों-हजारों साधु, वैष्णव, यात्री लोगों का भरण-पोषण वे लोग ही तो करते हैं। पैसा वे लोग जमा नहीं करते। तुम लोगों के हाथ से पैसा लेकर, तुम लोगों की ही सेवा करते हैं। पहले ब्रजवासी लोग आहार के अभाव से, अर्थ के अभाव से कहीं भी घूमना-फिरना नहीं करते थे। यात्रियों के ऊपर उन लोगों का कोई उपद्रव नहीं था। उन लोगों की प्रचुर सम्पत्ति थी। हम लोगों के ही दुर्व्यवहार से इस समय उन लोगों की यह दुर्दशा है।”**

जिस लाला बाबू के नाम का गुण-गान करके आज पूरे बंगाल के लोग कृतार्थ हो रहे हैं, एक समय वे भी किस प्रकार के व्यक्ति थे? फिर श्रीधाम वास के गुण से, भगवत् कृपा से कितनी दुर्लभ अवस्था प्राप्तकर जन-साधारण को

स्तम्भित करके श्रीवृन्दावनधाम को प्राप्त हुए, ठाकुर वह कहने लगे—

“प्रथम अवस्था में लाला बाबू अन्यान्य जमींदारों के जैसे ही थे। ब्रजवासी लोग सरल होते हैं। भाँग और लड्डू मिलने से वे लोग फिर कुछ नहीं चाहते। उसमें ही उन लोगों को परम आनन्द मिलता है। लाला बाबू यह देखकर उन लोगों को खूब भाँग और लड्डू खिलाने लगे। धीरे-धीरे उन लोगों का सब कुछ लिखवा लिए। उनके ब्रजवासी अभी भी दुःख के साथ कहते हैं, लाला बाबू ने हम लोगों का नाश कर दिया। फिर भगवान् की कृपा से जब लाला बाबू को वैराग्य हुआ, वे राधाकुण्ड के एक सिद्ध महात्मा के पास दीक्षाप्रार्थी हुए। सिद्ध बाबाजी ने लाला बाबू का बहुत तिरस्कार करते हुए कहा— ‘जिन लोगों के साथ तुम्हारी बहुत शत्रुता है, केवल लंगोटी पहनकर कंगाल के वेश में जाकर पहले उन लोगों के पैर पड़कर क्षमा माँगो और उनका आशीर्वाद लेकर आओ। फिर उन लोगों के घर से मुट्ठीभर भिक्षा करके भोजन करना।’ लाला बाबू जब कंगाल वेश में केवल लंगोटी पहनकर मथुरा के चौबे लोगों के द्वार-द्वार में जाने लगे, तब सबने सोचा था, लाला बाबू को अब लौटकर नहीं आना होगा; परन्तु चौबे लोग उनकी अवस्था देखकर आँखों के आँसू को रोक न सके, कहने लगे— ‘ओह! तुम्हारी यह अवस्था, भिक्षा करने हम लोगों के ही द्वार पर आए हो? तुमको क्या भिक्षा दें, कहो? हम लोगों का जो कुछ बचा है, वह भी तुम ले लो।’ चौबे लोगों ने उन्हें हृदय से क्षमा करके आशीर्वाद दिया। फिर उनकी दीक्षा हुई। दीक्षा के बाद उन्होंने जिस प्रकार कठोर वैराग्य धारण किया, वह और कहीं प्रायः देखा नहीं जाता। प्रतिदिन भिक्षा के समय पहचान जाने से लोग उनको अच्छा-अच्छा खाने को देते; इसलिए उन्होंने कितनी कठोरता की थी। आदर, यत्न, प्रशंसा उन्हें विष के समान ज्वाला देती। लोग उन्हें पहचान न सके, इसलिए कितने प्रकार से पागल के समान ही घूमते। लोग आदरपूर्वक भिक्षा देते, इसलिए उन्होंने भिक्षा करना छोड़ दिया। अन्त में घोड़े की लीद में जो दाना पाते, केवल वही खाकर किसी प्रकार जीवन यापन करते थे। एक दिन उसी प्रकार घोड़े की लीद से दाना चुन रहे थे, अचानक घोड़े ने एक भयंकर दुलत्ती मारी, उसी से लाला बाबू की मृत्यु हुई। इस प्रकार अद्भुत वैराग्यपूर्ण जीवन इस समय और देखा नहीं जाता।”

## परिक्रमा के समय ब्रजमाइयों का व्यवहार

30 मार्च, सोमवार। ठाकुर को श्रीवृन्दावन की बातें कहने में बड़ा आनन्द मिलता है। इतने दिन ठाकुर श्रीवृन्दावन में थे, इस कारण दर्शकगण भी आकर ठाकुर से श्रीवृन्दावन की ही बातें पूछते हैं। आज एक सज्जन ने ठाकुर से पूछा, 'ब्रज परिक्रमा के समय असंख्य यात्रियों का आहारादि किस प्रकार चलता है? साथ-साथ क्या बाजार जाता है? या यात्री लोग वस्तुएँ साथ में लेकर चलते हैं? रास्ते में क्या चोर-डाकुओं का उपद्रव नहीं होता? ठाकुर ने कहा— "चोर-डाकुओं का उपद्रव तो सभी जगह है। परिक्रमा के समय साथ में वस्तुएँ ले जानी नहीं पड़ती। साथ-साथ बाजार चलता है, फिर रास्ते में जगह-जगह अड्डे भी हैं। वहाँ सभी वस्तुएँ मिलती हैं। जो गृहस्थ हैं, वे अड्डे में जाकर प्रयोजन के अनुसार वस्तुएँ खरीदकर भोजनादि करते हैं और साधु लोग लूट-पाट करके भोजन संग्रह कर लेते हैं। परिक्रमा के समय गाँव-गाँव में ब्रजमाइयाँ दही, दूध इत्यादि लाकर एक कमरे में सजाकर रखती हैं। फिर अन्य कमरे में जाकर चुपचाप बैठ जाया करती हैं। साधु लोग इधर-उधर के कमरे में जाकर दूध-दही खोजकर बाहर कर लेते हैं। उसी समय ब्रजमाइयाँ कृत्रिम क्रोध प्रकट करके, हाथ में डण्डा लेकर उन्हें भगाया करती हैं। साधु लोग दही, दूध इत्यादि लूट-पाट करके हँडियाँ तोड़कर भाग जाते हैं। इससे ब्रजमाइयों को बड़ा ही आनन्द होता है। वे लोग इस समय ग्वाल-बालों के साथ श्रीकृष्ण के दूध-दही चोरी की कथा का स्मरण करके उसी भाव में मुग्ध हो जाया करती हैं। चोरी करके अथवा बलपूर्वक इस प्रकार लूट-पाट करके किसी के कुछ लेने से ब्रजमाइयों को जो आनन्द होता है, वह कहा नहीं जा सकता। इस आनन्द के लिए ही वे लोग प्रतिदिन कितने उत्साह से दूध, दही, मख्खनादि विविध खाने की अच्छी-अच्छी वस्तुएँ पूरे कमरे में सजाकर रखती हैं। जो सब साधु लूट-पाट नहीं करते, आसन पर ही रहते हैं, ब्रजमाइयाँ उनके पास जाकर वात्सल्य-भाव से कितनी गालियाँ देतीं, हाथ पकड़कर खींचते हुए घर ले जातीं। साधुओं की गरदन पकड़कर कितना आदर करके घर में जो कुछ रहता अपने हाथ से उन्हें खिलातीं। ब्रजमाइयों के ये सब भाव देखकर चकित हो जाओगे।"

"ब्रज के ग्रामों में जाने से देखा जाता है, अभी वही भाव विद्यमान है। दिन ढलने पर ब्रजमाइयाँ व्याकुल मन से रास्ते की ओर देखती हुई खड़ी रहती हैं। कब ग्वाल-बाल गायों को लेकर लौटेंगे, वही देखती हैं। जान-पहचान का बोध नहीं है। घर की अच्छी-अच्छी वस्तुएँ लाकर,

कितना आदर करके ग्वाल-बालों को खिलाती हैं। ग्वाल-बालों को आने में थोड़ा विलम्ब होने से, स्नेहपूर्वक उन्हें कितना डाँट-डपट लगाती हैं। ब्रज के ग्रामों में जाने से देखा जाता है, ब्रजमाइयों के भीतर अभी भी पहले के जैसा वही भाव, वही सब अवस्था विद्यमान है।”

ठाकुर के साथ इस बार माता ठाकुरानी, सतीश, श्रीधर आदि अनेक लोगों ने ब्रज की परिक्रमा की। ये लोग ही धन्य हैं। बहुत कम दिन रहने के कारण मेरे भाग्य में वह नहीं था। ठाकुर ने सतीश को चौरासी कोस श्रीवृन्दावन-परिक्रमा का विवरण विस्तृत रूप से लिखने के लिए कहा था। सतीश भी उसे लिखकर बीच-बीच में ठाकुर को सुनाते थे। आशा करता हूँ, ठाकुर की श्रीवृन्दावन-परिक्रमा की सारी घटनाएँ इस पुस्तक में रहेंगी। सतीश अभी इस आश्रम में ही हैं।

## जीवप्रकृति के साथ समप्राणता

31 मार्च, मंगलवार। आहार के बाद साढ़े 12 बजे ठाकुर आम पेड़ के नीचे अपने आसन पर बैठते हैं। प्रायः संध्या तक एक ही भाव से स्थिर बैठा करते हैं। चैत्र मास की भीषण गर्मी में मध्याह्न के समय घर से कोई बाहर नहीं निकलता। ठाकुर भी इस समय गर्मी के कारण कभी-कभी पसीने से तर हो जाते हैं। ठाकुर के साथ-साथ मैं भी हाथ में एक पंखा लेकर आम पेड़ के नीचे बैठता हूँ। ठाकुर की बायीं ओर, तीन फीट के अन्तर में रहकर उन्हें पंखे से हवा करने लगता हूँ। ठाकुर लगभग तीन घण्टे तक स्थिर रहकर पूर्व दिशा में वृक्ष की ओर एकटक देखा करते हैं। कभी-कभी तो आँखें बन्द करके एक ही अवस्था में तीन घण्टे तक समाधिस्थ रहते हैं। प्रायः 5 बजे वहाँ लोग आ जाते हैं। तब ठाकुर उन लोगों के साथ विविध विषयों पर बातचीत करने लगते हैं। विभिन्न श्रेणी के लोगों के समागम से वह स्थान परिपूर्ण देखकर मुझे बड़ा आनन्द मिलता है। आज मध्याह्न में, आम पेड़ के नीचे अपने आसन पर बैठते ही ठाकुर आँखें बन्द करके ध्यान-मग्न हो गए। मैं पास में बैठकर हवा करने लगा। बहुत समय तक समाधिस्थ रहकर, लगभग 3 बजे ठाकुर अचानक चौंक उठे एवं व्यग्र होकर मुझसे बोले— **“देखो तो! देखो तो! उन लोगों को भगा दो, पक्षी लोग भय से पुकार रहे हैं।”** मैंने पूछा— पक्षी लोग कहाँ पुकार रहे हैं? किसको भगा दूँ? ठाकुर ने कहा— **“जाकर देखो, कुंज घोष के घर में बड़े आम के पेड़ पर।”** इतना ही कहकर ठाकुर ने आँखें बन्द कर ली। मैं तुरन्त घोष जी के घर की ओर दौड़ा। वहाँ बड़े आम के पेड़ के पास जाकर देखा, कुछ दुष्ट बालक पंछी के घोंसले पर पत्थर मार रहे हैं। तीन-चार पंछी पेड़ के ऊपर इस डाल से उस डाल में घबराकर उड़ रहे हैं और चें-चें कर रहे हैं। मेरे धमकाने पर वे सब बालक भाग गए। पंछी शान्त हो गए।

मैं ठाकुर के पास आकर बैठ गया एवं पंखा हाथ में लेकर उनको हवा करने लगा। ठाकुर ने उसी समय सिर उठाते हुए आँखें खोलकर मुझसे पूछा— **“क्या देखे?”** मैंने दुष्ट लड़कों के द्वारा पंछी के बच्चों को गिराने की दुश्चेष्टा और पंछी को भगाने के लिए पत्थर मारने की बात कहने लगा। ठाकुर जैसे कुछ जानते ही नहीं, इस प्रकार के भाव से बड़े ध्यानपूर्वक मेरी बातें सुनने लगे। दिन ढल जाने के बाद मैंने पूछा— मैं तो यहीं पर बैठा था, पक्षियों के शब्द तो कुछ सुन ही नहीं पाया। आपने मग्न अवस्था में रहकर उतनी दूर से पक्षियों की पुकार कैसे सुन ली?

ठाकुर ने कहा— **“पास, दूर क्या है? जहाँ जिस दशा में रहा जाए, किसी विपत्ति में पड़कर कोई पुकारे, तो वह आकर हृदय में लगता है।”**

इस समय ठाकुर के आसन के पास से होकर एक पंक्ति में चींटियाँ द्रुत गति से आवागमन कर रही थीं। ठाकुर उनकी ओर देखकर, थोड़ा सिर झुकाकर कान लगाते हुए मुस्कुराते-मुस्कुराते मानो उनकी बातें सुनने लगे एवं उनकी बातें मानो समझ रहे हैं, इस प्रकार के भाव से समय-समय पर वे सिर हिलाने लगे। तब मैंने पूछा— क्या चींटियाँ भी बात करती हैं? उनकी बातें सुनी जा सकती हैं?

ठाकुर ने कहा— **“चींटियाँ ही क्यों, वृक्ष-लतादि भी बात करते हैं। मन थोड़ा स्थिर होने से कीट-पतंग, वृक्ष-लता सभी की बातें सुनी जा सकती हैं।”**

ठाकुर ने मुझे और कोई प्रश्न न करने देकर तुरन्त कहा— **“उसे छोड़ो, तुम चींटियों के लिए कुछ खाना लाओ न। आटा और चीनी मिलाकर देने से चींटियाँ उसे खाकर बहुत प्रसन्न होती हैं।”** आटा न मिलने से मैंने केवल चीनी लाकर ठाकुर के कहे अनुसार उसे उनकी दाहिनी ओर डाल दिया। ठाकुर उसी समय आँखें बन्द करके ध्यानस्थ हो गए। बीच-बीच में आँखें खोलकर चींटियों की ओर देखने लगे। कुछ क्षण बाद उन्होंने कहा— **“इन लोगों के भीतर कुछ भी अव्यवस्थित नहीं होता। समस्त कार्यों की सुन्दर शृंखला है। इनके बीच भी चालक हैं, शासन है, विचार और दण्ड की व्यवस्था है। मनुष्य बड़ा समझकर किसका अभिमान करता है? चींटियों के समान बालू में से इस प्रकार चीनी अलग करके देखे तो?”**

### श्रीवृन्दावन में ‘राधाश्याम’ पक्षी

मध्याह्न की गर्मी में सभी अपने-अपने कमरे में विश्राम करते हैं; चारों ओर सन्नाटा रहता है। गेण्डारिया के सब पक्षी छाँव में वृक्ष की डाल पर बैठकर नाना प्रकार से चहकते हैं, सुनकर बड़ा अच्छा लगता है। आज अपराह्न में ठाकुर ने

श्रीवृन्दावन के एक प्रकार के अद्भुत पक्षी की बात कही। सुनकर चकित हो गया। श्रीवृन्दावन में इतने दिन था, लेकिन किसी विषय में कुछ पता करके देखा नहीं। उसके लिए अब पछतावा होता है। ठाकुर आज श्यामा-पक्षी की बात कहने लगे—  
**“किसी एक ऋतु में उत्तर की ओर से एक विशेष प्रकार के पक्षी बड़ी संख्या में श्रीवृन्दावन आते हैं। वे पक्षी ‘राधाश्याम’, ‘राधाश्याम’ कहकर पुकारते हैं। इतने स्पष्ट स्वर में ‘राधाश्याम’, ‘राधाश्याम’ कहते हैं कि सुनकर मन में अन्य कुछ विकल्प नहीं आता। श्रीवृन्दावन में उन पक्षियों को ‘राधाश्याम’ पक्षी कहते हैं। एक बार एक ब्रजवासी ने कौशल करके दो पक्षियों को पकड़ा, किन्तु एक उड़ गया; दूसरे को उसने एक पिंजरे में बन्द करके रख लिया। उसको दाना दिया, लेकिन पक्षी ने पिंजरे में बन्द होने से खाना त्याग दिया। फिर उसने चहकना बन्द कर दिया, उसकी स्फूर्ति भी नहीं रही। अगले दिन प्रातःकाल ‘राधाश्याम’ पक्षियों का दल ब्रजवासी के कुंज में आ गया और सभी ‘राधाश्याम’, ‘राधाश्याम’ कहकर पुकारने लगे। तब मोहल्ले के सब ब्रजवासियों ने उस ब्रजवासी को डाँटते हुए कहा, शीघ्र तुम उस पक्षी को छोड़ दो, नहीं तो तुम्हारा सर्वनाश हो जाएगा! देखो, दल के सभी पक्षी आकर उसके लिए ‘राधाश्याम’, ‘राधाश्याम’ कहकर पुकार रहे हैं। तब ब्रजवासी ने पक्षी को छोड़ दिया।”**

### श्रीवृन्दावन में हिंसा

श्रीवृन्दावन में कौवा कहीं देखा नहीं। मांसाहारी लोगों के न रहने से ही वहाँ कौवे नहीं हैं। मांस-मछली आदि खाना आरम्भ होने से ही कौवे वहाँ पहुँच जाएँगे। ब्रज-भूमि के जैसा हिंसारहित स्थान और कहीं देखा नहीं जाता। इसलिए वन के पशु-पक्षियों को मनुष्य के शरीर को स्पर्श करते हुए चलने में भी डर नहीं लगता। जिसके भीतर हिंसा है, उसके पास ही डर है।

सुना है, श्रीवृन्दावन में हिंसा नहीं होने के कारण सरकार की ओर से ही पूरे ब्रजभूमि में पशु-पक्षियों का शिकार करना निषिद्ध है। कुछ समय पहले एक पुलिस अधिकारी सरकार के हुकुम की अवेहलना करके शिकार करने गए थे। शिकार की चेष्टा करते ही वे मारे गए। ठाकुर ने घटना इस प्रकार बतलाई—

**‘पुलिस साहेब घोड़े पर चढ़कर यमुना पार करके ‘बेलबाग’ की ओर एक जंगल में पहुँच गए। बहुतों ने मना किया था, वे किसी की बात नहीं माने। जंगल में एक सुअर को देखकर उन्होंने बन्दूक चला दी; सुअर तुरन्त दो छल्लाँग में उनके पास आ गया; घोड़ा साहेब को गिराकर**

भाग गया। सुअर ने तुरन्त साहेब को चीरकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया।'

## होम की व्यवस्था

1 अप्रैल, बुधवार। मध्याह्न में आम पेड़ के नीचे ठाकुर के पास में बैठा हूँ। ठाकुर ध्यानस्थ थे, अचानक सिर ऊपर करके मेरी ओर देखकर कहा—

**“वैशाख (बंगला) महीने के प्रथम दिन (13 अप्रैल) से तीन महीने के लिए तुमको होम करना होगा।”**

मैंने कहा— होम किस प्रकार से करूँगा, मैं तो कुछ जानता नहीं।

ठाकुर ने कहा— “बेल, वट, पीपल या गूलर की लकड़ी द्वारा होम करना। एक सौ आठ त्रिदल विल्वपत्र लेकर, घी में मिलाकर ‘• • •’ यह मन्त्र पढ़ते हुए एक सौ आठ बार आहुति देना। प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान के बाद गायत्री का जप करके, तीन महीने इस प्रकार होम करना। संध्या 4 बजे के बाद स्वपाक आहार करना ही तुम्हारे लिए अच्छा है।”

मैंने कहा— गाँव में देखा हूँ, होम करने के पहले ब्राह्मण लोग यन्त्रादि आँककर कुण्ड बना लेते हैं और होम के स्थान में बालू फैला देते हैं, क्या मुझे भी वैसा ही करना होगा?

ठाकुर ने कहा— “नहीं, नहीं, कुछ नहीं। आसन के सामने इस प्रकार एक कुण्ड बनाकर, प्रतिदिन उसी में होम करना।”

यह कहकर ठाकुर ने हाथ से संकेत द्वारा गोलाकार कुण्ड दिखला दिया। वैशाख महीना आरम्भ होने में अधिक दिन नहीं हैं। होम के लिए गाय का शुद्ध घी और लकड़ी संग्रह की यहाँ असुविधा देखकर कल ही घर जाने का निश्चय किया।

## फकीर अलीजानः प्राणायाम के प्रकार

5 अप्रैल, रविवार। केवल एक दिन घर में रुककर, होम के लिए गूलर की लकड़ी और गाय का घी लेकर गेण्डारिया आ गया। देखा, विभिन्न ओर से अनेक स्त्री-पुरुष, गुरुभाई-बहिन आकर आश्रम को परिपूर्ण कर दिए हैं। ठाकुर के गेण्डारिया आने के बाद से विभिन्न श्रेणी के साधु-संन्यासी, ईसाई एवं मुसलमान फकीर भी आश्रम में आना आरम्भ कर दिए। सेना के पेंशनधारी कप्तान काम्बेल साहेब बहुत समय से निर्लिप्त रहकर, साधन-भजन में जीवन यापन कर रहे हैं। मध्याह्न में निर्जन पाते ही वे ठाकुर के पास आकर कुछ समय बिताते हैं; भीड़ देखते ही तुरन्त चले जाते हैं। समुद्र बाबा नामक एक साधु कुछ दिनों से आश्रम में हैं। वे पण्डित जी के कमरे के बरामदे में रहते हैं। बाबाजी को कुछ साधन-भजन करते

देखा नहीं। क्या करते हैं, वह भी पता नहीं; लेकिन उनकी बातचीत, उनका आचार-व्यवहार बड़ा आनन्ददायक है। ठाकुर के ऊपर उनकी बड़ी श्रद्धा है। ठाकुर का जो दर्शन मिला है, इसी से वे अपने को कृतार्थ मानते हैं।

एक मुसलमान फकीर प्रायः ठाकुर के पास आते हैं। वे ठाकुर के यहाँ आने के पूर्व गेण्डारिया के घने जंगल में रहते थे। फकीर साहेब का नाम अलीजान है। वे जो बातें कहते हैं, एक का भी अर्थ समझ नहीं आता। कई बार चाल-चलन भी प्रायः पागलों के जैसा लगता है; परन्तु वे किसी को भी कोई हानि पहुँचाने वाला कार्य नहीं करते। लड़के-बूढ़े सभी अलीजान को लेकर बहुत आनन्द मनाते हैं। अलीजान भी सबके साथ खूब हिल-मिलकर रहते हैं। मैं ठाकुर के पास बैठा हूँ, दिन के 2 बजे वृद्ध अलीजान गन्ने के तीन-चार टुकड़े लेकर आ गए। ठाकुर के सामने आसन लगाकर बड़ी दृढ़ता के साथ बैठ गए। फिर गन्ने का एक बड़ा टुकड़ा हाथ में लेकर खाने के उद्देश्य से जैसे ही दाँत से लगाए, वैसे ही एकाएक उछलकर उठ गए एवं चारों ओर चंचल दृष्टि से देखकर, गन्ने के टुकड़े को दायें-बायें प्रबल वेग से घुमाने लगे और उच्च स्वर में कहने लगे— 'हाय, अल्लाह! साला कड़वा कर दिया। खाने नहीं दिया। अरे साला, लाट साहेब तो आया है। लाट साहेब का बड़ा मस्त जहाज भी आया है, इससे क्या हुआ? लाट के पास काम का हिसाब नहीं देगा? साला ऐसे ही चला जाएगा? वैसे नहीं कर सकता, तंग करने आया है! निकल! निकल! निकल!' यह कहकर फकीर साहेब गोसाँईजी के सामने कई बार गन्ने का टुकड़ा घुमाकर उछल-कूद करते-करते दौड़कर दक्षिण की ओर गेण्डारिया के जंगल में प्रवेश कर गए।

ठाकुर इस समय धीरे-धीरे मुस्कुराते हुए फकीर साहेब की ओर देखते रहे। फकीर साहेब के जाने के बाद ठाकुर से पूछा— 'अलीजान ने ऐसा क्यों किया? हवा में गन्ने के टुकड़े से किसको मारा? किसने अलीजान के गन्ने को कड़वा किया? ये सब क्या अलीजान का केवल पागलपन है?'

ठाकुर ने मेरी बात सुनकर कहा— "अलीजान को तुम लोग पालग समझते हो? वे पागल नहीं हैं, वे बहुत अच्छे फकीर हैं। सिद्ध पुरुष हैं। लोगों के सामने पालग का ढोंग न करने से आजकल अपनी रक्षा कर पाना बड़ा कठिन है। अलीजान जो कहते हैं, जो कुछ करते हैं, सभी के साथ अपनी क्रिया का योग बनाए रखते हैं। वे निरर्थक कुछ नहीं करते। भूत-प्रेतादि की दृष्टि से भी खाद्य वस्तु नष्ट होती है, जूठी होती है। अलीजान वह सब स्पष्ट देख पाते हैं। हवा में गन्ना घुमाकर उन्होंने जो उछल-कूद की, वह एक प्रकार का प्राणायाम है। अलीजान कई प्रकार के प्राणायाम जानते हैं। फकीर साहेब को साधारण मत समझो।"



मैंने कहा— उछल-कूद करके, हाथ-पैर हिलाकर मुँह बनाते हुए नाना प्रकार के भयंकर शब्द के साथ चिल्लाकर भी प्राणायाम होता है? उनको श्वास-प्रश्वास की कोई क्रिया करते हुए तो देखा नहीं। प्राणायाम के कितने प्रकार हैं?

ठाकुर ने कहा— “मनुष्य देह में 72 हजार नाड़ियाँ हैं। उन नाड़ियों में प्राण-वायु को चलाने की जो प्रक्रिया है, उसे ही प्राणायाम कहते हैं। प्रत्येक नाड़ी में एक-एक प्रकार की प्रक्रिया से यह प्राण-वायु चलती है। इसलिए प्राणायाम के भी 72 हजार प्रकार हैं। नाना प्रकार की शारीरिक मुद्राओं से एवं विभिन्न प्रकार के शब्द करने से भी प्राणायाम होता है। किस प्रकार की चेष्टा से कौन-सी नाड़ी में किस प्रकार के प्राणायाम की क्रिया होती है, लोग उसकी प्रणाली नहीं जानते। आजकल वे सब प्राणायाम देखे नहीं जाते; प्रायः सभी लुप्त हो गए हैं। फकीरों के बीच अभी भी ये सब प्राणायाम थोड़े-बहुत देखे जाते हैं।”

इन सब बातों के चलते-चलते अनेक लोग आ गए। ठाकुर उन लोगों के साथ बातचीत करने लगे। मैं भी भोजन बनाने के लिए चला आया। प्रतिदिन ही संध्या-कीर्तन में बड़ा आनन्द उत्सव चलता है।

## प्रतिष्ठा से बचने हेतु सिद्ध महात्माओं का लोक-विरुद्ध व्यवहार

6 अप्रैल, सोमवार। आज ठाकुर ने कहा— “धर्मार्थियों का प्रतिष्ठा और प्रशंसा से जितना अनिष्ट होता है, उतना अन्य किसी से नहीं होता। इसलिए कितने अच्छे-अच्छे साधु-महात्मा कितने प्रकार के उपाय का आश्रय लेकर लोगों की दृष्टि से बचने के लिए अपने को गुप्त रखते हैं, कह नहीं सकते। एक बार श्रीवृन्दावन के एक सज्जन ने एक दिन साधु-वैष्णवों का भण्डारा करवाया; मैं भी दर्शन करने गया था। देखा, टिकट दिखाकर वैष्णव बाबाजी लोग कुंज के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। एक कंगाल भीतर जाना चाह रहा था, लेकिन टिकट न रहने के कारण द्वारपाल ने उनको गाली देकर हटा दिया। पुनः भीतर जाने के लिए उस व्यक्ति के प्रयास करते ही द्वारपाल ने उनको कुछ एक बार जोर से धक्का मारा। वे प्रहार से किसी प्रकार का क्लेश प्रकट किए बिना, प्रसन्नतापूर्वक उस स्थान से चले गए। देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं उनके लिए कुछ भोजन माँगकर ले लिया और उनके पीछे-पीछे गया। वे यमुना के किनारे-किनारे बहुत दूर जाकर वन के भीतर एक निर्जन स्थान पर पहुँचे। वहाँ एक गुफा के भीतर गए। मैं उनके पास पहुँचकर,

उन्हें प्रणाम करके खाना दिया। फिर पूछा— 'लोकालय से इतनी दूर रहकर आपको भिक्षादि की कैसे सुविधा होती है? शहर में भी तो कहीं पर रह सकते हैं।' बाबाजी ने कहा, 'छिपकर रहना ही सुरक्षित है। केवल एक बार प्रातःकाल उठकर यमुना में स्नान करता हूँ और रात्रि में एक बार मधुकरी (भिक्षा) करके रोटी का टुकड़ा ले आता हूँ, उसे ही यमुना के जल में भिगाकर खा लेता हूँ; इसमें मेरा कोई झंझट नहीं है। अच्छे-से हूँ।' बाबाजी परम वैष्णव हैं। इस प्रकार बहुत दिनों से निर्जन गुफा में रहकर दिन बिता रहे हैं। श्रीवृन्दावन में इस प्रकार गुप्त रूप से और भी कितने महात्मा हैं, उन सब की फिर कौन खबर लेता है?"

ठाकुर फिर कहने लगे— "इस बार हरिद्वार में एक साधु को देखा। वे बहुत अच्छे साधु हैं, ऐसा चारों ओर प्रचार होने से सर्वदा उनके पास लोगों की भीड़ रहने लगी। लोगों के उपद्रव से बचने के लिए उन्होंने साधु का वेश त्याग दिया। लोग ने तब भी उनका साथ नहीं छोड़ा। तब साधु 'कोट-पैट' पहनकर, छड़ी हाथ में लेकर बाबू के वेश में रास्तों पर घूमने लगे। उससे भी लोग उन्हें भूले नहीं। सर्वदा उनके साथ-साथ लोगों की भीड़ चलने लगी। तब साधु अधीर हो उठे। लोगों का साथ त्यागने हेतु थोड़ा बदनाम होने के लिए उन्होंने एक व्यापारी की दुकान में जाकर चावल चुराया। पुलिस ने उनको पकड़कर चोरी करने का चालान दिया। अदालत के निर्णय से उनको तीन रुपया जुर्माना हुआ। तब व्यापारी ने उनको पहचान लिया; उन्होंने स्वयं तीन रुपये जुर्माना देकर उनको छुड़वाया और हाथ जोड़कर, पैर पड़कर उनसे क्षमा माँगी। कई बार महात्मा लोग प्रतिष्ठा, प्रशंसा से बचने के लिए इस प्रकार के कार्य करते हैं, जिससे चारों ओर उनकी अपकीर्ति का प्रचार हो।"

"अयोध्या के हरिदास बाबाजी एक सिद्ध महात्मा हैं। वे लोकालय त्यागकर बहुत दूर जंगल के भीतर एक पुरानी कुटिया में रहते और अपनी इच्छानुसार आनन्दपूर्वक भजन करते थे। वहाँ जाकर भी अनेक लोग उनके दर्शन करते एवं ससारी आपद-विपद् की बातें कहकर उसके प्रतिकार के लिए बाबाजी से प्रार्थना करते। बाबाजी उनको नाना प्रकार से समझाकर कहते कि वे वह सब कुछ नहीं जानते। बाबाजी की बात न मानकर सब उनके पास आने लगे। तब बाबाजी ने अश्लील गालियाँ देकर उन लोगों को भगाना आरम्भ किया। कोई उनके पास न आए, इसलिए वे लोगों को डर दिखाने के लिए कभी-कभी पत्थर फेंककर मारते थे।"

श्रीवृन्दावन जाते समय कुछ दिन काशी में रुका था। उस समय पूर्णानन्द स्वामी के साथ भेंट करने की बहुत इच्छा हुई। तीन दिन उनके दर्शन के लिए जाने का प्रयास किया। तीनों दिन लोगों ने मुझे रोकते हुए कहा— 'महाराज, आप वहाँ जाएँगे, उस बेटा शराबी के पास! नहीं वैसा नहीं होगा। काशी में सभी उनको शराबी और बदमाश के नाम से जानते हैं।' फिर वह सब बातें सुनकर भी मेरे मन में उसका प्रभाव नहीं पड़ा। जाने के लिए मन अधीर हो उठा। मैं किसी की बात न सुनकर, स्वामीजी के आश्रम में गया। स्वामीजी को प्रणाम करते ही उन्होंने थोड़ा हँसकर कहा— 'क्यों शराबी बेटा के पास आया है, बैठ।' उस समय वे एक महिला को अभद्र भाषा में गाली देकर कहने लगे— 'अरे तुझे शिष्या बनाने से क्या होगा, तेरी तो उमर अधिक हो गई है। मैं सुन्दर युवती मिलने से शिष्या बनाता हूँ। तेरे को दीक्षा नहीं दूँगा, तू चली जा। दूसरे के पास जाकर दीक्षा ले।' महिला बहुत आग्रह करने लगी। तब स्वामीजी ने कहा, 'अच्छा, मेरे कहे अनुसार चल सकेगी? शपथ ले, तो फिर शिष्या बना लूँगा।' महिला ने कहा— 'आपकी दया होने से क्यों नहीं कर सकूँगी बाबा?' तब स्वामीजी ने कहा— 'अच्छा, तो फिर थोड़ी प्रतीक्षा कर, मैं पी लेता हूँ। फिर तेरे को उस रास्ते में ले जाकर बेइज्जत करूँगा। उसके बाद तेरी दीक्षा होगी।' तब स्वामीजी ने तेज स्वर में अपनी भैरवी से कहा— 'अरी, एक बोतल शराब ले आ, तो। और देख, हरामजादी भाग न पाए, बाहर दरवाजे में सिटकिनी दे दे।'।

तब महिला डरकर भाग खड़ी हुई। स्वामीजी ने मन्त्र से शुद्ध करके मदिरा-पान किया। फिर मुझसे कहा— 'अरे देख, इस शराबी बेटा के पास क्यों आया है? मैं शराबी बेटा, शराब पीता हूँ, कितनी बदमाशी करता हूँ, वह तू जानता है? मेरा घर भी शान्तिपुर में था, बचपन में नाटक-मण्डली में मेहतरानी बनता था, तब किस प्रकार नाच-नाचकर गाना गाता था सुनेगा?' यह कहकर वे नाच-नाचकर गाने लगे— 'रात में देखा स्वप्न, काला एक पुरुष रत्न।' यह गाना गाते-गाते स्वामीजी का बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। देखते-देखते महादेव के समान हो गए। स्वामीजी काले थे, लेकिन वे बिल्कुल गोरे हो गए। मस्तक पर अदभुत ज्योतिर्मय अर्धचन्द्र प्रकाशित हो गया। जो वहाँ थे, सभी देखकर चकित हो गए। चेतन्य होने पर स्वामीजी ने कहा— 'देख, शराब पीकर, शराब की बोतल बगल में लेकर, रास्ते में पड़ा रहता हूँ, इतनी मस्ती करता हूँ, जो लोग पास आते हैं, उन्हें कितने अश्लील भाव से गालियाँ देता हूँ,

कभी-कभी खड्ग लेकर उन लोगों को काटने के लिए जाता हूँ, लेकिन तब भी मनुष्य यहाँ आते हैं, मुझे विरक्त करते हैं, सिद्ध पुरुष कहते हैं, कितनी बातें मुझसे पूछने आते हैं। मैं थोड़ी शान्ति से रह नहीं पाता। इन लोगों के उत्पात से बचने के लिए मैं अब क्या करूँ, बताओ तो?

“योगजीवन को देखकर उन्होंने कहा— ‘उसकी इतनी आयु हो गई, अभी भी उसका जनेऊ हुआ नहीं, अच्छा मैं उसको जनेऊ दे दूँगा।’ फिर स्वामीजी ने ही यथारीति योगजीवन को एक दिन जनेऊ दे दिया। स्वामीजी के यहाँ हम सभी को बहुत आनन्द मिला।”

### अयाचित दान अग्राह्य करने से दुर्दशा

इस बार श्रीवृन्दावन में अर्ध कुम्भ-मेले के समय लगभग छः-सात हजार वैष्णव साधु यमुना के तट पर सम्मिलित हुए थे। ठाकुर प्रतिदिन प्रातः उन सबकी परिक्रमा और दर्शन करके आते थे। एक दिन वे साधु-दर्शन के लिए निकले। जमात के बीच एक साधु को खुले बदन ठण्ड से कष्ट पाते देखकर उन्होंने प्रणाम करके उनको एक कम्बल देते हुए कहा— ‘आपके पास कुछ गरम कपड़े नहीं हैं, दया करके यह कम्बल लीजिए।’ कम्बल साधारण था; साधु को पसन्द नहीं आया। उन्होंने उसकी ओर देखते ही हाथ में लेकर विरक्ति के साथ फेंक दिया एवं अत्यन्त क्रोध प्रकट करके कहा— ‘अरे, ऐसा कम्बल मैं नहीं लेता, इसको फेंक दो।’ ठाकुर ने हाथ जोड़कर साधु से खूब अनुनय-विनय किया; पर साधु ने किसी भी प्रकार से उसे नहीं लिया। ठाकुर अन्त में उसे अन्य एक साधु को देकर आ गए। कुछ दिन बाद बहुत वर्षा आरम्भ हो गई। यमुना-तट पर भयंकर ठण्ड से जब सब साधु व्याकुल हो गए, तब वे साधु ठण्ड से अधीर होकर इधर-उधर भागने लगे। कहीं कुछ न पाकर, ठण्ड से बचने के लिए धूनी जलाने के अभिप्राय से लकड़ी संग्रह करने में व्यस्त हो गए। अन्य कहीं लकड़ी न पाकर लकड़ी-टाल से कुछ कुन्दे चोरी किए। लकड़ीवाले ने उन्हें चोर समझकर पुलिस के हाथ में सौंप दिया। साधु को जेल हो गई। ठाकुर ने इस विषय का उल्लेख करके कहा—

“अभाव होने पर अयाचित रूप से जो आए, उसे भगवान् का ही दान समझकर श्रद्धापूर्वक ग्रहण करना चाहिए। भगवान् का दान अग्राह्य करने से बड़ा अनर्थ होता है। वे साधु जब कम्बल फेंके, तभी मुझे लगा, ये बड़े झंझट में पड़ गए। अभिमान करके श्रद्धा का दान अग्राह्य करने से अपराध होता है।”

## अनाहारी साधु के प्रति ठाकुर का आकस्मिक खिंचाव

एक दिन अपराह्न में ठाकुर अचानक आसन से उठकर तुरन्त यमुना के तट पर जा पहुँचे। साधुओं के बीच से होकर निरन्तर द्रुत गति से चलने लगे। प्रतिदिन रास्ते के दोनों ओर जिन सब साधु-वैष्णवों को आग्रहपूर्वक दर्शन करके प्रणामादि करते हैं, उन सब साधुओं के डेरे पर उस दिन एकक्षण भी नहीं रुके। उन लोगों की ओर देखने का भी अवसर नहीं मिला। दोनों ओर साधुओं को छोड़कर, जमात के बीच से होकर दूसरे प्रान्त में एक त्यागी साधु के पास पहुँचे। तब साधु आनन्दपूर्वक प्रफुल्लित मन से कुछ लोगों के साथ धर्म-चर्चा कर रहे थे। ठाकुर कुछ क्षण उनके पास बैठकर, अवसर देखकर साधु से पूछे— **‘महाराज, आज आप प्रसाद पाए?’** साधु ने कहा **‘नहीं’**। ठाकुर ने पूछा, **‘कल पाए थे?’** साधु ने कहा **‘नहीं’**। क्रमशः पूछने पर पता चला, सात दिन से वे कुछ नहीं खाए। लगातार सात दिन बिना आहार किए, बिना थके, आनन्दपूर्वक बातें करते देखकर ठाकुर चकित हो गए। पता चला, प्राण जाने पर भी वे किसी से कुछ नहीं माँगते। ऐसे साधु बड़े दुर्लभ हैं। ठाकुर कुंज में आकर तुरन्त उनके लिए भोजन भिजवाया।

## जमात के साधुओं के धनागम और संकट की बातें

ठाकुर की बात पूरी होने के बाद पूछा— हजार-हजार साधु कुम्भ-मेले में एकत्र होते हैं, उन लोगों का भोजन आदि प्रतिदिन किस प्रकार चलता है?

उन्होंने फिर कहा— **“सभी सम्प्रदाय के साधुओं के महन्त होते हैं। साधु लोग अपने-अपने सम्प्रदाय के महन्तों का आश्रय लेते हैं। प्रत्येक महन्त के जमात में तीन-चार हजार साधु रहते हैं। राजा, महाराजा और बड़े-बड़े धनी लोग उन महन्तों की यथेष्ट आर्थिक सहायता करते हैं। ऊँट, घोड़ा व हाथी के ऊपर बोझा लादकर महन्त लोग अपना भण्डार लेकर चलते हैं। साधुओं को आहार आदि का कोई कष्ट ही नहीं होता। जो लोग किसी भी महन्त का आश्रय न लेकर स्वतन्त्र रूप से रहते हैं, उन लोग को ही भिक्षा करके काम चलाना पड़ता है।”**

पूछा— महन्त लोगों के साथ जब इतना अधिक माल एवं अर्थादि रहता है, तो जमात के भीतर चोर-डकैतों का उपद्रव नहीं होता?

ठाकुर ने कहा— **“वह बहुत होता है। इस बार श्रीवृन्दावन में अर्ध कुम्भ-मेले में एक महन्त के ऊपर बहुत अत्याचार हुआ। उनके पास तीन-चार सौ रुपये थे। हरिद्वार जाने पर उन रुपयों का प्रयोजन होगा, इस कारण से वे जमा करके रखे थे। साधु के साथ 10-12 लोग थे।**

एक साधु, जो महन्त की सेवा करते थे, केवल वे ही उन रुपयों की बात जानते थे। एक दिन उन्होंने रोटी के साथ अधिक मात्रा में भांग, धतूरा मिलाकर महन्त को खिला दिया; महन्त खाकर नशे से अचेत हो गए। वे साधु रुपये लेकर भाग गए। महन्त दो दिन तक नशे में अचेत थे। फिर अन्य साधुओं को पता चलने पर उन्होंने घी गरम करके खिलाया। उससे महन्त का नशा दूर हुआ। बाद में पता चला, महन्त के सेवक ने ही अर्थ के लोभ में वह काण्ड किया था।”

## सोना बनाने वाला साधु

मैंने फिर पूछा— सुना है, साधु लोगों के बीच ऐसे लोग भी हैं, जो इच्छा होने से सहज में ही सोना बना सकते हैं?

ठाकुर ने कहा— हाँ! इस बार श्रीवृन्दावन में एक संन्यासी आए थे, वे सोना बनाते थे। उनके लिए उनके गुरु का हुकुम था, प्रतिदिन कम-से-कम 12 साधुओं की सेवा करनी होगी। अर्थ का अभाव होने पर, 12 जनों की सेवा के लिए जो प्रयोजन होगा, उसी परिमाण में वे सोना बना सकते हैं। अन्य कारण से अथवा स्वयं के प्रयोजन हेतु सोना बनाने के लिए उनके गुरु ने मना किया था। श्रीवृन्दावन में आकर वे आवश्यकता के अनुसार सोना बनाने लगे। क्रमशः उसका प्रचार होने से, पुलिस के लोगों को सन्देह होने पर एक दिन मथुरा से पुलिस साहेब ने आकर उस साधु को पकड़ लिया। साधु ने सोना बनाकर साहेब को दिखलाया। सोने की परख करने पर साहेब को पता चला, बड़ा उत्कृष्ट सोना है। फिर साहेब ने सोना बनाने की प्रणाली सीखने के लिए साधु को रुपयों का लोभ दिखलाया। दस हजार रुपये देना चाहा। साधु ने कहा— ‘मैं 10 मिनट के भीतर दस हजार रुपये का सोना सहज में बना सकता हूँ। मुझे रुपयों का लोभ क्यों दिखला रहे हो? अपनी यह विद्या मैं किसी को नहीं सिखाऊँगा।’ फिर साहेब उनको बहुत डराने लगे। साधु ने कहा— ‘मैं कृत्रिम माल देकर ठगकर रुपये लेता हूँ या नहीं, आप केवल वही जाँच कर सकते हैं। अपनी विद्या मैं अन्य लोगों को नहीं सिखाऊँगा। इस विषय में मैं किसी की जिद से बाध्य नहीं होऊँगा।’

“एक दिन उस साधु ने दाऊजी के मन्दिर में आकर मुझसे भेंट करके कहा— ‘मेरे गुरुजी ने मुझे हुकुम दिया है कि मेरे आदेश का पालन करके चल सके, ऐसे साधु को यह विद्या सिखा देना; पर मुझे ऐसा साधु

मिल नहीं रहा है। फिर किसी एक को यह विद्या सिखलानी ही होगी। आपकी यदि इच्छा है, तो आपको यह विद्या सिखा देता हूँ।' यह कहकर उन्होंने मेरे सामने थोड़ा ताँबा लेकर, उसमें एक पत्ते का रस मिलाकर उसे आग में डाल दिया; पाँच-सात मिनट बाद आग से निकाल लिया। देखा, बहुत उत्कृष्ट सोना बन गया। मैंने साधु से कहा— 'ये सब सीखने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। यह विद्या आप जानते हैं, इस कारण देखिए कितने लोग सर्वदा आपके पीछे लगे रहते हैं। ये सब उत्पात लेने का क्या प्रयोजन? एक मुट्ठी अन्न जब भगवान् देंगे ही, तब और सबका क्या आवश्यकता है?' सोना बनाने की अनेक प्रकार की प्रणालियाँ हैं; लेकिन इस साधु ने जिस प्रणाली से बनाया, वह बहुत ही सहज है। इतने सहज में सोना बनाना और कहीं देखा नहीं। ये सब सीखना नहीं चाहिए। ये सब सीखने से मनुष्य को नाना प्रकार के उत्पात में, आपद-विपद् में पड़ना होता है। धर्म-कर्म सब चूल्हे में चला जाता है। भगवान् की कृपा जो प्राप्त करना चाहते हैं, ये सब उनके लिए भयंकर प्रलोभन हैं। ये प्रलोभन आने से थूककर उसे अग्राह्य कर देना चाहिए।"

### सुखमय वृन्दावन

7 अप्रैल, मंगलवार। श्रीवृन्दावन के वैष्णव महात्माओं की बातें ठाकुर अनेक समय कहा करते हैं। ठाकुर के श्रीवृन्दावन से आने के कुछ समय पहले एक वैष्णव ने अद्भुत रूप से देह का त्याग किया था। ठाकुर ने आज उनकी बात कही— "एक दिन एक महोत्सव के उपलक्ष्य में वृन्दावन परिक्रमा करते हुए हजारों-हजारों वैष्णव संकीर्तन करने लगे। गाने का पद था— 'सुखमय वृन्दावन यमुनापुलिन।' एक वैष्णव महात्मा संकीर्तन में महाभाव के आवेश में अचेत हो गए। तीन दिन, तीन रात्रि वे एक ही अवस्था में रहे। बाबाजी की मग्न अवस्था के समय मैंने कई बार उनकी छाती पर कान लगाकर सुना, भीतर से 'सुखमय वृन्दावन' स्पष्ट शब्द उठ रहा है। बाबाजी ने उसी अवस्था में देहत्याग किया।"

### अज्ञात साधु के पास आश्रय ग्रहण करने से विपत्ति

इस बार हरिद्वार पूर्ण कुम्भ में पर्वतवासी अनेक महात्मा-महापुरुष आएँगे। भारतवर्ष के सभी स्थानों से साधु-संन्यासियों का इस महामेले में आगमन होगा, इस प्रकार की बात पहले से ही सर्वत्र प्रचारित हो गई थी। बंगाल के विविध स्थानों से अनेक सज्जन एवं स्कूल के लड़के भी हरिद्वार के इस मेले में आए।

सिद्ध महात्माओं से दीक्षा लेना ही उन लोगों का उद्देश्य था। स्कूल के तीन-चार लड़कों ने किसी संन्यासी के बाहरी वेश एवं साधुता के आडम्बर से धोखे में आकर, उनको महापुरुष समझकर उनसे दीक्षा ले ली। संन्यासी ने उन लोगों को दीक्षा देते ही वस्त्रादि उतरवाकर कौपीन पहनने को दिया एवं सेवाकार्य में लगा लिया। सभ्य घर के लड़के नियमित बर्तन माँजना, लकड़ी काटना, पानी भरना इत्यादि परिश्रम का कार्य करते-करते अस्वस्थ हो गए। संन्यासी ने उनकी पीड़ित अवस्था देखकर भी उन्हें अत्यधिक परिश्रम से छुट्टी नहीं दी वरन् और भी फटकारने लगे। उनका निर्दिष्ट कार्य ठीक प्रकार से न करने पर निर्दयता से पीटेंगे, इस प्रकार का डर भी दिखाने लगे। ये लड़के जिससे भाग न पाए, इसके लिए अपने अन्य संन्यासी शिष्यों को उन पर दृष्टि रखने के लिए कह दिए। वे लोग भी कामकाज में किसी प्रकार की शिथिलता देखने से उन लड़कों पर अत्याचार करते थे। अस्वस्थ शरीर से रात-दिन लगातार परिश्रम का कार्य करने का सामर्थ्य नहीं, भागने का उपाय भी नहीं; अतएव वे लड़के बड़े संकट में पड़ गए। एक दिन ठाकुर अचानक उस संन्यासी के पास पहुँच गए। उन लड़कों ने ठाकुर को देखकर, रोते-रोते अपनी सारी दशा उनसे कही। ठाकुर ने उन लोगों को छोड़ देने के लिए संन्यासी से अनुरोध किया। संन्यासी ने ठाकुर का अनुरोध स्वीकार नहीं किया। नाना प्रकार से गाली-गलौज करके बड़ा तेज दिखाते हुए कहा— 'ये लोग हमारे चले बने हैं, मन्त्र लिए हैं, हम कभी इन लोगों को नहीं छोड़ेंगे।' ठाकुर चले आए एवं शीघ्र पुलिस की सहायता लेकर उन लोगों को छुटकारा दिलवाए। स्कूल के और भी कुछ लड़के उसी प्रकार धर्म-धर्म करके अज्ञात कुलशील संन्यासी से दीक्षा लेने के लिए तत्पर हो गए थे। ठाकुर ने संकट में पड़े उन लड़कों की बात कहकर, उनका वह संकल्प सुरक्षित नहीं है, बतलाया एवं शीघ्र उन्हें गाँव भेज दिया।

## अनधिकारी के गेरुआ धारण करने से अपराध

अन्य एक दिन कुछ बंगाली सज्जन गेरुआ वस्त्र धारण करके संन्यासी के वेश में ठाकुर के पास पहुँचे। ठाकुर को उन लोगों का परिचय मिलने से पता चला कि वे लोग संन्यास अथवा अन्य कोई आश्रम ग्रहण नहीं किए हैं। अभी तक उन लोगों की दीक्षा भी नहीं हुई है। तब ठाकुर ने उन लोगों से पूछा— **'आप लोग गेरुआ वस्त्र क्यों पहने हैं? गेरुआ धारण करने की एक उपयोगिता है। बिना अधिकार के अपनी इच्छा से गेरुआ वस्त्र ग्रहण किए हो, यह पता चल जाने पर ऐसे अनेक साधु हैं, जो सहन नहीं करेंगे। चिमटा लेकर भयानक रूप से प्रहार करके ये वस्त्र छीन लेंगे।'**

उन सज्जनों ने कहा— 'महाराज, सादा कपड़ा दो-चार दिन में मैला हो



जाता है। हाथ में पैसे नहीं हैं जिससे धुलवा लें, इसलिए यह रंग कर लिए।’

ठाकुर उनकी बात सुनकर 12 आने पैसे उनके हाथ में देते हुए कहा—  
‘कपड़े धुलवाने के लिए ये कुछ पैसे लो। आज ही गेरुआ त्याग दो।’

उन सज्जनों ने वही किया। शीघ्र गेरुआ त्यागकर सादा वस्त्र पहन लिए।

## कुम्भ-मेले का प्रसंग

कुम्भ-मेले में असंख्य साधु-संन्यासियों के सम्मिलन की बात सुनकर ठाकुर से पूछा— ‘गंगा-स्नान करने के लिए ही क्या साधु-महात्मा कुम्भ-मेले में आते हैं?’

ठाकुर ने कहा— “कुम्भ-योग पर तीर्थ-स्थान में गंगा-स्नान का जो विशेष महात्म्य है, वह तो है ही; किन्तु कुम्भ-मेले का उद्देश्य केवल स्नान नहीं है। यह मेला तीन वर्ष के अन्तर में एक-एक स्थान पर हुआ करता है। हरिद्वार, प्रयाग, नासिक एवं उज्जैन में कुम्भ-मेला होता है। कुम्भ-योग के उद्देश्य से विविध स्थानों के, यहाँ तक कि पर्वतवासी महापुरुष भी निर्दिष्ट स्थान पर एकत्र होते हैं। साधु-महात्माओं के एक निर्दिष्ट स्थान पर सम्मिलित होने का समय ही कुम्भ-योग है। यह सभी साधु-संन्यासी जानते हैं। साधन-भजन में जो सब संकट-संशय आते हैं, साधु लोग इस समय महात्मा-महापुरुषों के समक्ष उसे व्यक्त करके समाधान कर लेते हैं।”

“साधन-भजन के विषय में जिसका जो प्रयोजन है, उस विषय में शिक्षा प्राप्त करना ही इस मेले का मुख्य उद्देश्य है। इस समय महापुरुष एकत्र होकर साधु-संन्यासियों एवं देश के साधारण लोगों का धर्म-भाव कैसा है, उसकी खबर लेते हैं। जिस प्रकार की व्यवस्था करने से जिस क्षेत्र के लोगों का कल्याण होता है, वही निश्चित करके वे लोग एक-एक क्षेत्र का भार एक-एक महात्मा के ऊपर अर्पण करके प्रस्थान करते हैं। इस बार चौरासी कोस ब्रजमण्डल का भार उन्होंने रामदास काठियाबाबा को दिया है। महापुरुषों ने उनको ‘ब्रजविदेही महन्त’ की उपाधि दी है। इस प्रकार भारतवर्ष के सभी क्षेत्रों के लिए इसी प्रकार एक-एक महात्मा निर्दिष्ट हैं। देश में धर्म-संस्थापन के लिए उन लोगों को समस्त भार ग्रहण करना पड़ता है। सर्वदा कठोर परिश्रम करना पड़ता है।”

मैंने तुरन्त पूछा, ‘पूरे बंगाल के धर्म-संस्थापन का भार किसके ऊपर है?’ ठाकुर से यह प्रश्न करने के साथ-साथ ही आँखें बन्द करके वे ध्यानस्थ हो गए। अतएव मुझे भी चुप रहना पड़ा।

## शान्तिसुधा के मातृ-शोक में ठाकुर की सान्त्वना

8 अप्रैल, बुधवार। श्रीवृन्दावन में माता ठाकुरानी के देहत्याग के विषय में विस्तारपूर्वक जानने की बड़ी इच्छा हुई; लेकिन ठाकुर से पूछने का सुयोग नहीं मिल पा रहा है, साहस भी नहीं हो पा रहा है। माता ठाकुरानी के देहत्याग के बाद ठाकुर ने गेण्डारिया आश्रम में शान्तिसुधा आदि लोगों को उसकी जानकारी देने के लिए अपने हाथ से जो पत्र लिखा था, उसमें विस्तार से कुछ नहीं लिखा है। उस पत्र को पाकर आश्रम में रहने वाले गुरुभाई-बहिन लोग उस समय शान्तिसुधा को वह घटना बतलाने का साहस नहीं कर पाए। पत्र को गुप्त रख लिए। ठाकुर आकर स्वयं शान्तिसुधा को वह खबर देंगे, उस समय वे सान्त्वना भी दे सकेंगे, यह सोचकर सब गुरुभाई-बहिन चुप रह गए। ठाकुर ने इस प्रकार लिखा है—

“ॐ हरिः”

कल्याणवरेषु,

गत शनिवार, 21 फरवरी, सन् 1891 ई. को संध्या के समय श्रीमती योगमाया देवी ने अपनी चिरप्रार्थनीय सिद्ध देह प्राप्त कर ली। अविश्वासी लोग इसे मृत्यु कहते हैं; किन्तु एक बार अविश्वास का आवरण हटाकर देखो, योगमाया आज सखीवृन्द के बीच कितनी अपूर्व शोभा, सौन्दर्य प्राप्त की हैं; श्रीमती शान्तिसुधा से कहना जिससे वह शोक न करे। यह शोक की घटना नहीं है, अत्यन्त आनन्द की बात है। बहुत भाग्य से मनुष्य को यह प्राप्त होता है।

आगामी बुधवार, 4 मार्च को यहाँ उनके नाम से उत्सव होगा। उसके बाद हम लोग ढाका के लिए निकल पड़ेंगे। श्रीमती शान्तिसुधा यदि श्राद्ध करना चाहे, तो आनन्दपूर्वक उत्सव करके दुःखी-कंगाल लोगों को भोजन करा दे।

‘माँ शान्तिसुधा! शोक मत करना, आनन्द करना। जितना शीघ्र हो सकता है, हम लोग आ रहे हैं।’

आशीर्वादक

श्री विजयकृष्ण गोस्वामी

इस घटना के कुछ समय पहले शान्तिसुधा को गर्भ के आठवें महीने में सुलक्षणयुक्त एक पुत्र सन्तान की प्राप्ति हुई। लड़के को लेकर शान्तिसुधा परमानन्द से दिन काट रही हैं एवं शीघ्र ही माता-पिता आएँगे, सोचकर प्रसन्नचित्त से उन लोगों के आने के दिन की प्रतीक्षा कर रही हैं। इस समय ठाकुर हरिद्वार से कोलकाता होकर शीघ्र ढाका गेण्डारिया-आश्रम में आ गए। योगजीवन, कुतुबुड़ी,

नानीजी आदि सभी ने ठाकुर के साथ आश्रम में प्रवेश किया। पिताजी आ गए हैं, यह सुनते ही शान्तिसुधा ने लड़के को गोद में लेकर दौड़ते हुए ठाकुर के पास पहुँचकर हँसते-हँसते कहा— 'बाबा! माँ कहाँ हैं?' ठाकुर ने कहा— **“शान्तिसुधा! मैं तुम्हारी माँ को श्रीवृन्दावन में छोड़ आया। वे नहीं आईं, वहीं रह गईं। हम लोग भी फिर कुछ समय के बाद वहाँ जाएँगे।”**

सुना है, वह सब बातें सुनकर शान्तिसुधा स्पष्ट कुछ समझ नहीं पाई। ठाकुर ने शान्तिसुधा को सामने बैठाकर महाभारत और पुराणादि की कथाएँ सुनाते-सुनाते माता ठाकुरानी के देहत्याग की बात भी कह दी। शान्तिसुधा सुनते ही मूर्च्छित-सी हो गई। ठाकुर ने उनके शरीर पर हाथ फेरकर सचेत किया। शान्तिसुधा बहुत अस्वस्थ थीं; अतएव मातृशोक से उनके मस्तिष्क की दशा विकृत होने की सभी को आशंका थी; लेकिन वैसा कुछ हुआ नहीं। ठाकुर के शीतल स्पर्श से शान्तिसुधा का हृदय इतना शीतल हो गया कि माता के देहत्याग का भयंकर यन्त्रणादायक शोक भी उनको वैसा कुछ स्पर्श नहीं कर पाया।

## माता ठाकुरानी के देहत्याग का विवरण

आज मध्याह्न में, भोजन के बाद ठाकुर आम पेड़ के नीचे बैठे। तब मैंने माता ठाकुरानी के देहत्याग की बात पूछी। ठाकुर ने कहा— **“श्रीवृन्दावन जाने से फिर वे नहीं लौटेंगी जानकर ही उनके जाने के पहले कितनी बार पत्र लिखकर मना किया था; लेकिन वह उन्होंने माना नहीं। मेरी अस्वस्थता की बात जानकर तुरन्त वहाँ गईं। श्रीवृन्दावन पहुँचने के बाद भी उनको ढाका भेजने के लिए कितना कौशल किया था; लेकिन किसी प्रकार भी वे यहाँ आईं नहीं। किस दिन देहत्याग होगा, वे पहले ही जान गई थीं। दो बार दस्त होने से ही शरीर अवसन्न हो गया। उस समय परमहंसजी ने मुझसे कहा— 'तुम शीघ्र कुंज से कहीं और चले जाओ; यहाँ तुम्हारे रहने से उन्हें नहीं ले जा सकेंगे। देहत्याग हो जाने पर कुंज में आना।' मैं परमहंसजी के आदेशानुसार उसी समय आसन से उठ गया। वे पास वाले कमरे में थीं। एक बार देखकर जाऊँ सोचकर, उस कमरे में गया। वे सब समझ गई थीं। उनकी इच्छा थी, उस समय पास में ही रहूँ; इसलिए हाथ पकड़कर खींचते हुए संकेत द्वारा मुझे पास बैठने को कहा; किन्तु परमहंसजी के आदेशानुसार मैं फिर विलम्ब न करके कुंज से चला गया। फिर उनका देहत्याग हो गया, यह जानकर कुंज में आ गया।”**

सुना है, ठाकुर माता ठाकुरानी के देहत्याग के कुछ क्षण बाद कुंज में आए। तब वहाँ गुरुभाई-बहिन लोग माता ठाकुरानी की देह को बरामदे में रखकर

चीख-चीखकर रो रहे थे। ठाकुर ने उस स्थान पर जाकर योगजीवन से कहा— **“योगजीवन! मृत देह को इतने समय तक रखे क्यों हो? यमुना के किनारे ले जाकर संस्कार कर आओ।”** यह कहकर ठाकुर उस ओर देखे बिना अपना आसन बिछाकर बैठ गए। अन्य दिन जिस प्रकार रहते हैं, ठाकुर उसी प्रकार आसन पर एक भाव में बैठे रहे। कोई अन्तर देखा नहीं गया। योगजीवन, श्यामाकान्त पण्डित जी, श्रीधर, अश्वनी, सतीश आदि गुरुभाइयों ने माँ की परम पवित्र देह को शीघ्र यमुना के किनारे ले जाकर केशीघाट में अग्नि-दाह किया। ठाकुर की इच्छा के अनुसार चिता निर्वाण के बाद योगजीवन माता ठाकुरानी की तीन अस्थियाँ संग्रह करके ले आए। उनमें से एक श्रीवृन्दावन में समाहित किए। अन्य दो हरिद्वार और गेण्डारिया में प्रतिष्ठित करने के लिए रख लिए।

### **भक्त के विरह से महात्मा लोगों को असाधारण ज्वाला**

माता ठाकुरानी के शोक से नानीजी रात-दिन दग्ध हो रही हैं। कभी-कभी ठाकुर की कृपा से उन्हें माता ठाकुरानी का दर्शन मिला करता है। तभी ठीक हैं, अन्यथा इतने दिन में वे पागल हो जातीं। नानीजी जब उच्च स्वर में ‘योगमाया’ ‘योगमाया’ कहकर रोया करती हैं, तब सारा आश्रम विषाद से भर जाता है। सुनकर हम लोगों का भी शरीर अवसन्न होने लगता है। नानीजी को इस प्रकार रोते देखकर, उनको सान्त्वना देने की चेष्टा करने पर ठाकुर हम लोगों को बाधा देकर कहते हैं— **‘शोक के समय चीत्कार करके रो लेने देना चाहिए, उससे शोक घट जाता है। शोक होने पर रो नहीं पाने से कई लोग पागल हो जाते हैं। यहाँ तक कि कई लोग असह्य रोग होने से मर भी जाते हैं!’**

माता ठाकुरानी का नाम लेकर, नानीजी जब हृदय-विदारक शब्द के साथ उच्च स्वर में रोया करती हैं, उस समय ठाकुर के श्रीमुख पर किसी प्रकार का भावान्तर होता है या नहीं, मैं उसे बड़े ध्यान से लक्ष्य किया करता हूँ। एक दिन भी ठाकुर में किसी प्रकार का परिवर्तन न देखकर मैंने पूछा— जो लोग जीवन्मुक्त महापुरुष हैं, उनको क्या किसी के लिए शोक-कष्ट नहीं होता?

ठाकुर ने कहा— **“हाँ बहुत होता है। भक्त के विरह से वे लोग जो ज्वाला भोगते हैं, उसकी फिर कहीं तुलना नहीं होती। आत्मा के साथ जिनका सम्बन्ध हो जाता है, उनके विरह से जो यन्त्रणा होती है, साधारण लोगों का सामर्थ्य ही क्या है, जो उसकी कल्पना करें। उस ज्वाला की आँच भी सहन करने का सामर्थ्य साधारण लोगों में नहीं है। वह बहुत भयंकर है।”**

मैंने कहा— जो लोग भक्त या महापुरुष हैं, उन लोगों के शोक का कोई लक्षण क्या बाहर प्रकाशित नहीं होता?

ठाकुर ने कहा— “कभी होता है तो कभी बिल्कुल भी नहीं होता। महाप्रभु के अन्तर्धान के बाद रूप, सनातन आदि महाप्रभु के भक्तों में बाहर से किसी प्रकार के शोक का चिह्न न देखकर, बहुतों के मन में सन्देह हुआ था कि ये लोग फिर कैसे भक्त हैं? एक दिन एक वृक्ष के नीचे भागवत् पाठ हो रहा था। सभी पाठ सुन रहे थे। अचानक उस वृक्ष का एक सूखा पत्ता रूप गोस्वामी के शरीर पर गिरा। पत्ता शरीर पर पड़ते ही धप् से जल उठा। तब उसे देखकर सभी समझ पाए, महाप्रभु की विरह-अग्नि में उनके भक्तगण किस प्रकार दग्ध हो रहे हैं।”

मैंने फिर पूछा— ऐसी कितनी ही बातें तो सुनी जाती हैं, लेकिन यथार्थ में क्या वैसा होता है? शोक से मनुष्य की देह से यथार्थ में क्या उत्ताप निकलता है?

ठाकुर ने कहा— “हाँ निकलता है। श्रीवृन्दावन में उनके (माता ठाकुरानी के) देहत्याग के बाद कुतु अत्यन्त विचलित हो गई थी। उसको सान्त्वना देने के लिए जैसे ही उसकी पीठ पर हाथ फेरा, वैसे ही कुतु ‘ऊह-ऊह’ करके चमककर उछल पड़ी। मैं तभी समझ गया। कुछ क्षण बाद ही देखा गया, कुतु के पीठ में जलने से फफोले पड़ने के समान पाँच अँगुलियों के दाग पड़ गए हैं।”

ठाकुर के साथ ये सब बातचीत के समय अन्य लोगों के आ जाने से फिर इस विषय में कुछ पूछने का सुयोग नहीं मिला।

## गोसाँईजी के दर्शन हेतु पर्वतवासी अज्ञात महापुरुष

10 अप्रैल, शुक्रवार। श्रीवृन्दावन में माता ठाकुरानी का श्राद्ध-कार्य योगजीवन द्वारा समापन करवाने के कुछ दिन बाद, मार्च महीने के मध्य में ठाकुर हरिद्वार पूर्ण कुम्भ-मेले में गए। कुछ महापुरुषों के साथ भेंट करना एवं माता ठाकुरानी की अस्थि को गंगा-गर्भ में समाहित करना ही ठाकुर का वहाँ जाने का उद्देश्य था। अतः वे चार-पाँच दिन से अधिक वहाँ रुके नहीं। हरिद्वार पहुँचते ही ठाकुर गुरुभाई-बहिनों को लेकर ब्रह्मकुण्ड के घाट पर गए। वहाँ स्नान के बाद उन्होंने योगजीवन से माता ठाकुरानी की एक अस्थि गंगा के भीतर समाहित करवा दी।

कनखल में नानकशाही महन्त श्री रामप्रकाशजी के आश्रम में ठाकुर के रहने की बात थी; परन्तु वहाँ सुविधा नहीं होगी सोचकर ब्रह्मकुण्ड के पास गंगा के किनारे एक पण्डे के घर में ठहरे।

एक दिन ठाकुर साधु-दर्शन के अभिप्राय से साथियों को लेकर मेले में गए। उस समय केवल लंगोटी पहने हुए एक पर्वतवासी संन्यासी ठाकुर को देखकर दूर से ही भीड़ के मध्य अबाध गति से, बड़े उल्लसित भाव से, नृत्य करते-करते ठाकुर के सामने आए एवं बारम्बार उच्च स्वर में कहने लगे— 'आज मुझे मिला रे मिला, आज मुझे मिला रे मिला।' डबडबाई आँखों से देखते हुए उच्च स्वर में इस प्रकार कहते-कहते हाथ उठाकर नाचते-नाचते कुछ एक बार ठाकुर की परिक्रमा करके एकाएक अदृश्य हो गए। किस प्रकार कहाँ चले गए, कोई उन्हें खोज नहीं पाया।

अन्य एक जटाधारी उदासी महापुरुष लगभग उलंग अवस्था में थोड़े अन्तर में रहकर ठाकुर का दर्शन करते ही लड़खड़ाते हुए दो-चार कदम अग्रसर होकर, स्तम्भ की भाँति खड़े रहे। लगातार अश्रु बहने से उनका वक्षःस्थल भीगने लगा। बारम्बार वे सिहरने लगते। हाथ जोड़कर काँपते हुए ठाकुर की ओर एकटक देखते रहे। गद्गद भाव से अस्फुट स्वर में बार-बार कहने लगे— 'मेरा सब पूरण हो गया, आज हम धन्य हो गए। धन्य हो गए।' कुछ क्षण बाद ही श्रीधर ने उनके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके कहा— 'आशीर्वाद दीजिए महाराज, आशीर्वाद दीजिए।' महापुरुष ने श्रीधर से कहा— 'अहोभाग्य तुम लोगों का, अहोभाग्य तुम लोगों का! भगवान् का संग पाए हो। दर्शन ही बहुत दुर्लभ है। सब समय पीछे-पीछे रहना। संग कभी नहीं छोड़ना। धन्य हो गया! धन्य हो गया!'

इन सब महात्माओं के विषय में ठाकुर से पूछने पर उन्होंने कहा— **"ऐसे महापुरुष लोकालय में कभी नहीं आते। पहाड़ों में ही रहते हैं। उन लोगों को देखते ही लगा मानो उनका हमारे साथ कितना पुराना परिचय है। प्राणों का योग जिनके साथ है, बहुत समय बाद भी भेंट होने पर उन लोगों को पहचान लिया जाता है। बड़े ही आत्मीय लगते हैं।"**

—: 0 :—

**(द्वितीय खण्ड समाप्त)**